भारतीय राजव्यवस्था

1. राज्य एवं राष्ट्र
2. संविधान सभा
3. भारतीय संविधान के स्रोत
4. प्रस्तावना
5. भारतीय संविधान की अनुसूचियाँ
6. संघ एवं उसका राज्यक्षेत्र
7. नागरिकता
8. मूल अधिकार
9. नीति निदेशक तत्व
10. मूल कर्त्तव्य
11. राष्ट्रपति
12. उपराष्ट्रपति
13. संसद
14. संसदीय समितियाँ
15. शासन प्रणाली
16. उच्चतम न्यायालय
17. उच्च न्यायालय
18. अधीनस्थ न्यायालय
19. लोक अदालत
20. न्यायिक सक्रियता
21. आपातकाल
22. संघवाद (केन्द्र राज्य संबंध)
23. संविधान का संशोधन
24. वरीयता क्रम
25. भारत का नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक

26. केन्द्रीय सतर्कता आयोग
27. नीति आयोग
28. लोकपाल
29. भारतीय निर्वाचन आयोग
30. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
31. केन्द्रीय सूचना आयोग
32. संघ लोक सेवा आयोग

मुख्य परीक्षा हेतु

33. राजनीतिक गत्यात्मकताएँ
34. राजस्थान की राज्य राजनीतिक

Springboard ACADEMY

राज्य एवं राष्ट्र

➢ **राज्य –** राज्य/देश वह इकाई है जिसमें लोगों का समुदाय एक निश्चित भू–भाग पर निवास करता है और एक व्यवस्थित सरकार बाहरी दबावों से मुक्त संप्रभु रूप से कार्य करती है।

➢ **राज्य के आधारभूत तत्त्व –**

1. भू–भाग
2. जनसंख्या
3. सरकार
4. संप्रभुता

➢ **कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य के अंग –**

1. दुर्ग
2. राजा
3. राजकोष
4. सेना
5. अमात्य
6. मित्र (मित्र राज्य)
7. क्षेत्र/भू–भाग

राष्ट्र – राष्ट्र को लोगों के एकत्रीकरण के रूप में परिभाषित किया गया है जो एक संगठित समाज के रूप में विद्यमान है, आम तौर पर क्षेत्र विशेष में निवास करते हैं, एक ही भाषा बोलते हैं, एक समान रीति–रिवाजों को मानते हैं, ऐतिहासिक निरंतरता होती है।

- राष्ट्र जहां नस्लीय या नृजातीय अवधारणा के अधिक निकट है वही राज्य एक राजनीतिक अवधारणा के अधिक निकट है।
- संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द का तात्पर्य 'राष्ट्र' (Nation) से ना होकर 'राज्य' (State) से है।
- 'अरब राष्ट्र' एक राज्य ना होकर एक 'राष्ट्र' अवधारणा है जिसमें मिस्र, सऊदी अरब, यमन, ओमान, यू.ए.ई. आदि अनेक राज्य सम्मिलित है।
- यूएसए एक राज्य है जिसमें अनेक राष्ट्र सम्मिलित है। जैसे– कॉकेशियन, अफ्रीकी, चीनी और भारतीय राष्ट्र
- जपान, इजरायल और भारत ऐसे राज्य हैं जिनमें राष्ट्र की विशेषताएं भी देखने को मिलती है अतः ये राष्ट्र–राज्य के उदाहरण है।

राज्य की उत्पत्ति के सिद्धांत

1. **राजत्त्व का दैवीय सिद्धान्त –** राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है और वह अपने राज्य में ईश्वर के आदेशों को लागू करता है। अतः दैवीय सिद्धान्त के आधार पर राज्य अस्तित्त्व में आये।
2. **सामाजिक समझौते का सिद्धान्त –** यह सिद्धांत लॉक, हॉब्स और रूसो ने दिया। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य की अवधारणा के पूर्व 'मत्स्य न्याय/पूर्ण अराजकता' की स्थिति थी जिसमें केवल अनिश्चितता की स्थिति थी। अतः लोगों ने सामाजिक समझौते के आधार पर राज्य की स्थापना की। इसके अंतर्गत समस्त लोगों ने राज्य के प्रमुख को अपने कुछ अधिकार सौंपे तो दूसरी तरफ राजा ने अपने लोगों की सुरक्षा की गारंटी दी। वर्तमान में लोकतंत्र में भी जनता मतदान के माध्यम से शासक चुनकर उसे शक्ति प्रदान करती है।

राजतंत्र

राजा

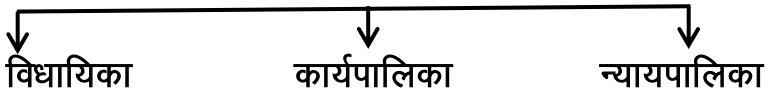

- राजतंत्र में शासन की तीनों शक्तियाँ राजा में निहित होती है। अर्थात् शक्तियों का केन्द्रीकरण होता है, इसलिए राजा प्रायः निरंकुश हो जाता है।
- फ्रांसीसी विचारक मॉन्टेस्क्यू ने शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत दिया अर्थात् शासन की तीनों शक्तियों को पृथक कर देना चाहिए। अतः लोकतंत्र शक्ति पृथक्करण पर आधारित है।

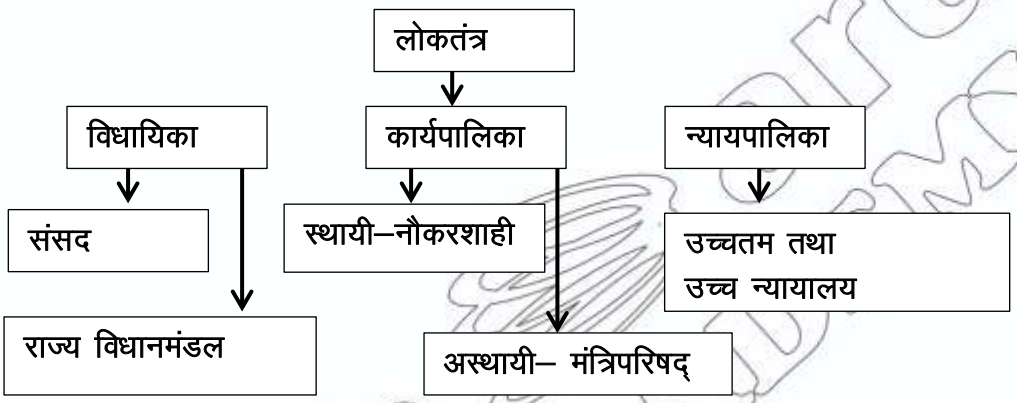

- भारत में संसदीय शासन व्यवस्था है अतः स्पष्ट शक्ति पृथक्करण नहीं है क्योंकि कार्यपालिका विधायिका का एक अंग है।

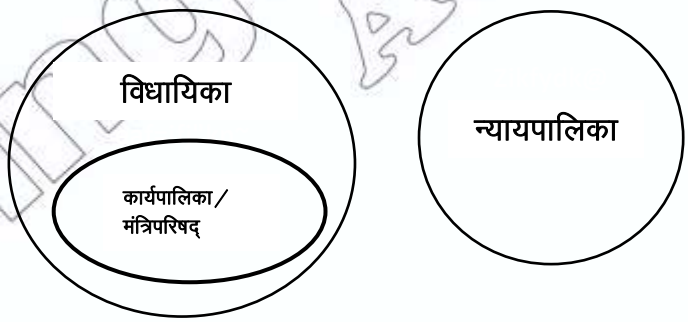

- भारत में दोहरी विधायिका है अर्थात् केन्द्र व राज्यों में अलग–अलग विधायिकाएँ है।
- भारत में दोहरी कार्यपालिका है अर्थात् केन्द्र व राज्यों में अलग–अलग मंत्रिपरिषद् है।
- भारत में एकल न्यायपालिका है अर्थात् उच्च न्यायालय उच्चतम न्यायालय के अधीन है।
- ब्रिटेन में भी संसदीय शासन व्यवस्था है अतः वहाँ भी स्पष्ट शक्ति पृथक्करण नहीं है। ब्रिटेन में कार्यपालिका तथा न्यायपालिका दोनों विधायिका का भाग है। इसलिए वहाँ संसद की सर्वोच्चता है जबकि भारत में संविधान की सर्वोच्चता है।

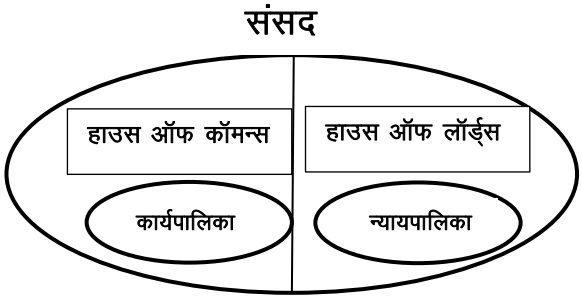

➢ अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था है इसलिए वहाँ स्पष्ट शक्ति पृथक्करण है।

Springboard ACADEMY

संविधान सभा

- 1895 में बाल गंगाधर तिलक ने सर्वप्रथम संविधान सभा की मांग की।
- 1922 में महात्मा गाँधी ने संविधान सभा की मांग की।
- 1925 में स्वराज पार्टी ने संविधान सभा की मांग की।
- 1928 में नेहरू समिति ने संविधान सभा की मांग की।
- 1934 में मानवेन्द्र नाथ रॉय ने संविधान सभा की मांग की।
- 1935 में कांग्रेस पार्टी ने आधिकारिक तौर पर संविधान सभा की मांग की।
- 1938 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कांग्रेस के प्रतिनिधि के तौर पर सार्वभौमिक वयस्क मतदान के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा की मांग की।
- अगस्त प्रस्ताव 1940 में अंग्रेजों ने पहली बार संविधान सभा की मांग को स्वीकार किया। इसमें 'संविधान सभा' शब्द का उल्लेख नहीं था।
- क्रिप्स मिशन 1942 में अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित संविधान सभा का प्रावधान था जो प्रान्तीय विधानमण्डल के निम्न सदन के सदस्यों द्वारा चुनी जानी थी।
- 1946 में केबिनेट मिशन की सिफारिशों के आधार पर संविधान सभा का निर्वाचन किया गया।

संविधान सभा के कुल सदस्य (389)

ब्रिटिश भारत से निर्वाचित (296) — **रियासतों से मनोनीत (93)**

प्रान्तों से (292)

उच्चायुक्त प्रान्तों से (4)
1. दिल्ली
2. अजमेर मेरवाड़ा
3. कुर्ग
4. बलूचिस्तान

संविधान सभा का निर्वाचन

- 10 लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि निर्वाचित किया गया था।
- संविधान सभा का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति से हुआ था।
- **निर्वाचक मण्डल** – प्रान्तीय विधानमण्डल के निम्न सदन के सदस्यों द्वारा संविधान सभा का निर्वाचन किया गया था।
- **निर्वाचन पद्धति** – 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के एकल संक्रमण मत' द्वारा।
- आनुपातिक प्रतिनिधित्व के तहत तीन श्रेणियाँ बनाई गई थी–
  1. मुस्लिम (आरक्षित सीटें–78)
  2. सिक्ख (आरक्षित सीटें–04)
  3. सामान्य (आरक्षित सीटें–210) (हिन्दू, जैन, ईसाई, आदि)
- संविधान सभा का निर्वाचन जुलाई–अगस्त 1946 में हुआ।
- संविधान सभा में कांग्रेस पार्टी के 208 सदस्य निर्वाचित हुए थे।
  - सामान्य सीट पर – 199
  - सिक्ख आरक्षित सीट पर – 03
  - मुस्लिम आरक्षित सीट पर – 03
  - उच्चायुक्त प्रान्त – 03

- मुस्लिम लीग के 73 सदस्य विजयी हुए थे।
- महात्मा गाँधी और मोहम्मद अली जिन्ना ने संविधान सभा का चुनाव नहीं लड़ा था।
- जयप्रकाश नारायण व तेज बहादुर सप्रू ने संविधान सभा से त्यागपत्र दे दिया था।

संविधान सभा में 15 महिला सदस्य निर्वाचित हुई थी–

1. अम्मू स्वामीनाथन
2. दक्षयनी वेलायुधन (एकमात्र दलित महिला सदस्य)
3. बेगम एजाज रसूल (एकमात्र मुस्लिम महिला सदस्य)
4. दुर्गाबाई देशमुख
5. हंसा जीवराज मेहता
6. कमला चौधरी
7. लीला रॉय
8. मालती चौधरी
9. पूर्णिमा बनर्जी
10. राजकुमारी अमृत कौर (प्रथम महिला केबिनेट मंत्री)
11. रेणुका राय
12. सरोजिनी नायडू (प्रथम महिला राज्यपाल)
13. सुचेता कृपलानी (प्रथम महिला मुख्यमंत्री)
14. विजय लक्ष्मी पण्डित (यूएन महासभा में एकमात्र भारतीय महिला अध्यक्ष)
15. एनी मास्करीन (देशी रियासतों से महिला प्रतिनिधि)

- संविधान सभा के चुनावों के ठीक बाद मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार कर दिया था।
- 9 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक हुई जिसमें कुल 207 सदस्य (9 महिलाएँ शामिल) उपस्थित थे।
  - उद्घाटन सत्र की शुरूआत –जे. बी. कृपलानी
  - अस्थायी अध्यक्ष –डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा (वरिष्ठतम सदस्य, फ्रांसीसी परम्परा)
- 11 दिसम्बर, 1946 – संविधान सभा की दूसरी बैठक।
  - डॉ. राजेन्द्र प्रसाद – स्थायी अध्यक्ष
  - एच.सी. मुखर्जी – उपाध्यक्ष निर्वाचित
  - बी.एन.राव को संवैधानिक सलाहकार नियुक्त किया गया।(बर्मा के संविधान निर्माण में भी सहयोग किया)
  - बी.एन. राव ने संविधान का पहला प्रारूप तैयार किया जबकि अन्तिम प्रारूप, प्रारूप समिति ने तैयार किया था।
  - कालान्तर में वी.टी. कृष्णामाचारी को संविधान सभा का दूसरा उपाध्यक्ष निर्वाचित किया गया।
  - 13 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा की तीसरी बैठक हुई। पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा 'उद्देश्य प्रस्ताव' प्रस्तुत किया गया।
  - 22 जनवरी 1947 को संविधान सभा ने 'उद्देश्य प्रस्ताव' पारित किया।

उद्देश्य प्रस्ताव की प्रमुख विशेषताएँ

- स्वतंत्र सम्प्रभु भारतीय गणराज्य की स्थापना करना तथा इसके लिए संविधान का निर्माण करना।
- स्वतंत्र भारतीय संघ में निम्नलिखित क्षेत्र सम्मिलित होने चाहिएः–
  1. ब्रिटिश भारत
  2. भारतीय राज्य (रियासतें)
  3. अन्य भारतीय क्षेत्र (गोवा, पुडुचेरी आदि)
  4. अन्य राज्य या क्षेत्र जो स्वेच्छा से भारत में शामिल होना चाहते हो।
- भारतीय संघ में राज्यों को स्वायत्तता प्रदान की जाए तथा अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को दी जाए।
- स्वतंत्र भारत में शासन की समस्त अधिकारिता व शक्तियों का स्रोत जनता हो। (लोकतंत्र)

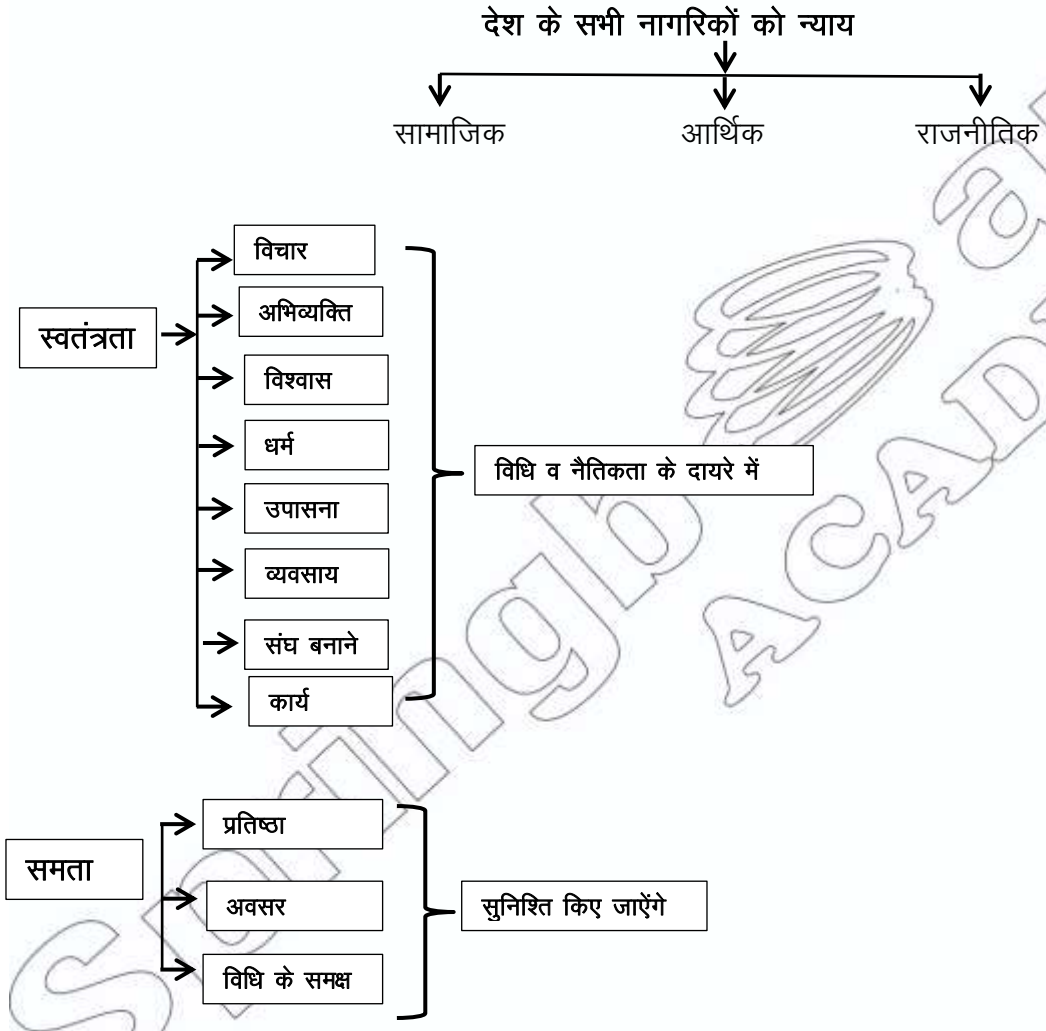

- निम्नलिखित के हितों के संरक्षण के लिए विशेष उपाय किए जाने चाहिए–
  1. अल्पसंख्यक
  2. पिछड़े व जनजातीय क्षेत्र
  3. सामाजिक रूप से पिछडे व वंचित वर्ग
- भारतीय राज्य क्षेत्र की अखण्डता को बनाए रखना तथा इसके अन्तर्गत आने वाले जल, थल व नभ पर सम्प्रभु अधिकार को बनाए रखना।
- प्राचीन काल से विश्व में भारत का विशिष्ट स्थान है, उस स्थान को बनाए रखना तथा विश्व शांति व मानव कल्याण को बढावा देना।

संविधान सभा की समितियाँ

अध्यक्ष	समिति
पण्डित जवाहर लाल नेहरू	→ संघीय संविधान समिति
	→ संघीय शक्ति समिति
	→ भारतीय राज्यों के लिए समिति
सरदार वल्लभ भाई पटेल	→ प्रांतीय संविधान समिति
	→ मौलिक अधिकार, अल्पसंख्यकों, जनजातीय क्षेत्र, बाह्य व आंशिक बाह्य क्षेत्र पर सलाहकारी समिति (इसके तहत पाँच उपसमितियों का गठन किया जाना था किन्तु चार उपसमितियाँ गठित की गई)
	(i) मूल अधिकार उपसमिति (**जे.बी. कृपलानी**)
	(ii) अल्पसंख्यक उपसमिति (**एच. सी. मुखर्जी**)
	(iii) अनुसूचित व जनजातीय क्षेत्र उपसमिति (असम) (**गोपीनाथ बोरदोलोई**)
	(iv) बाह्य व आंशिक बाह्य क्षेत्र उपसमिति (असम के अलावा) (**ए. वी. ठक्कर**)
	(v) उत्तर पश्चिम फ्रंटियर जनजाति क्षेत्र उपसमिति
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	→ प्रक्रिया नियम समिति
	→ संचालन समिति
	→ राष्ट्रध्वज के लिए तदर्थ समिति

जी. वी. मावलंकर – संविधान सभा की कार्य समिति

पण्डित जवाहर लाल नेहरू – संविधान के ड्राफ्ट की जाँच हेतु विशेष समिति

प्रारूप समिति (29 अगस्त 1947)

अध्यक्ष व सदस्य निम्नलिखित हैं–

1. डॉ. भीमराव अम्बेडकर (अध्यक्ष)
2. एन. गोपालस्वामी आयंगर
3. अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर
4. मोहम्मद सादुल्लाह
5. के.एम. मुंशी
6. एन. माधव राव (बी. एल. मित्र के स्वास्थ्य कारणों से त्यागपत्र के बाद उनका स्थान लिया)।
7. टी. टी. कृष्णामाचारी (1948 में डी.पी. खेतान की मृत्यु के बाद उनका स्थान लिया)

- प्रारूप समिति ने लगभग 60 देशों के संविधान का अध्ययन किया तथा उनसे भारतीय संविधान का प्रारूप तैयार किया।
- प्रारूप को संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिसे सभा ने तीन पठन में पारित किया–
  - प्रथम पठन – 4 नवम्बर 1948 ई. – 9 नवम्बर 1948 ई.
  - द्वितीय पठन – 15 नवम्बर 1948 ई. – 17 अक्टूबर 1949 ई.
  - तृतीय पठन – 14 नवम्बर 1949 ई. – 26 नवम्बर 1949 ई.

- 26 नवम्बर, 1949 ई. को संविधान सभा ने संविधान को पारित किया ।
- इसी दिन संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित, आत्मार्पित किया गया।
- 15 अनुच्छेद 26 नवम्बर, 1949 को ही लागू कर दिए गए–
  - अनुच्छेद 5, 6, 7, 8, 9 (नागरिकता)
  - अनुच्छेद 60 (राष्ट्रपति की शपथ)
  - अनुच्छेद 324 (निर्वाचन आयोग)
  - अनुच्छेद 366, 367 (परिभाषाएँ व निर्वचन)
  - अनुच्छेद 379, 380, 388, 391 (अस्थायी प्रावधान), अन्तरिम सरकार
  - अनुच्छेद 392 (राष्ट्रपति की शक्ति)
  - अनुच्छेद 379–392 हटा दिए गए।
  - अनुच्छेद 393 (संक्षिप्त नाम भारत का संविधान है)
  - अनुच्छेद 394 (15 अनुच्छेद 26 नवम्बर 1949 से लागू होंगे।)
- शेष संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ।
- 2 साल, 11 माह, 18 दिनों में संविधान सभा की कुल 11 बैठकें हुई।
- संविधान सभा 3 वर्ष, 1 माह, 16 दिन अस्तित्व में रही। (9 दिसम्बर 1946–24 जनवरी 1950)

15 अगस्त 1947 को संविधान सभा की भूमिका में बदलाव

- संविधान सभा एक सम्प्रभु संस्था बन गई। पहले ये सम्प्रभु संस्था नहीं थी क्योंकि इसका गठन केबिनेट मिशन की अनुशंसाओं से किया गया था, परन्तु अब यह केबिनेट मिशन की सिफारिशों से मुक्त थी।
- अब संविधान सभा ने दोहरी भूमिका निभाई। संविधान निर्माण के साथ–साथ इसने विधायिका का कार्य भी किया। जब यह विधायिका के रूप में कार्य करती थी तो जी.वी. मावलंकर इसके अध्यक्ष होते थे।
- इसकी सदस्य संख्या 389 से घटकर 299 रह गई थी।

299

229 (ब्रिटिश भारत से) 70 (रियासतों से)

संविधान सभा में राजस्थान से सदस्य

1. वी.टी. कृष्णामाचारी	–	जयपुर
2. हीरालाल शास्त्री	–	जयपुर
3. सरदार सिंह	–	खेतड़ी
4. वी राघवाचारी, बलवंत सिंह मेहता	–	उदयपुर
5. माणिक्यलाल वर्मा	–	उदयपुर
6. राज बहादुर	–	भरतपुर
7. सी. एस. वेंकटाचारी	–	जोधपुर
8. जयनारायण व्यास	–	जोधपुर
9. मुकुट बिहारी भार्गव	–	अजमेर मेरवाड़ा
10. के.एम. पणिक्कर, जसवंत सिंह	–	बीकानेर
11. गोकुल लाल असावा	–	शाहपुरा (भीलवाड़ा)
12. दलेल सिंह	–	कोटा
13. रामचन्द्र उपाध्याय	–	अलवर

संविधान सभा के महत्वपूर्ण निर्णय

22 जुलाई, 1947	–	राष्ट्रध्वज को मान्यता।
13 मई, 1949	–	राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को मान्यता दी गई।
24 जनवरी, 1950	–	राष्ट्रगान व राष्ट्रगीत को मान्यता दी गई।
	–	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति चुने गए।
	–	यह संविधान सभा की अंतिम बैठक थी।
	–	इस दिन संविधान सभा को भंग कर दिया गया परन्तु यह विधायिका के रूप में कार्य करती रही(1952 तक)

संविधान सभा के निर्वाचन का परिणाम (जुलाई–अगस्त, 1946) :–

क्र.सं.	पार्टी का नाम	जीती गई सीट
1.	काँग्रेस	208
2.	मुस्लिम लीग	73
3.	यूनियनिस्ट पार्टी	1
4.	यूनियनिस्ट मुस्लिम	1
5.	यूनियनिस्ट शिड्यूल कास्ट्स	1
6.	कृषक प्रजा पार्टी	1
7	शिड्यूल कास्ट्स फेडरेशन	1
8.	सिक्ख (गैर–कॉंग्रेसी)	1
9.	वामपंथी पार्टी	1
10.	निर्दलीय	8
	कुल	**296**

संविधान सभा में विभिन्न समुदायों का प्रतिनिधित्व

क्र.सं.	समुदाय	संख्या
1.	हिन्दू	163
2.	मुस्लिम	80
3.	अनुसूचित जाति	31
4.	भारतीय ईसाई	6
5.	पिछड़ी जनजातियाँ	6
6.	सिक्ख	4
7.	आंग्ल–भारतीय	3
8.	पारसी	3
	कुल	**296**

संविधान सभा संबंधी महत्वपूर्ण तथ्य

- प्रतीक – हाथी
- संवैधानिक सलाहकार – सर बी. एन. राव
- सचिव – एच. वी. आर. अयंगर
- संविधान के प्रमुख ड्राफ्टमैन – एस. एन. मुखर्जी
- संविधान के सुलेखक (इटैलिक शैली) – प्रेम बिहारी नारायण रायज़ादा
- संविधान का अलंकरण – शांति निकेतन के नंद लाल बोस एवं ब्योहर राममनोहर सिन्हा
- मूल प्रस्तावना का अलंकरण – ब्योहर राममनोहर सिन्हा
- संविधान के हिन्दी संस्करण के सुलेखक – वसंत कृष्ण वैद्य

संविधान सभा की आलोचनाएँ

1. **संविधान सभा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित नहीं थी तथा रियासतों के सदस्यों का भी मनोनयन किया गया था अतः यह भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी।**
   किन्तु उपर्युक्त आलोचना उचित नहीं है क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियों में संविधान सभा का प्रत्यक्ष निर्वाचन अत्यधिक कठिन था जिसके लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थेः–

- राष्ट्रीय आन्दोलन अपने चरम पर था।
- राजनीतिक अस्थिरता थी।
- देश में साम्प्रदायिक दंगें हो रहे थे।
- चुनाव करवाने के लिए पर्याप्त आधारभूत ढाँचा व मशीनरी नहीं थी।
- समय का अभाव था।
- जनता में राजनीतिक जागरूकता व शिक्षा की कमी थी।
- संचार के साधनों का अभाव था।
- जहाँ तक देशी रियासतों का प्रश्न है वहां सदस्यों का अप्रत्यक्ष निर्वाचन भी नहीं किया जा सका क्योंकि वहाँ जनप्रतिनिधि संस्थाएं नहीं थी अर्थात् निर्वाचन हेतु आधारभूत ढाँचे का अभाव था तथा भारत में उनका विलय करना एक मुख्य चुनौती थी।

2. **संविधान सभा एक सम्प्रभु संस्था नहीं थी क्योंकि इसका गठन कैबिनेट मिशन की सिफारिशों के आधार पर हुआ था।**
   यह आलोचना उचित नहीं है क्योंकिः–
   - 15 अगस्त 1947 को संविधान सभा एक सम्प्रभु संस्था बन गई थी। यह केबिनेट मिशन की अनुशंसाओं से पूर्णतः मुक्त थी।
   - भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 में यह स्पष्ट उल्लेख था कि संविधान सभा केबिनेट मिशन की अनुशंसाओं से मुक्त रहेगी।
   - संविधान सभा ने स्वयं यह प्रस्ताव पारित किया था कि वह अपने सभी निर्णय पूर्ण स्वतंत्रता से लेगी।

3. **समय का अपव्ययः भारतीय संविधान सभा ने 2 वर्ष, 11 माह 18 दिनों में संविधान को पूरा किया जबकि अमेरिकी संविधान मात्र 4 माह में पूरा कर लिया गया था।**
   यह आलोचना उचित नहीं है क्योंकि–
   - भारत व अमेरिका की स्थितियाँ भिन्न–भिन्न थी। भारत एक बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक, बहुभाषायी तथा बहुनृजातीयता वाला देश है तथा हमारा सामाजिक ढाँचा अत्यधिक जटिल है जिसमें अनेक वंचित व पिछड़े वर्ग तथा जनजातियाँ है अतः संविधान में सभी के हितों के लिए विशेष प्रावधान करने थे।
   - जबकि अमेरिकी समाज में इतनी विविधताएँ नहीं थी और ना ही अमेरिकी संविधान में वहां के वंचित वर्गों (अमेरिकी व अफ्रीकी मूल के लोग) के हितों हेतु विशेष प्रावधान किए गए।
   - भारतीय संविधान विश्व का सबसे बड़ा संविधान है, इसमें 395 अनुच्छेद हैं जबकि अमेरिकी संविधान अत्यधिक संक्षिप्त है जिसमें केवल 7 अनुच्छेद है।
   - भारतीय संविधान में संघ व राज्य दोनों का संविधान शामिल है अर्थात् राज्यों के पृथक संविधान नहीं है जबकि अमेरिकी संविधान केवल परिसंघ का संविधान है तथा राज्यों के संविधान पृथक हैं।

4. **संविधान सभा के अधिकांश सदस्य कांग्रेस से थे इसलिए इसमें केवल कांग्रेस की विचारधारा को महत्व दिया गया था अन्य राजनीतिक विचारधाराओं की उपेक्षा की गई।**

   यह आलोचना उचित नहीं है क्योंकि –

   - भारतीय संविधान एक संतुलित संविधान है इस पर किसी एक विचारधारा का प्रभाव नहीं है बल्कि सभी विचारधाराओं को महत्व दिया गया है।
   - संविधान का प्रारूप, प्रारूप समिति द्वारा तैयार किया गया था। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेड़कर स्वयं कांग्रेस के नहीं थे। तथा प्रारूप समिति में कांग्रेस के केवल दो सदस्य थे (के.एम. मुंशी, टी.टी. कृष्णामाचारी)
   - हालांकि राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व कांग्रेस ने किया था। कांग्रेस सबसे बड़ा राजनीतिक दल था। इसका सामाजिक आधार अधिक व्यापक था इसलिए संविधान सभा में कांग्रेस के अधिक सदस्य निर्वाचित हुए थे।

5. **संविधान सभा के अधिकांश सदस्य हिन्दू थे। इसलिए भारतीय संविधान हिन्दू धर्म से प्रभावित है। (लॉर्ड विस्काउण्ट ने इसे हिन्दुओं का निकाय कहा)**

   उपर्युक्त आलोचना उचित नहीं है क्योंकि–

   - संविधान सभा का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से किया गया चूंकि हिन्दुओं की संख्या उस समय ज्यादा थी इसलिए वो अधिक संख्या में निर्वाचित हुए तथा देश के विभाजन के बाद अधिकांश मुस्लिम पाकिस्तान का हिस्सा बन गए थे इसलिए हिन्दुओं का अनुपात अधिक हो गया।
   - इसके बावजूद भारतीय संविधान पर धार्मिक प्रभाव नहीं है। भारतीय संविधान एक पंथनिरपेक्ष संविधान है। यहाँ विधि का शासन है। विधि के समक्ष सभी समान है। राज्य धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करता। धार्मिक स्वतंत्रता एक मूल अधिकार है। लोक नियोजन में किसी को भी धर्म के आधार पर अयोग्य घोषित नहीं किया जाता है। यह सभी नागरिकों को वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी देता है।
   - अतः भारतीय संविधान किसी भी धर्म को विशेष महत्व नहीं देता बल्कि सभी धर्मों के प्रति समान भाव रखता है।

6. **संविधान सभा के अधिकांश सदस्य राजनेता व वकील थे। इसमें अन्य वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया तथा वकीलों के कारण संविधान की भाषा अत्यधिक जटिल है। (आइवर जेनिग्स ने इसे वकीलों का स्वर्ग कहा)**

   उपर्युक्त आलोचना उचित नहीं है क्योंकि–

   - विश्व के अधिकांश देशों के संविधान वकीलों तथा नेताओं द्वारा ही तैयार किए गए हैं क्योंकि वे विधि निर्माण के विशेषज्ञ होते हैं। राजनेता प्रायः समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं अतः संविधान सभा के सदस्य समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि थे तथा भारतीय संविधान में समाज के सभी वर्गों के हितों का संरक्षण किया गया है। कमजोर व वंचित वर्गों के हितों के लिए विशेष उपाय किये गये हैं।
   - ब्रिटिश परम्परा के अनुसार भारतीय संविधान में प्रत्येक बात को विस्तार से स्पष्ट किया गया है इसलिए संविधान की भाषा जटिल हो गई है।

भारतीय संविधान के स्रोत

भारत सरकार अधिनियम 1935

- परिसंघीय ढाँचा (राज्यों की स्वायत्तता)
- राज्यपाल का पद
- न्यायिक प्रणाली
- संघ लोक सेवा आयोग
- आपातकालीन प्रावधान
- प्रशासनिक ढाँचा
- अनुसूचित व जनजातीय क्षेत्रों हेतु विशेष प्रावधान
- द्विसदनीय व्यवस्था
- समवर्ती सूची
- नियंत्रक व महालेखा परीक्षक का पद
- अध्यादेश जारी करना

ब्रिटेन का संविधान

- संसदीय शासन
- द्विसदनीय व्यवस्था
- मंत्रिपरिषद् का निम्न सदन के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व
- मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था
- विधि के समक्ष समता
- एकल नागरिकता
- संसदीय विशेषाधिकार
- परमाधिकार लेख (रिट)
- विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया
- विधायी प्रक्रिया

अमेरिका का संविधान

- स्वतंत्र न्यायपालिका
- न्यायिक पुनरवलोकन
- न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया (उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय)
- जनहित याचिका (PIL)
- मूल अधिकार
- राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया
- उपराष्ट्रपति का पद
- विधि का सम्मान संरक्षण
- विधि की सम्यक प्रक्रिया
- प्रस्तावना की प्रथम पंक्ति (हम भारत के लोग)

कनाडा का संविधान

- परिसंघीय व्यवस्था जिसमें अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र में निहित हो।
- केन्द्र द्वारा राज्यों में राज्यपाल की नियुक्ति
- उच्चतम न्यायालय की परामर्शी अधिकारिता (राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय से परामर्श ले सकता है)

आयरलैण्ड का संविधान

- राज्य के नीति निदेशक तत्व
- राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति
- राज्यसभा में सदस्यों का मनोनयन

दक्षिण अफ्रीका का संविधान

- संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
- राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन

ऑस्ट्रेलिया का संविधान

- समवर्ती सूची
- संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक
- प्रस्तावना का प्रारूप
- अन्तर्राज्यीय व्यापार, वाणिज्य एवं समागम की स्वतन्त्रता
- अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को लागू करने के लिए संघ राज्य सूची के विषय पर कानून बना सकता है।

फ्रांस का संविधान

- गणतंत्र
- प्रस्तावना में स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता के आदर्श

सोवियत संघ का संविधान

- मूल कर्त्तव्य
- प्रस्तावना में न्याय (सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक) का आदर्श
- आयोजना

जापान का संविधान

- विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया

जर्मनी का संविधान

- राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान मूल अधिकारों का निलम्बन
- केवल संघ आपातकाल लगा सकता है

Springboard ACADEMY

प्रश्नः क्या भारतीय संविधान एक उधार का थैला है?

उत्तरः प्रारूप समिति ने लगभग 60 देशों के संविधानों का अध्ययन किया तथा उनके बेहतर प्रावधानों से प्रेरणा लेकर भारतीय संविधान का प्रारूप तैयार किया इसलिए कुछ आलोचक इसे उधार का थैला कहते है।

परन्तु यह कहना उचित नहीं है क्योंकि हमारे संविधान निर्माताओं ने केवल उनसे प्रेरणा ली, उनका अंधानुकरण नहीं किया।

डॉ. बी.आर. अम्बेड़कर के अनुसार जिस समय हम संविधान बना रहे थे, उससे सैकड़ों वर्ष पूर्व अनेक देशों ने संविधान बना लिए थे तथा उन्हें लागू करने के अनुभव भी प्राप्त कर लिए थे अतः हमारे पास यह विकल्प था कि हम उनके अनुभवों का लाभ उठाए। साथ ही उस समय नया कुछ करने को था भी नहीं।

संविधान निर्माताओं ने मौलिकता व नयेपन की बजाय व्यावहारिकता को अधिक महत्त्व दिया। इन्होंने केवल उन्हीं प्रावधानों को अपनाया जो भारतीय समाज की परिस्थितियों व आवश्यकताओं के अनुरूप थे। इन प्रावधानों को भी यथावत् अपनाने की बजाय हमारी आवश्यकतानुसार इनमें परिवर्तन किए गए; जैसेः–

- संसदीय शासन व्यवस्था हमने ब्रिटेन से ग्रहण की परन्तु उनके राजतंत्र की बजाय हमने गणराज्य अपनाया तथा उनके विपरीत हमने स्वतंत्र न्यायपालिका की अवधारणा अपनाई।
- गणतंत्र का प्रावधान हमने फ्रांस से ग्रहण किया किन्तु भारत के राष्ट्रपति का पद व शक्तियाँ फ्रांस के राष्ट्रपति से भिन्न है।
- द्विसदनीय व्यवस्था का प्रावधान ब्रिटेन से लिया गया किन्तु भारत में राज्य सभा का गठन व शक्तियाँ हाउस ऑफ लॉर्ड्स से भिन्न है।
- स्वतंत्र न्यायपालिका की अवधारणा अमेरिका से ली गई किन्तु उनके समान दोहरी न्यायपालिका के बजाय भारत ने एकल न्यायपालिका को अपनाया।
- राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया अमेरिका से ग्रहण की गई किन्तु ये अनेक मामलों में उनसे भिन्न है।
- उपराष्ट्रपति का पद अमेरिकी संविधान से लिया गया है किन्तु भारतीय उपराष्ट्रपति की निर्वाचन प्रक्रिया व शक्तियाँ अमेरिकी उपराष्ट्रपति से भिन्न है।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने अन्य संविधानों का अंधानुकरण नहीं किया है बल्कि उनसे प्रेरणा लेकर परिस्थितिनुसार उनमें बदलाव किया है अतः संविधान को मात्र उधार का थैला नहीं कहा जा सकता। सभी संस्कृतियाँ एक–दूसरे से प्रेरणा लेती हैं। यदि हमने लोकतांत्रिक मामलों में उनसे प्रेरणा ली है तो उन देशों ने भी अनेक मामलों में भारतीय संस्कृति से प्रेरणा ली है।

प्रस्तावना

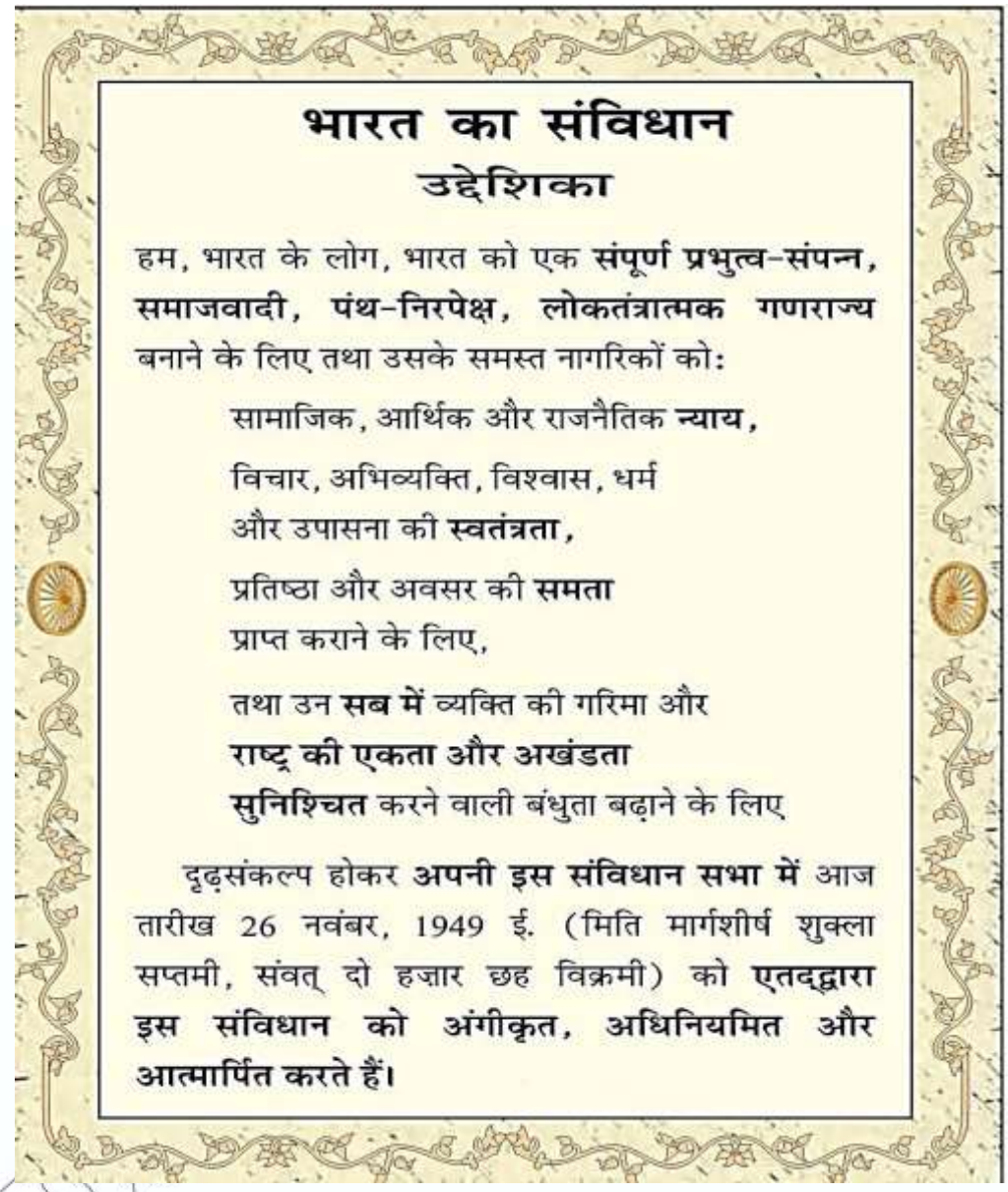

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

➢ 'हम भारत के लोग' अर्थात् सम्प्रभुता जनता में निहित है।

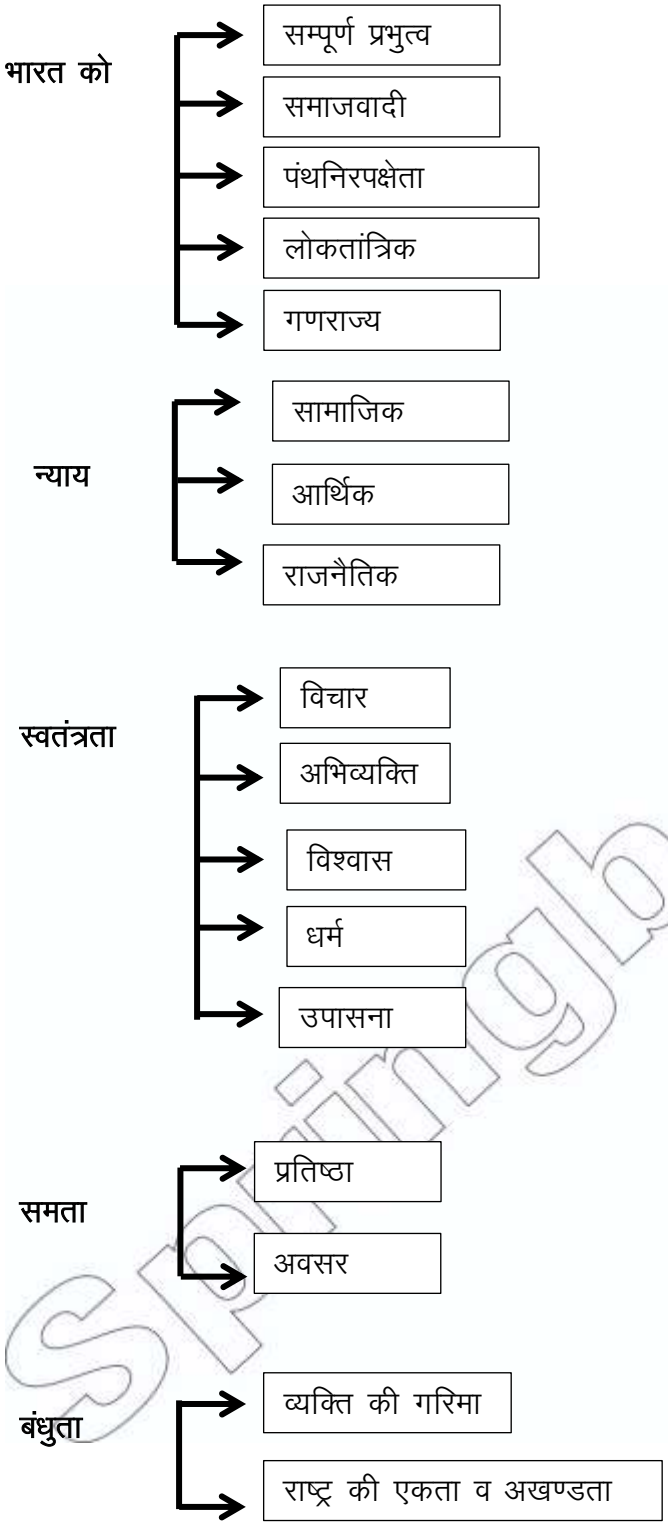

तारीख– 26 नवम्बर, 1949 ई.
(मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी संवत् 2006 विक्रमी)

संविधान को
- अंगीकृत
- अधिनियमित
- आत्मार्पित करते हैं।

प्रस्तावना – भारतीय संविधान का दर्शन

- प्रस्तावना भारतीय संविधान का दर्शन है। प्रस्तावना में भारतीय गणराज्य की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई गई हैं–

1. सम्प्रभुता

सम्प्रभुता से तात्पर्य है कि कोई देश पूरी तरह से स्वतंत्र हो अर्थात् वह अपने सभी निर्णय स्वयं लेता हो और किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से वह किसी अन्य देश/सत्ता के अधीन नहीं हो।

- 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत एक डोमिनियन स्टेट बना। यद्यपि भारत स्वतंत्र हो गया था परन्तु हमारी शासन व्यवस्था भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के प्रावधानों से संचालित होती थी; जैसे–
  - 'भारत सरकार अधिनियम 1935' हमारे संविधान के रूप में प्रयोग किया जाता था।
  - संविधान सभा ही विधायिका का कार्य भी करती थी।
  - ब्रिटिश प्रिवी कांउसिल हमारा सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय था।
  - 26 जनवरी 1950 को भारत एक सम्प्रभु राष्ट्र बना।
  - पाकिस्तान 1956 तक डोमिनियन स्टेट रहा।
  - कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड अभी भी डोमिनियन स्टेट है क्योंकि ब्रिटिश क्राउन इनका राष्ट्राध्यक्ष है।
  - वर्तमान में लगभग सभी देशों को अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के निर्देशों का पालन करना पड़ता है तथा उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक दबाव को भी मानना पड़ता है।

लेकिन इससे सम्प्रभुता सीमित नहीं होती क्योंकि प्रत्येक देश अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर ही इन्हें स्वीकार करता है तथा यह कभी भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की सदस्यता को त्यागने के लिए स्वतंत्र है।

2. समाजवाद

- भारत एक समाजवादी देश है परन्तु हमारा समाजवाद साम्यवाद से अलग है। यह हिंसक क्रांति का समर्थन नहीं करता बल्कि लोकतांत्रिक तरीके से बदलावों का समर्थन करता है।
- व्यक्तिगत सम्पत्ति को मान्यता देता है।
- संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण पर बल देता है अर्थात् योग्यता के आधार पर वितरण।
- संसाधनों के अहितकारी संकेन्द्रण का विरोध करता है।
- कमजोर लोगों को विशेष संरक्षण देने पर बल देता है।
- भारतीय समाजवाद फेबियन समाजवाद है।

साम्यवाद	समाजवाद
➢ यह हिंसक क्रांति का समर्थन करता है।	➢ यह हिंसा का विरोध तथा लोकतांत्रिक आंदोलन का समर्थन करता है।
➢ यह निजी सम्पत्ति का विरोध करता है। संसाधनों पर सार्वजनिक क्षेत्र का अधिकार होना चाहिए।	➢ यह उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व को मान्यता देता है।
➢ यह राष्ट्रवाद को नहीं मानता।	➢ यह राष्ट्रवाद को मानता है।
➢ यह धर्म को नहीं मानते इनके अनुसार धर्म अफीम है।	➢ यह धर्म का समर्थन करते हैं।
➢ वर्ग संघर्ष	➢ वर्ग संघर्ष व वर्ग सहयोग दोनों
➢ संसाधनों का समान या आवश्यकता के अनुसार वितरण	➢ संसाधनों का योग्यता के अनुसार वितरण, साथ ही कमजोर वर्ग को विशेष संरक्षण।
➢ लोकतंत्र में विश्वास नहीं, सर्वहारा वर्ग की तानाशाही में विश्वास	➢ लोकतंत्र का समर्थन

माओवाद

- यह समाजवाद का ही एक रूप है। इसका प्रवर्तक माओ जेदोंग तुंग था। 1 अक्टूबर 1949 को इसके नेतृत्व में चीन में क्रांति हुई। यह निम्नलिखित मामलों में मार्क्सवाद से अलग है–
  - इसके अनुसार किसान भी क्रांति कर सकते हैं जबकि मार्क्स के अनुसार औद्योगीकरण का चरम विकास होने पर मजदूर क्रांति कर सकते हैं।
  - यह राष्ट्रवाद में विश्वास करता है।
  - यह विश्व क्रांति का समर्थन नहीं करता; इसके अनुसार एक ही देश में साम्यवाद सुरक्षित रह सकता है।

3. पंथ निरपेक्षता

- भारत एक पंथनिरपेक्ष देश है क्योंकि भारत का कोई राष्ट्रीय धर्म नहीं है।
- विधि का शासन है, विधि के समक्ष सभी समान है।
- धर्म के आधार पर राज्य किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करता।
- लोकनियोजन में सभी धर्मों को समान अवसर उपलब्ध करवाए जाते हैं।
- धार्मिक स्वतंत्रता मूल अधिकार है।
- राज्य कोई धार्मिक कर नहीं लगाता।
- सभी नागरिकों को वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है।

भारतीय धर्म निरपेक्षता	पश्चिमी धर्म निरपेक्षता
• भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है–राज्य सभी धर्मों के प्रति निष्पक्ष है लेकिन धर्म से पृथक नहीं है।	• पश्चिम में राज्य सभी धार्मिक संस्थाओं और कार्यों से पृथक रहेगा।
• भारत में राज्य एवं धर्म के बीच सकारात्मक संबंध है अर्थात भारत में सर्वधर्म समभाव को अपनाया गया। • जिसका अर्थ है सभी धर्मों का समान संरक्षण किया जायेगा। (अनुच्छेद 25–28)	• राज्य एवं धर्म के बीच पूर्ण पृथकता रहेगी तथा राज्य धर्म के सार्वजनिक प्रदर्शन में विश्वास नहीं रखता है।
• भारत में धर्मनिरपेक्षता प्राचीन एवं मध्य भारत से ही अपनायी गई है।	• पश्चिम में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा प्रबोधन के समय मध्य 17वीं शताब्दी में आयी।
• हालांकि भारतीय संविधान में 42 वें संविधान संशोधन से 'पंथनिरपेक्षता' शब्द रखा गया।	• जिसे सर्वप्रथम फ्रांस द्वारा अपनाया गया।

पंथ निरपेक्षता v/s धर्म निरपेक्षता

- धर्म शब्द की उत्पत्ति 'धृ' धातु से हुई है जिसका अर्थ है, 'धारण करने योग्य'। धारण करने योग्य का अर्थ है– 'कर्त्तव्य'
- अतः परम्परागत रूप से धर्म का अर्थ था 'कर्त्तव्य'। इसलिए 'Secularism' का हिन्दी अनुवाद 'पंथनिरपेक्षता' है न कि 'धर्म निरपेक्षता'।

4. लोकतंत्र

जनता का, जनता के द्वारा तथा जनता के लिए शासन लोकतंत्र कहलाता है। लोकतंत्र 2 प्रकार का होता है।

1. प्रत्यक्ष लोकतंत्र 2. अप्रत्यक्ष लोकतंत्र

1. प्रत्यक्ष लोकतंत्र –

यदि शासन में जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी हो अर्थात् कार्यपालिका तथा विधायिका से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय जनता के द्वारा लिये जाते हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र के निम्न रूप हैः–

(i) रेफरेन्डम (परिपृच्छा) – जनता से ली गई राय जिसे लागू करना वैधानिक रूप से बाध्यकारी हो। प्रायः विदेशी मामलों में इसका प्रयोग किया जाता है।

(ii) प्लेबिसाइट (जनमत संग्रह) – जनता से ली गई राय जिसे लागू करना वैधानिक रूप से बाध्यकारी ना हो। घरेलू नीति निर्माण से संबंधित मामलों में इसका प्रयोग किया जाता है।

(iii) राइट टू रिकॉल – जनता के पास यह अधिकार होता है कि वह अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों को उनका कार्यकाल पूरा होने से पूर्व वापस बुला सकती है अर्थात् उनको पद से हटा सकती है।

(iv) इनिशिएटिव (पहल) – इसमें विधि निर्माण करने के लिए जनता को पहल करने का अधिकार दिया जाता है। यदि निश्चित संख्या में जनता किसी प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करती है तो इसे विधायिका में पेश किया जाना बाध्यकारी होता है। यह प्रावधान स्विट्जरलैण्ड में है।

- प्रत्यक्ष लोकतंत्र छोटे देशों में संभव हो सकता है। भारत भौगोलिक दृष्टि से अत्यधिक विस्तृत है तथा यहाँ जनसंख्या भी अधिक है। भारत में संचार के साधनों की कमी भी है, साथ ही लोगों में शिक्षा व राजनीतिक विषयों की समझ भी कम है। अतः यहाँ प्रत्यक्ष लोकतंत्र संभव नहीं है।

2. अप्रत्यक्ष लोकतंत्र –

यदि शासन में जनता की अप्रत्यक्ष भागीदारी हो अर्थात् जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि यदि कार्यपालिका व विधायिका से संबंधित महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते हो तो इसे अप्रत्यक्ष लोकतंत्र कहते है। इसके अनेक रूप होते हैं–

(i) संसदीय शासन व्यवस्था – भारत, ब्रिटेन
(ii) अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था – अमेरिका
(iii) दोहरी कार्यपालिका – फ्रांस
(iv) बहुल कार्यपालिका – स्विट्जरलैण्ड

- अप्रत्यक्ष लोकतंत्र को एक अन्य रूप में भी बाँटा जा सकता है–
  (i) एकात्मक शासन व्यवस्थाः समस्त शक्तियाँ केन्द्र सरकार में निहित होती है। (ब्रिटेन)
  (ii) परिसंघीय शासन व्यवस्थाः राज्यों को अधिक शक्तियाँ प्राप्त होती है।
- भारत में अप्रत्यक्ष लोकतंत्र है तथा यहां संसदीय शासन व्यवस्था के तहत अर्द्ध–परिसंघीय ढाँचा अपनाया गया है।

5. गणराज्य

- यदि किसी देश का राष्ट्राध्यक्ष वंशानुगत नहीं है तो इसे गणतंत्र कहते है। यह राजतंत्र की विरोधी विचारधारा है।
- अन्य अर्थ – किसी भी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग की अनुपस्थिति अर्थात सभी सार्वजनिक कार्यालय बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक नागरिक के लिए खुले होंगे।

राष्ट्राध्यक्ष→वंशानुगत नहीं→गणराज्य

जनता→की शासन में भागदारी–लोकतंत्र

- ब्रिटेन लोकतंत्र है किन्तु गणराज्य नहीं। वहां लोकतान्त्रिक राजतंत्र है।
- चीन में लोकतंत्र नहीं है क्योंकि शासन में जनता की भागीदारी नहीं है परन्तु वह गणतंत्र है क्योंकि वहां वंशानुगत राष्ट्राध्यक्ष नहीं है।
- भारत, अमेरिका, फ्रांस लोकतांत्रिक गणराज्य है।
- ब्रुनेई में राजतंत्र है।
- के.पी.जायसवाल के अनुसार प्राचीन भारत में गणतन्त्र की अवधारणा रोमन या ग्रीक गणतन्त्र की प्रणाली से भी पुरानी है।

6. न्याय

➢ प्रस्तावना में न्याय के निम्नलिखित प्रकार दिए गए है–

(i) सामाजिक न्याय –

एक ऐसा समाज जिसमें निम्नलिखित आधारों पर भेदभाव नहीं हो– धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान, भाषा, रंग, उम्र, लैंगिक रूझान (LGBTQ- लेस्बियन, गे, बाइसेक्सुअल, ट्रांसजेन्डर क्वीर) आदि।

- समाज में समानता हो तथा समाज सामाजिक रुढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों, आडम्बरों आदि से मुक्त हो।
- व्यक्ति को विकास हेतु स्वच्छ व स्वतंत्र वातावरण उपलब्ध हो।

(ii) आर्थिक न्याय –

आर्थिक न्याय से तात्पर्य है– संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण' अर्थात् योग्यता के आधार पर वितरण किन्तु साथ ही वंचित व कमजोर वर्गों के लिए विशेष प्रावधान किए जाए। सभी लोगों को रोजगार उपलब्ध हो, आर्थिक शोषण का अभाव हो, न्यूनतम मजदूरी दरें निर्धारित हों, सभी की बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी हो, धन व उत्पादन के साधनों का अहितकारी संकेन्द्रण न हो।

(iii) राजनीतिक न्याय –

- सभी नागरिकों को मतदान करने व चुनाव लड़ने की स्वतंत्रता हो,
- निष्पक्ष व पारदर्शी चुनाव प्रणाली हो,
- चुनावों में धनबल व बाहुबल का प्रयोग ना हो,
- चुनावों में जातिवाद, क्षेत्रवाद व साम्प्रदायिकता आदि का प्रयोग ना हो,
- चुनाव विकास के मुद्दों पर सम्पन्न हो।

❖ हंसा मेहता ने महिलाओं के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की माँग की थी।

7. स्वतन्त्रता

➢ स्वतंत्रता का अर्थ है कि लोगो की गतिविधियों पर किसी प्रकार की रोकटोक की अनुपस्थिति तथा साथ ही व्यक्ति के विकास के लिए अवसर प्रदान करना।

➢ हालांकि स्वतंत्रता का अभिप्राय यह नहीं है कि हर व्यक्ति को कुछ भी करने का लाइसेन्स मिल गया हो।

➢ स्वतंत्रता के अधिकार का इस्तेमाल संविधान में लिखी सीमाओं के भीतर ही किया जा सकता है।

8. समता

समता का अर्थ है कि समाज के किसी भी वर्ग के लिए विशेषाधिकारों की अनुपस्थिति और बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति को समान अवसर प्रदान करना।

9. बन्धुत्व

➢ बन्धुत्व का अर्थ है – भाईचारे की भावना। संविधान एकल नागरिकता के माध्यम से भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित करता है।

➢ मौलिक कर्त्तव्य भी वर्ग विविधताओं से ऊपर उठकर सौहार्द और आपसी भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित करता है।

प्रश्नः क्या प्रस्तावना संविधान का भाग हैं?

उत्तरः बेरूबाड़ी वाद, 1960 – उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि प्रस्तावना संविधान का भाग नहीं है। केशवानन्द भारती वाद, 1973 – उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय को उलट दिया तथा माना कि प्रस्तावना संविधान का भाग है।

एल.आई.सी. ऑफ इण्डिया वाद, 1995 – उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तावना को संविधान का अभिन्न अंग माना है।

- किन्तु यह अनुच्छेदों की भांति स्वतंत्र रूप से प्रभावी नहीं है। यह न तो संसद को किसी प्रकार की शक्ति प्रदान करती है और न ही संसद की शक्ति पर कोई अंकुश लगाती है। यह न्यायालय के द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है।
- संविधान के किसी अनुच्छेद की व्याख्या करने हेतु प्रस्तावना को आधार बनाया जा सकता है अर्थात् प्रस्तावना संविधान की व्याख्या में सहायक है।

प्रश्नः क्या प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है?

उत्तरः केशवानन्द भारती वाद 1973 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया की संसद द्वारा संविधान के किसी भी भाग में संशोधन किया जा सकता है अतः प्रस्तावना में भी संशोधन किया जा सकता है लेकिन इससे संविधान का मूल ढाँचा प्रभावित नहीं होना चाहिए।

42वें संविधान संशोधन 1976 द्वारा प्रस्तावना में संशोधन करके तीन नए शब्द जोड़े गए–

1. समाजवादी
2. पंथनिरपेक्ष
3. अखण्डता

प्रस्तावना की आलोचनाएँ

- प्रस्तावना मौलिक नहीं है बल्कि यह नकल है क्योंकि इसकी प्रथम पंक्ति अमेरिकी संविधान से तथा शेष प्रारूप ऑस्ट्रेलिया के संविधान से लिया गया है।
- प्रस्तावना संविधान का भाग होते हुए भी अनुच्छेदों की भांति प्रभावी नहीं है। क्योंकि यह ना तो संसद को कोई शक्ति प्रदान करती है, ना ही संसद की शक्तियों पर कोई अंकुश लगाती हैं। यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है।
- प्रस्तावना में प्रयुक्त 'समाजवाद' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है क्योंकि भारत एक साम्यवादी देश नहीं है। भारत निजी सम्पत्ति को मान्यता देता है, यहाँ आर्थिक असमानता है तथा 1991 के बाद हम लगातार पूंजीवाद की तरफ बढ़ रहे है अतः 'समाजवाद' शब्द अप्रासंगिक हो गया है।
- 'पंथनिरपेक्षता' शब्द का भी अर्थ स्पष्ट नहीं है क्योंकि भारत में धर्म को राज्य से पृथक नहीं किया गया है बल्कि राज्य सभी धर्मों को संरक्षण देता है तथा नागरिक संहिताएं धार्मिक विश्वासों पर आधारित है अतः विधि के समक्ष समता भी नहीं है।

''संविधान की प्रस्तावना हमारे दीर्घकालिक सपनों का विचार है'' – **अल्लादि कृष्ण स्वामी अय्यर**

भारतीय संविधान की अनुसूचियाँ

➢ भारतीय संविधान में कुल 12 अनुसूचियाँ है किन्तु मूल संविधान में अनुसूचियों की संख्या 8 थी। शेष अनुसूचियाँ कालान्तर में संविधान संशोधनों के माध्यम से संविधान में जोडी गई।

1. प्रथम अनुसूची

➢ राज्यों व संघ शासित प्रदेशों के नाम व सीमाएँ

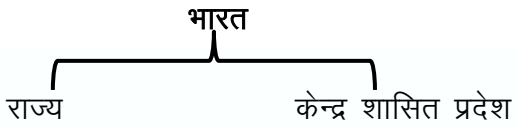

2. द्वितीय अनुसूची

➢ परिलब्धियों पर भत्ते, विशेषाधिकार और इसस संबंधित प्रावधान

➢ भारत की संचित निधि पर भारित वेतन

केन्द	राज्य
1. राष्ट्रपति	1. राज्यपाल
2. राज्यसभा (i) सभापति (ii) उपसभापति	2. विधानपरिषद् (i) सभापति (ii) उपसभापति
3. लोकसभा (i) अध्यक्ष (ii) उपाध्यक्ष	3. विधानसभा (i) अध्यक्ष (ii) उपाध्यक्ष
4. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश	4. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की पेंशन
5. भारत के नियंत्रक व महालेखा परीक्षक	

3. तीसरी अनुसूची

शपथ का प्रारूप

केन्द	राज्य
1. संसद का उम्मीदवार	1. एम.एल.ए./एम.एल.सी. का उम्मीदवार
2. सांसद	2. एम.एल.ए./एम.एल.सी.
3. मंत्री	3. मंत्री
4. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश	4. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश
5. भारत के नियंत्रक व महालेखा परीक्षक	

➢ अनुच्छेद 60 – राष्ट्रपति की शपथ।

➢ अनुच्छेद 69 – उपराष्ट्रपति की शपथ।

➢ अनुच्छेद 159 – राज्यपाल की शपथ।

- राज्यसभा के सभापति व उपसभापति; लोकसभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष तथा विधानसभा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के लिए अलग से शपथ का प्रावधान नहीं है।
- भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान शपथ लेता है।

4. चौथी अनुसूची

- राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए राज्यसभा में सीटों का आवंटन।

5. पाँचवीं अनुसूची

- अनुसूचित क्षेत्रों व अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन तथा नियंत्रण से संबंधित प्रावधान।

6. छठी अनुसूची

- असम, मेघालय, त्रिपुरा व मिजोरम राज्यों के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन व नियंत्रण से संबंधित प्रावधान।

7. सातवीं अनुसूची

- संघ व राज्यों के मध्य विषयों के माध्यम से शक्तियों का विभाजन

सूची	आरम्भ में विषय	वर्तमान विषय
संघ सूची	97	98
राज्य सूची	66	59
समवर्ती सूची	47	52

- 42वें संविधान संशोधन 1976 द्वारा 5 विषय राज्य सूची से हटाकर समवर्ती सूची में जोड़े गए–
  1. वन
  2. वन्यजीव
  3. नाप–तोल की इकाइयाँ
  4. न्यायिक प्रशासन
  5. शिक्षा

8. आठवीं अनुसूची

संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त भाषाएँ

मूल रूप से 14 भाषाएँ थी, किन्तु वर्तमान में 22 भाषाएँ हैं; जो निम्नलिखित हैं–

1.	असमिया	2.	बांग्ला
3.	गुजराती	4.	हिन्दी
5.	कन्नड़	6.	कश्मीरी
7.	मलयालम	8.	मराठी
9.	उड़िया	10.	पंजाबी
11.	संस्कृत	12.	तमिल
13.	तेलुगू	14.	उर्दू

नोट– 2011 में उड़िया का नाम बदलकर ओडिया कर दिया गया। (96वाँ संशोधन)

15. सिंधी

नोट– 21वें संविधान संशोधन, 1967 द्वारा जोड़ी गई।

16.	कोंकणी	17.	मणिपुरी

18. नेपाली

नोट– 71वें संविधान संशोधन, 1992 द्वारा जोड़ी गई।

19. बोड़ो 20. डोगरी
21. मैथिली 22. संथाली

नोट– 92वें संविधान संशोधन 2003, द्वारा जोड़ी गई।

9. नौवीं अनुसूची

- यह पहले संविधान संशोधन 1951 द्वारा संविधान में जोड़ी गई।
- यदि किसी अधिनियम को इस अनुसूची में शामिल किया जाता है तो उसका न्यायिक पुनरावलोकन नहीं किया जा सकता।
- जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करने तथा भूमि सुधारों को लागू करने हेतु संसद द्वारा पारित अधिनियमों के संरक्षण के लिए इस अनुसूची का प्रावधान किया गया था।
- आरम्भ में इसमें 13 अधिनियम थे परन्तु कालान्तर में इनकी संख्या 282 हो गई।
- आई. आर. कोइल्हो बनाम तमिलनाडु वाद 2007 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि 24 अप्रैल 1973 के बाद जो भी अधिनियम 9वीं अनुसूची में रखे गये हैं, उनका न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकता है। 24 अप्रैल 1973 को केशवानन्द भारती वाद का निर्णय दिया गया जिसमें न्यायिक पुनरावलोकन को संविधान का बुनियादी ढाँचा माना गया। बुनियादी ढाँचे की अवधारणा इसी वाद के निर्णय में अस्तित्व में आई।

10. दसवीं अनुसूची

दल–बदल विरोधी प्रावधान

- यह 52वें संविधान संशोधन 1985 द्वारा संविधान में जोड़ी गई।
- 91वें संविधान संशोधन, 2003 द्वारा इसमें कुछ संशोधन किए गए हैं।
- इसमें दल–बदल के आधार पर संसद तथा विधानसभा के सदस्यों की निरर्हता से संबंधित प्रावधान है–
    - यदि कोई सदस्य चुनाव पश्चात दल बदलता है तो उसकी सदन की सदस्यता समाप्त हो जाएगी।
    - किसी दल के दो–तिहाई सदस्य एक साथ दूसरे दल में विलय कर सकते हैं और नया राजनीतिक दल नहीं बना सकते। इस आधार पर इन सदस्यों की सदस्यता नहीं जाएगी।
    - निर्दलीय सदस्य किसी दल में शामिल नहीं हो सकता।
    - मनोनीत सदस्य 6 माह के अन्दर किसी दल में शामिल हो सकते हैं।
    - यदि कोई सदस्य व्हिप (Whip) का उल्लंघन करता है तथा उसका राजनीतिक दल 15 दिन के भीतर उसे क्षमा नहीं करता है तो वह सदन की सदस्यता खो देगा।
- ये प्रावधान लोकसभा एवं विधानसभा अध्यक्ष पर लागू नहीं होते।
- दल–बदल का अन्तिम निर्णय सदन का अध्यक्ष या सभापति लेता है।
- किहोतो होलोहान वाद, 1992 – उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि सभापति/अध्यक्ष के निर्णय को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

11. ग्यारहवीं अनुसूची

- यह 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संविधान में जोड़ी गई थी। (1993 में जोड़ी गई)
- इसमें पंचायतों को दी गई शक्तियों व उत्तरदायित्वों का उल्लेख है।
- इसमें कुल 29 विषय पंचायतों को दिए गए हैं।
- राजस्थान में पंचायतों को 22 विषय दिए गए हैं।

12. बारहवीं अनुसूची

- यह 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संविधान में जोड़ी गई है (1993 में जोड़ी गई है)।
- इसमें नगरीय निकायों को दी गई शक्तियों व उत्तरदायित्वों का उल्लेख है।
- इसमें कुल 18 विषय है।

भारतीय संविधान के भाग

भाग	विषय		अनुच्छेद
I	संघ व उसका राज्य क्षेत्र	–	अनुच्छेद 1 से 4
II	नागरिकता	–	अनुच्छेद 5 से 11
III	मौलिक अधिकार	–	अनुच्छेद 12 से 35
IV	राज्य के नीति निदेशक तत्व	–	अनुच्छेद 36 से 51
IV क	मूल कर्त्तव्य	–	अनुच्छेद 51–क
V	संघ	–	अनुच्छेद 52 से 151
VI	राज्य	–	अनुच्छेद 152 से 237
VII	निरस्त	–	अनुच्छेद 238 निरस्त
VIII	संघ शासित प्रदेश	–	अनुच्छेद 239 से 242
IX	पंचायतें	–	अनुच्छेद 243 से 243–ण
IX क	नगरीय निकाय	–	अनुच्छेद 243-त से 243–छ
IX ख	सहकारिता	–	अनुच्छेद 243–ZH से 243–ZT
X	अनुसूचित व जनजातीय क्षेत्र	–	अनुच्छेद 244 से 244–क
XI	संघ व राज्यों के विधायी तथा प्रशासनिक संबंध	–	अनुच्छेद 245 से 263
XII	संघ व राज्य के मध्य वित्तीय संबंध	–	अनुच्छेद 264 से 300–क
XIII	अन्तर्राज्यीय व्यापार–वाणिज्य एवं समागम	–	अनुच्छेद 301 से 307
XIV	संघ व राज्यों के अधीन सेवाएँ	–	अनुच्छेद 308 से 323
XIV-क	न्यायाधिकरण	–	अनुच्छेद 323–क से 323–ख
XV	निर्वाचन	–	अनुच्छेद 324 से 329–क
XVI	कुछ वर्गों के लिए विशेष प्रावधान	–	अनुच्छेद 330 से 342-क
XVII	राजभाषा	–	अनुच्छेद 343–351
XVIII	आपातकालीन उपबंध	–	अनुच्छेद 352 से 360
XIX	प्रकीर्ण	–	अनुच्छेद 361 से 367
XX	संविधान संशोधन	–	अनुच्छेद 368
XXI	अस्थाई प्रावधान	–	अनुच्छेद 369 से 392
XXII	संक्षिप्त नाम, हिन्दी अनुवाद	–	अनुच्छेद 393 से 395

Springboard ACADEMY

संघ व उसका राज्य क्षेत्र

अनुच्छेद 1–4

अनुच्छेद 1 – 'संघ का नाम तथा राज्यक्षेत्र'

- यह अनुच्छेद तीन बातें स्पष्ट करता है–
  1. देश का नाम
  2. राज्य की प्रकृति (राज्यों का संघ)
  3. भू–भाग
- 'इंडिया' जो कि 'भारत' है, 'राज्यों का संघ' होगा।
- संविधान में सभी स्थानों पर 'संघ' (यूनियन) शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें 'फेडरल' शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है।

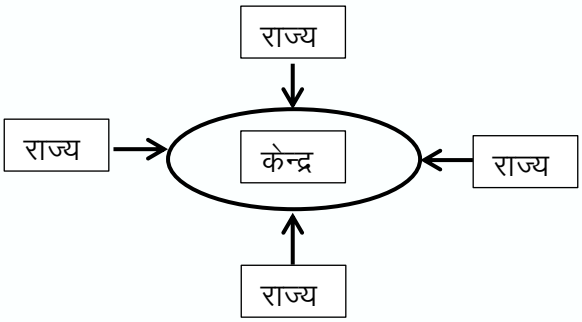

फेडरेशन ऑफ स्टेट्स (यू.एस.ए)

- ❖ राज्यों से केन्द्र की तरफ शक्ति हस्तांतरण।
- ❖ राज्य अधिक शक्तिशाली।
- ❖ अविनाशी राज्यों का अविनाशी संघ

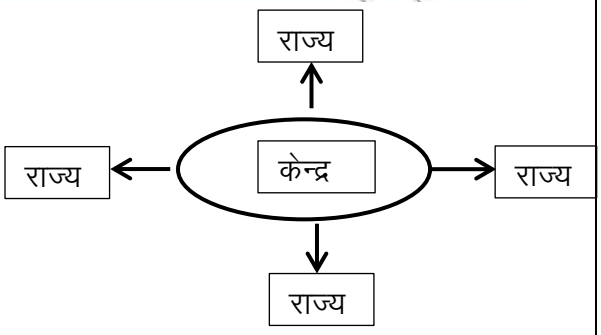

यूनियन ऑफ स्टेट्स (भारत)

- ❖ केन्द्र से राज्यों की तरफ शक्ति हस्तांतरण।
- ❖ केन्द्र अधिक शक्तिशाली।
- ❖ विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ

- डॉ. भीमराव अम्बेड़कर के अनुसार 'शांतिकाल में भारत 'फेडरल' हैं तथा आपातकालीन स्थितियों में यह 'यूनियन' हो जाता है। उनके अनुसार संविधान की मूल प्रवृति फेडरल है। लेकिन इसमें फेडरल शब्द का उल्लेख नहीं किया गया क्योंकि अमेरिका की भाँति भारत राज्यों के मध्य समझौते का परिणाम नहीं है बल्कि प्राचीनकाल से ही भारत एक राष्ट्र हैं यहाँ देश द्वारा राज्य बनाए गए है ना कि राज्यों द्वारा देश।
- भारतीय संविधान में यूनियन व फेडरेशन दोनों की विशेषताएँ है इसिलए अधिकांश लोग इसे 'क्वासी फेडरल' (अर्द्ध परिसंघीय) मानते हैं।
- भारत 'विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ' है जबकि अमेरिका 'अविनाशी राज्यों का अविनाशी संघ' है।
- अनुच्छेद 1 के अनुसार भारत के राज्य क्षेत्र में निम्न शामिल हैं–
  1. सभी राज्य
  2. सभी केन्द्र शासित प्रदेश
  3. अन्य अधिग्रहीत क्षेत्र

अनुच्छेद 2 – नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना

- संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी राज्य को भारत में मिला सकती है तथा संसद को जो भी शर्तें उचित लगे, उनके आधार पर राज्य की स्थापना कर सकती है। (यह भारत से बाहर के राज्यों के लिए है)

अनुच्छेद 3 – नए राज्य के गठन संबंधी प्रावधान

- केन्द्र किसी भी राज्य को विभाजित कर नए राज्य का गठन कर सकता है। किसी भी राज्य के नाम, क्षेत्र तथा सीमा में परिवर्तन कर सकता है।

नए राज्य के गठन की प्रक्रिया

- नए राज्य के गठन से संबंधित विधेयक राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से पेश किया जाता है।
- विधेयक को संबंधित राज्य/राज्यों के पास भेजा जाता है और विधानमण्डल में पेश किया जाता है।
- राज्य के विधानमण्डल की सहमति या असहमति से विधेयक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
- केन्द्रशासित प्रदेश के मामले में सम्बन्धित विधानमण्डल के संदर्भ की कोई आवश्यकता नहीं होती, संसद जब उचित समझे स्वयं कदम उठा सकती है।
- राष्ट्रपति विधेयक को लौटाने की समय सीमा निर्धारित करता है एवं समय सीमा में बदलाव भी कर सकता है।
- यह विधेयक संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।
- इसे संसद के दोनों सदनों में साधारण बहुमत से पारित होना आवश्यक है।
- राष्ट्रपति इसे पुनर्विचार हेतु नहीं लौटा सकता है।

अनुच्छेद – 4

- पहली व चौथी अनुसूची में किए गए परिवर्तनों को संविधान संशोधन नहीं माना जाएगा।
- बेरूबाड़ी वाद 1960 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि भारत के राज्यक्षेत्र का कोई भी भाग संविधान संशोधन के बिना किसी अन्य देश को नहीं दिया जा सकता। (अनुच्छेद 4 इसे संरक्षण नहीं देता।)
- 9वें संविधान संशोधन, 1960 के द्वारा बेरूबाड़ी क्षेत्र (पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी में स्थित) पाकिस्तान को दिया गया। नेहरू–नून (पाकिस्तानी प्रधानमंत्री फिरोज़ खान नून) समझौता, 1958 लागू किया गया।
- 1969 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि सामान्य सीमा विवादों को हल करने के लिए संविधान संशोधन की आवश्यकता नहीं है । इसे मंत्रिमण्डल के निर्णय से भी हल किया जा सकता है। लेकिन इसमें राज्यक्षेत्र/भू–भाग की क्षति नहीं होनी चाहिए।
- 100वाँ संविधान संशोधन 2015 के तहत बांग्लादेश के साथ भू–भाग का आदान प्रदान किया गया। भारत ने बांग्लादेश को 111 एन्क्लेव तथा बांग्लादेश ने भारत को 51 एन्क्लेव दिए।

  एन्कलेव – विदेशी क्षेत्र से घिरा भू–भाग

भारत का एकीकरण

- 15 अगस्त 1947 को कुल 565 रियासतें (भारत – 552, पाकिस्तान – 13) अस्तित्व में थी ।
- अक्टूबर 194 – जम्मू कश्मीर का भारत में विलय किया गया। यहाँ के शासक हरिसिंह ने 'विलय पत्र' पर हस्ताक्षर किए।
- फरवरी 1948 – जूनागढ़ रियासत (नवाबः मुहम्मद महाबत खान III, दीवान– शाहनवाज भुट्टो) का भारत में विलय किया गया। यहाँ 'जनमत संग्रह' करवाया गया था।
- नवम्बर 1948 – हैदराबाद रियासत (निज़ामः उस्मान अली आसफ खान) का पुलिस कार्यवाही – 'ऑपरेशन पोलो' द्वारा भारत में विलय किया गया।
- चंद्रनगर 1948 – जनमत संग्रह में 97% लोगों ने भारत में विलय का समर्थन किया।
- 2 फरवरी 1951 – भारत को हस्तांतरित।
- 2 अक्टूबर 1954 – पश्चिम बंगाल में विलय।
- 1954 – यनम, पोंडिचेरी, करैकल तथा माहे को फ्रांसीसियों से मुक्त करवाया गया। इसी वर्ष दादरा व नगर हवेली को भी पुर्तगालियों से मुक्त करवाया गया।
- 1961 – गोवा, दमन व दीव को पुर्तगालियों से मुक्त करवाया गया।
- 10वाँ संविधान संशोधन 1961 – दादरा व नगर हवेली का भारत में विलय कर केन्द्र शासित प्रदेश बनाया गया। (अनुच्छेद 240)
- 12वाँ संविधान संशोधन 1962 – गोवा, दमन व दीव का भारत में विलय कर केन्द्र शासित प्रदेश बनाया गया। (अनुच्छेद 240)
- 14वाँ संविधान संशोधन, 1962 – पोंडिचेरी, यनम, करैकल, माहे को भारत में मिलाया गया तथा इन्हें मिलाकर पोंडिचेरी केन्द्र शासित प्रदेश बनाया गया। (अनुच्छेद–239क, 240)

सिक्किम

- सिक्किम में चॉग्याल (धर्मराज) का शासन था।
- सिक्किम को पहले 'रक्षित राज्य' का दर्जा दिया गया था।
- सिक्किम ने अपने तीन विषय भारत को दे रखे थे–
  (i) विदेश मामले
  (ii) रक्षा
  (iii) संचार
- सिक्किम विधानमण्डल ने सिक्किम शासन अधिनियम, 1974 पारित किया ।
- सिक्किम शासन अधिनियम, 1974
  - चोग्याल – संवैधानिक प्रमुख ।
  - उत्तरदायी शासन ।
  - भारत के साथ राजनीतिक सहयोग ।

35वाँ संविधान संशोधन, 1974

- 35वें संविधान संशोधन द्वारा सिक्किम के साथ संबंधों को और मजबूत बनाया गया।
- सिक्किम को 'सहायक राज्य' का दर्जा दिया गया। इस हेतु संविधान में अनुच्छेद 2–क तथा 10वीं अनुसूची जोड़ी गई।
- लोक सभा एवं राज्य सभा प्रत्येक में 2 सदस्य किंतु राष्ट्रपति चुनाव में भाग नहीं ।
- सिक्किम के नागरिक भारतीय प्रशासनिक सेवा हेतु योग्य।

- उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश ।
- कालान्तर में 1975 में 'जनमत संग्रह' करवाया गया जिसमें सिक्किम की जनता ने भारत में विलय के पक्ष में मतदान किया।

36वाँ संविधान संशोधन, 1975

- सिक्किम का पूरी तरह से भारत में विलय कर दिया गया।
- अनुच्छेद 2-क व 10वीं अनुसूची को हटा दिया गया।

राज्यों का पुनर्गठन

- होमरूल आन्दोलन के समय भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की मांग।
- 1920 में काँग्रेस द्वारा भाषायी आधार पर प्रान्तीय समितियाँ गठित।
- 1946 के काँग्रेस के चुनावी घोषणा पत्र में भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की मांग।

एस. के. धर आयोग, 1948

- इस आयोग ने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग को अस्वीकार कर दिया।
- राज्यों के पुर्नगठन का सुझाव–
  - प्रशासनिक सुविधा
  - भौगोलिक समीपता
  - वित्तीय आत्मनिर्भरता
  - विकास के आधार पर

जे.वी.पी. समिति, 1948

- सदस्य – जवाहर लाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल, पट्टाभि सीतारम्मैया
- इस समिति का कार्य धर आयोग की अनुशंसाओं की समीक्षा करना था।
- इस समिति ने भी भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की माँग को अस्वीकार कर दिया।
- मूल संविधान में कुल 29 राज्य थे जो 4 श्रेणियों में विभक्त थे–
  - भाग क – ब्रिटिश गर्वनर शासित प्रांत
  - भाग ख – विधानमंडल वाली पूर्व देशी रियासतें
  - भाग ग – चीफ कमिश्नर प्रांत और कुछ देशी रियासतें
  - भाग घ – अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह

भाग क	भाग ख	भाग ग	भाग घ
असम	हैदराबाद	अजमेर	अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह
बिहार	जम्मू और कश्मीर	कुर्ग	
बॉम्बे	मध्य भारत	दिल्ली	
मध्य प्रांत	मैसूर	भोपाल	
मद्रास	पटियाला और पूर्वी पंजाब	बिलासपुर	
उड़ीसा	राजस्थान	कूच–बिहार	
पंजाब	सौराष्ट्र	हिमाचल प्रदेश	
संयुक्त प्रांत	ट्रावनकोर–कोचीन	कच्छ	
पश्चिम बंगाल	विंध्य प्रदेश	मणिपुर	
		त्रिपुरा	

- तेलुगु भाषी लोग पृथक आन्ध्र राज्य की माँग कर रहे थे। इस हेतु आन्दोलनकर्ता पोट्टी श्रीरामुलु की 56 दिन की भूख हड़ताल के बाद मृत्यु हो गई। इसलिए यह आंदोलन अधिक तेज व हिंसक हो गया अतः सरकार को इनकी माँग माननी पड़ी।
- 1953 में भाषायी आधार पर प्रथम राज्य के रुप में आन्ध्र प्रदेश का गठन किया गया।
- इसके बाद अन्य क्षेत्रों में भी ये मांग बढ़ने लगी इसलिए फजल अली आयोग का गठन किया गया।

फजल अली आयोग, 1953

- सदस्य – के.एम. पणिक्कर, हृदयनाथ कुंजरू
- आयोग ने 1955 में अपनी सिफारिशें दी।
- इसने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की माँग को स्वीकार कर लिया किन्तु यह भी माना कि केवल भाषा के आधार पर ही राज्यों का पुनर्गठन नहीं होना चाहिए वरन् अन्य बातों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। 'एक भाषा–एक राज्य' के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया।

अनुशंसाएँ, 1955

- राज्यों के पुनर्गठन के समय देश की एकता व सुरक्षा का ध्यान रखा जाना चाहिए।
- भाषायी व सांस्कृतिक एकरूपता बनी रहनी चाहिए।
- देश का आर्थिक, वित्तीय व प्रशासनिक विकास अवरूद्ध नहीं होना चाहिए।
- जनता के कल्याण के लिए राज्यों में व सम्पूर्ण देश में 'आयोजना' को बढ़ावा मिले।
- राज्यों की 4 श्रेणियों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए तथा उनके स्थान पर केवल दो श्रेणियों होनी चाहिए–
  (i) राज्य (ii) केन्द्र शासित प्रदेश
- 7वें संविधान संशोधन द्वारा इस आयोग की अनुशंसाओं को लागू कर दिया।
- 1 नवम्बर, 1956 को यह संशोधन लागू हुआ।
- 14 राज्य तथा 6 केन्द्र शासित प्रदेश गठित किए गए। (आयोग ने 16 राज्यों की सिफारिश की।)

- **14 राज्य –**

1.	आन्ध्रप्रदेश	2.	असम
3.	बिहार	4.	बॉम्बे
5.	जम्मू–कश्मीर	6.	केरल
7.	मध्यप्रदेश	8.	मद्रास
9.	मैसूर	10.	उड़ीसा
11.	पंजाब	12.	राजस्थान
13.	उत्तरप्रदेश	14.	प. बंगाल

- **6 केन्द्र शासित प्रदेश–**

1.	अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	2.	लकादीव
3.	दिल्ली	4.	हिमाचल प्रदेश
5.	मणिपुर	6.	त्रिपुरा

- 1960 – बॉम्बे को दो राज्यों में विभाजित किया गया 1. महाराष्ट्र, 2. गुजरात
- 1961 – दादरा और नगर हवेली (केन्द्रशासित प्रदेश)
- 1962 – गोवा, दमन, दीव, पॉण्डिचेरी (केन्द्रशासित प्रदेश)
- 1963 – 'नागालैण्ड' (असम से अलग)
- 1966 – पंजाब को विभाजित कर दो नए राज्य–पंजाब और हरियाणा तथा एक केन्द्रशासित प्रदेश – चंडीगढ़ बनाया गया।
- 1971 – हिमाचल प्रदेश को केन्द्रशासित प्रदेश से राज्य का दर्जा।
- 1972 – 'मणिपुर', 'त्रिपुरा', 'मेघालय' को राज्य बनाया गया।
  - मणिपुर, त्रिपुरा– केन्द्र शासित प्रदेश थे।
  - मेघालय– असम के भीतर 'उपराज्य' था।
  - (22वें संविधान संशोधन से मेघालय को 'उपराज्य' दर्जा दिया गया था।)
  - 'अरूणाचल प्रदेश' तथा 'मिजोरम' को केन्द्रशासित प्रदेश बनाया गया।
- 1975 – सिक्किम का भारत में विलय कर पूर्ण राज्य का दर्जा।
- 1987 – मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश व गोवा को राज्य बनाया गया।
- 2000 – छत्तीसगढ – मध्यप्रदेश से पृथक
- उत्तरांचल – उत्तरप्रदेश से पृथक
- झारखण्ड – बिहार से पृथक
- 2014 – तेलंगाना – आन्ध्रप्रदेश से पृथक
- 2019 – जम्मू–कश्मीर – 2 केन्द्र शासित प्रदेशों में बाँट दिया गया।
  (i) कश्मीर (ii) लद्दाख
- 2020 – दमन & दीव और दादरा नागर हवेली का विलय कर दिया गया।

नाम परिवर्तन

वर्ष	पूर्व नाम	परिवर्तित नाम
1950	संयुक्त प्रान्त	उत्तर प्रदेश
1969	मद्रास	तमिलनाडु
1973	मैसूर	कर्नाटक
1973	लकादीव	लक्षद्वीप
1992	संघ शासित प्रदेश, दिल्ली	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली
2006	उत्तरांचल	उत्तराखण्ड
2006	पाण्डिचेरी	पुदुचेरी
2011	उड़ीसा	ओड़िशा

Springboard ACADEMY

भाग – II
नागरिकता
अनुच्छेद 5 से 11

एकल नागरिकता–

- यद्यपि भारतीय संविधान संघीय है और इसमें दोहरी राजपद्धति (केन्द्र एवं राज्य) को अपनाया है, लेकिन इसमें केवल एकल नागरिकता की व्यवस्था की गई है अर्थात भारतीय नागरिकता।
- यहाँ राज्यों के लिए कोई पृथक नागरिकता की व्यवस्था नहीं है।
- अमेरिका एवं ऑस्ट्रेलिया में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था को अपनाया गया है।

संविधान का भाग–II केवल उन लोगों की पहचान करता है, जो संविधान लागू होने के समय (26 जनवरी, 1950) भारत के नागरिक बने। इसमें न तो नागरिकता अधिग्रहण और न ही नागरिकता की समाप्ति की चर्चा की गई है।

संविधान के अनुसार 4 श्रेणियों के लोग भारत के नागरिक बने–

अनुच्छेद–5 – एक व्यक्ति जो भारत का मूल निवासी है और निम्न में से कोई एक शर्त पूरी करता हो।

- ✓ यदि उसका जन्म भारत में हुआ हो।
- ✓ यदि उसके माता–पिता में से किसी एक का जन्म भारत में हुआ हो।
- ✓ यदि संविधान लागू होने के 5 वर्ष पूर्व से वह भारत में रह रहा हो।

अनुच्छेद–6 – पाकिस्तान से भारत को प्रवजन करने वाले कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार।

अनुच्छेद–7 – वे व्यक्ति जो भारत से पाकिस्तान स्थानान्तरित हुए किन्तु कालान्तर में वापस लौट आए हो।

अनुच्छेद–8 – विदेश में रहने वाले भारतीय मूल के कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार।

अनुच्छेद–9 – यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता लेता है तो उसकी भारत की नागरिकता समाप्त हो जाएगी।

अनुच्छेद–10 – नागरिकता के अधिकारों का बना रहना।

अनुच्छेद–11 – संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह नागरिकता से संबंधित विषयों पर विधि बना सकती है।

❖ 26 नवम्बर 1949 को 15 अनुच्छेद लागू हुए थे, जिसमें अनुच्छेद 5, 6, 7, 8 और 9 भी थे।
❖ अनुच्छेद 10 एवं 11 में संसद को नागरिकता से संबंधित कानून बनाने का अधिकार दिया गया।
❖ इसके अन्तर्गत नागरिकता अधिनियम, 1955 बनाया गया।

नागरिकता अधिनियम 1955

नागरिकता प्राप्ति के तरीके

1. जन्म के आधार पर
2. वंश के आधार पर
3. पंजीकरण द्वारा
4. प्राकृतिक रूप से
5. क्षेत्र समाविष्टि

नागरिकता समाप्ति के तरीके

1. स्वैच्छा से त्याग करना
2. भारत सरकार द्वारा समाप्त
3. दूसरे देश की नागरिकता

❖ नागरिकता अधिनियम, 1955 में समय–समय पर संशोधन किए गए है।
- नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 1986
- नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 1992
- नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003
- नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2005
- नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2015
- नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2019

NRI – भारत का नागरिक जो विदेश में निवास करता हो।

नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 –
- केवल प्राकृतिक रूप से कुछ नए लोगों को नागरिकता देने का कानून बनाया गया, जिसमें तीन देशों (अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश) के नागरिकों (हिन्दू, सिक्ख, जैन, ईसाई, पारसी, बौद्ध) को शामिल किया गया।
- इस संशोधन द्वारा जो लोग 6 वर्ष से वैध या अवैध तरीके से भारत में रह रहे हो, उन्हें भारत का नागरिक मान लिया जाएगा।
- यह प्रावधान संविधान की छठी अनुसूची में शामिल असम, मेघालय, मिजोरम या त्रिपुरा के जनजाति क्षेत्र और बंगाल ईस्टर्न फ्रंटियर रेगुलेशन, 1873 के तहत अधिसूचित 'इनर लाईन' के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र पर लागू नहीं होते।

भाग – III
अनुच्छेद 12–35
मौलिक अधिकार

यू.एस.ए. – बिल ऑफ राईट्स 1791
यू.के. – बिल ऑफ राईट्स 1689

1. अधिकार
2. प्राकृतिक अधिकार
3. प्रकृति द्वारा प्रदत्त
4. सार्वभौमिक
5. नकारात्मक
6. मानवाधिकार
7. विधिक अधिकार
8. संवैधानिक अधिकार
9. मूल अधिकार

मूल रूप से संविधान में 7 मूल अधिकार प्रदान किए गए थे किन्तु 44 वें संविधान संशोधन द्वारा संपति के अधिकार को मौलिक अधिकार से संवैधानिक अधिकार बना दिया गया।

1. अनुच्छेद 14–18 समता का अधिकार
2. अनुच्छेद 19–22 स्वतंत्रता का अधिकार
3. अनुच्छेद 23–24 शोषण के विरूद्ध अधिकार
4. अनुच्छेद 25–28 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
5. अनुच्छेद 29–30 सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार
6. अनुच्छेद 32 संवैधानिक उपचारों का अधिकार

अनुच्छेद 12

'राज्य की परिभाषा' राज्य में निम्नलिखित शामिल है।

- ✓ **संघ की विधायिका व कार्यपालिका**
- ✓ **राज्यों की विधायिका व कार्यपालिका**
- ✓ **अन्य प्राधिकारी**

(i) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम
(ii) राज्य निधि से पोषित संस्थान
(iii) स्थानीय निकाय

अनुच्छेद 13

13(1) - संविधान पूर्व की विधि जो मूल अधिकारों से असंगत है वह असंगति की सीमा तक शून्य होगी।

13(2) - राज्य द्वारा बनाया गया कानून जो मूल अधिकारों से असंगत है तो वह असंगति की सीमा तक शून्य होगा। (संविधान पश्चात् के कानूनों के लिए)

13(3) - इसमें 'विधि' को परिभाषित किया गया है–

- अध्यादेश
- आदेश, उपविधि, नियम, विनियम, अधिसूचना
- विधि का बल रखने वाली रूढ़ि या प्रथा

13(4) - यह 24वें संविधान संशोधन, 1971 द्वारा जोड़ा गया। इसके अनुसार अनुच्छेद 13(2) केवल सामान्य विधियों पर लागू होता है। यह अनुच्छेद 368 के तहत किए गए संशोधनों पर लागू नहीं होता।

न्यायिक पुनरावलोकन – यदि विधायिका द्वारा पारित कोई कानून और कार्यपालिका द्वारा जारी आदेश संविधान के उपबंधों या मूल भावना से असंगत है तो न्यायालय ऐसे कानून को असंवैधानिक घोषित करके उसके प्रवर्तन को रोक सकता है।

ग्रहण का सिद्धांत –यदि कोई संविधान पूर्व का कानून मूल अधिकारों से असंगत है तो वह शून्य हो जाता है। किन्तु कालांतर में संसद मूल अधिकारों में कोई संशोधन करती है और उससे वह असंगति दूर हो जाती है तो वह कानून पुनर्जीवित हो जाता है ।

पृथक्करण का सिद्धांत –यदि कोई विधि मूल अधिकारों से असंगत है तो वह असंगति की सीमा तक शून्य होगी; अर्थात् पूरी विधि शून्य नहीं होगी, विधि के वे भाग ही शून्य होंगे जो मूल अधिकारों से असंगत हैं। विधि का शेष भाग लागू रहेगा।

समानता का अधिकार

अनुच्छेद 14–18

अनुच्छेद 14 - विधि के समक्ष समता व विधि का समान संरक्षण

- **विधि के समक्ष समता** – यह अवधारणा विधि के शासन की नकारात्मक व्याख्या है।
  - कानून के समक्ष सभी समान हैं, विधि किसी के साथ भेदभाव नहीं करेगी। कोई भी व्यक्ति कानून से बड़ा नहीं है। (व्यक्ति – विधिक व्यक्ति, कम्पनी, निगम आदि)
  - यह अवधारणा ब्रिटेन से ली गई है।
- **विधि का समान संरक्षण** – यह विधि के शासन की सकारात्मक व्याख्या करता है।
  - समान परिस्थितियों में विधि समान व्यवहार करेगी।
  - विधि युक्तिसंगत भेदभाव कर सकती है। जैसे–राष्ट्रपति, राज्यपाल, सांसद, विधायक आदि को विशेषाधिकार दिए गए है।
  - यह अवधारणा यू.एस.ए. से ली गई है।

विधि के समक्ष समता के अपवाद

1. राष्ट्रपति/राज्यपाल को प्राप्त विमुक्तियाँ (अनुच्छेद 361)
   - अपने पदीय कार्यों के निर्वहन हेतु राष्ट्रपति/राज्यपाल किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं है।
   - राष्ट्रपति/राज्यपाल के कार्यकाल के दौरान उनके विरूद्ध कोई भी आपराधिक या गिरफ्तारी की कार्यवाही नहीं की जा सकती है।
   - राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा व्यक्तिगत क्षमता में किये गए किसी भी कार्य के लिए उनके विरूद्ध सिविल कार्यवाही भी नोटिस देने के 2 महीने बाद ही की जा सकती है।

2. अनुच्छेद 105 के तहत् संसद सदस्यों के विशेषाधिकार।
3. अनुच्छेद 194 के तहत् राज्य विधानमण्डल के सदस्यों के विशेषाधिकार।
4. अनुच्छेद 31-ग – अमीर और गरीब में सकारात्मक भेदभाव किया जा सकता है।
5. विदेशी शासकों और राजनयिकों (राजदूत, उच्चायुक्त) को सिविल एवं आपराधिक अधिकारिता से उन्मुक्ति।
6. संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उसकी एजेंसियों में काम करने वाले लोगों को उन्मुक्ति।

अनुच्छेद 15 - कुछ आधारों पर विभेद का प्रतिषेध

15(1) - राज्य धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग व जन्मस्थान के आधार पर नागरिकों के साथ भेदभाव नहीं करेगा।
15(2) - निजी संस्थाओं, होटल, भोजनालय, सार्वजनिक कुएँ, बावड़ी, तालाब, मंदिर आदि स्थानों पर धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा।

अपवाद –

15(3) - महिलाओं व बच्चों के कल्याण हेतु विशेष योजनाएँ व कार्यक्रम बनाए जा सकते हैं।
15(4) - सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग) के लिए राज्य विशेष योजनाएँ व कार्यक्रम बना सकता है।
15(5) - सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षण संस्थानों में आरक्षण दिया जा सकता है। (सरकारी व निजी दोनों प्रकार के शिक्षण संस्थानों में आरक्षण हो सकता है लेकिन अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों में आरक्षण नहीं हो सकता)
15(6) - आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश हेतु आरक्षण तथा विशेष योजनाएँ व कार्यक्रम बनाए जा सकते हैं (103वाँ संविधान संशोधन, 2019)

शैक्षणिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गो (ओबीसी) के लिए आरक्षण–

- इस प्रावधान को संविधान के 93वें संशोधन, 2005 द्वारा शामिल किया गया।
- इसके अन्तर्गत पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए उच्च शैक्षणिक संस्थानों (आई.आई.टी, आई.आई.एम. आदि।) में 27 प्रतिशत सीटें आरक्षित की गई।
- उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र सरकार को 'क्रीमीलेयर के सिद्धान्त' का पालन करने का आदेश दिया।

क्रीमीलेयर –

1. संवैधानिक पद धारण करने वाले व्यक्ति (राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीश, विभिन्न आयोगों के अध्यक्ष एवं सदस्य)
2. केन्द्रीय एवं राज्य सेवाओं में वर्ग ए तथा वर्ग बी के अधिकारी।
3. सेना में कर्नल या उससे ऊपर के रैंक का अधिकारी।
4. डॉक्टर, अधिवक्ता, इंजीनियर, कलाकार आदि प्रकार के पेशेवर।
5. जिन लोगों की वार्षिक आय 8 लाख से अधिक हो।

शैक्षणिक संस्थानों में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण–

- यह प्रावधान 103 व संविधान संशोधन द्वारा शामिल किया गया।
- इसके अन्तर्गत आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के छात्रों के लिए उच्च शैक्षणिक संस्थानों (आई.आई.टी, आई.आई.एम. आदि।) में 10 प्रतिशत सीटें आरक्षित की गई।

आरक्षण सम्बन्धी अर्हता –

- पाँच एकड से कम कृषि भूमि
- हजार वर्ग फीट से कम आवासीय फ्लैट
- नगरपालिकाओं के अन्तर्गत 100 गज से छोटा आवासीय भूखण्ड
- अधिसूचित क्षेत्रों के बाहर 200 गज से छोटा आवासीय भूखण्ड
- जिन लोगों की वार्षिक आय 8 लाख से कम हो।

❖ आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का निर्धारण करते समय परिवार द्वारा धारित संपति को एक साथ जोड़ा जाएगा।

अनुच्छेद 16 - लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता

16(1) राज्य लोक नियोजन में सभी नागरिकों को समान अवसर उपलब्ध कराएगा।

16(2) लोक नियोजन में किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान, उद्भव/वंशानुगतता व निवास के आधार पर अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा।

अपवाद –

16(3) संसद किसी राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश की स्थानीय नौकरियों में वहाँ का निवासी होने की बाध्यता रख सकती है।

16(4) पिछड़े वर्ग जिनका सरकारी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है, उनके लिए स्थान आरक्षित रखे जाते हैं।

- अनुच्छेद 16 (4ए) पदोन्नति में आरक्षण
- अनुच्छेद 16 (4बी) बैकलॉग भरने में 50% से अधिक आरक्षण
- इसके अन्तर्गत 1990 में अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा की।

16(5) धार्मिक संस्थाओं में उसी धर्म के लिए स्थान आरक्षित किए जा सकते हैं।

16(6) आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण (103वाँ संविधान संशोधन 2019)

- इसके अन्तर्गत 2019 में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में 10 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा की।

इंद्रा साहनी केस 1992

- उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि आरक्षण की सीमा 50% से अधिक नहीं हो सकती।
- उच्चतम न्यायालय ने ओ.बी.सी. में क्रीमिलेयर की अवधारणा दी अर्थात् क्रीमिलेयर वालों को आरक्षण का लाभ नहीं दिया जाता है।

❖ 2022 में उच्चतम न्यायालय ने 103वें संविधान संशोधन को मूल संरचना का उल्लंघन नहीं माना। न्यायालय ने कहा की 50 प्रतिशत की सीमा अनम्य नहीं है।

अनुच्छेद 17 –अस्पृश्यता का अन्त

- राज्य सभी प्रकार की अस्पृश्यता को समाप्त करेगा।
- 'अस्पृश्यता' शब्द का संविधान में उल्लेख नहीं किया गया।
- मैसूर उच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 17 के मामले में अस्पृश्यता शब्द के बारे में बताया की इसका प्रयोग शाब्दिक एवं व्याकरणीय समझ से परे एतिहासिक है।
- यह एक पूर्ण अधिकार है क्योंकि इसका कोई अपवाद नहीं है।
- यह अधिकार निजी व्यक्ति के विरूद्ध है।
- अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955
  - 1976 में संशोधन कर इसका नाम बदलकर नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1976 कर दिया गया।

अनुच्छेद 18 – उपाधियों का अंत

18(1) राज्य शिक्षा व सेना संबंधी सम्मान के अतिरिक्त कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा।

18(2) भारतीय नागरिक किसी अन्य देश से उपाधि प्राप्त नहीं कर सकता।

18(3) विदेशी नागरिक जो भारत सरकार की सेवा में है, वह राष्ट्रपति की अनुमति के बिना किसी अन्य देश में उपाधि नहीं ले सकता।

18(4) सरकारी सेवा में नियुक्त भारतीय नागरिक राष्ट्रपति की अनुमति के बिना किसी अन्य देश से सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता।

बालाजी राघवन वाद 1996

- इसमें उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि भारत रत्न, पदम् विभूषण, पदम भूषण आदि उपाधियाँ नहीं है, वरन् सम्मान है। अतः ये समानता के सिद्धांत के प्रतिकूल नहीं है।
- हालांकि न्यायालय ने यह भी व्यवस्था दी कि पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता इन सम्मानों का प्रयोग अपने नाम से पहले या बाद में ना करे अन्यथा उन्हें पुरस्कारों को त्यागना पड़ेगा।

नागरिक पुरस्कार (भारत रत्न, पद्म विभूषण, पद्म भूषण, पद्म श्री)

- 1954 ई. में प्रारम्भ किए गए।
- 1977 ई.– जनता पार्टी सरकार ने रोक दिए।
- 1980 ई.– पुनः प्रारम्भ किए गए।
- एक वर्ष में दिए जाने वाले पद्म पुरस्कारों की संख्या 120 से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- भारत रत्न पुरस्कारों की संख्या एक विशेष वर्ष में अधिकतम तीन तक सीमित है।

Springboard ACADEMY

स्वतंत्रता का अधिकार

अनुच्छेद 19–22

अनुच्छेद 19

- यह अधिकार राज्य के विरूद्ध है, निजी व्यक्ति के विरूद्ध नहीं है।
- किसी कम्पनी और विदेशियों को प्राप्त नहीं।

अनुच्छेद 19 (i)(क) - वाक् व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

- प्रेस की स्वतंत्रता
- विज्ञापन की स्वतंत्रता
- चुप रहने की स्वतंत्रता
- बन्द के विरूद्ध अधिकार
- झण्ड़ा फहराने का अधिकार
- विचारों के प्रचार–प्रसार का अधिकार
- फोन टेप के विरूद्ध अधिकार
- सरकारी गतिविधियों को जानने का अधिकार
- धरना, प्रदर्शन का अधिकार (हड़ताल नहीं)

अनुच्छेद 19(i) (ख) – शांतिपूर्ण सम्मेलन करने का अधिकार (बिना शस्त्र के)

अनुच्छेद 19(i)(ग) – संघ (सभा, संघ, सहकारी समितियाँ) बनाने का अधिकार और उसे नियमित रूप से संचालित करने का अधिकार। (इसमें निम्नलिखित शामिल हैं – कम्पनी, एन.जी.ओ., राजनीतिक दल, समितियाँ, क्लब आदि)

अनुच्छेद 19 (i) (घ) – अबाध विचरण करने का अधिकार (इसमें केवल आन्तरिक अर्थात देश के अन्दर निर्बाध संचरण का अधिकार है।)

अनुच्छेद 19 (i))(ड़) – निवास का अधिकार

अनुच्छेद 19 (i))(च) – सम्पति का अधिकार (44वें संविधान संशोधन द्वारा इसे हटा दिया गया है)

अनुच्छेद 19 (i))(छ) – आजीविका/व्यवसाय का अधिकार

अनुराधा भसिन वाद (2020) में उच्चतम न्यायालय ने माना की इन्टरनेट के माध्यम से किसी भी पेशे का अभ्यास करना या किसी भी व्यापार करने की स्वतंत्रता को अनुच्छेद 19 (i) (छ) के तहत संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है।

अनुच्छेद 19(2) - वाक् व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमाएं

- भारत की सम्प्रभुता व अखण्डता
- राज्य की सुरक्षा
- विदेशी राज्यों के साथ मित्रवत् संबंध
- न्यायालय की अवमानना
- मानहानि
- नैतिकता
- लोक व्यवस्था
- अपराध उद्दीपन

अनुच्छेद 19(3) :- सम्मेलन की स्वतंत्रता की सीमाएँ

1. भारत की सम्प्रभुता व अखण्ड़ता
2. लोक व्यवस्था (धारा 144 CrPC, धारा 141 IPC)

अनुच्छेद 19(4) :- संघ बनाने की स्वतंत्रता की सीमाएँ

1. भारत की सम्प्रभुता व अखण्डता
2. लोक व्यवस्था
3. नैतिकता

अनुच्छेद 19(5) :- अबाध संचरण व निवास की स्वतंत्रता की सीमाएँ

1. जन साधारण के हित में
2. अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण हेतु
3. उच्चतम न्यायालय ने इसमें व्यवस्था दी की किसी वैश्या के संचरण के अधिकार को सार्वजनिक नैतिकता एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य के आधार पर प्रतिबंधित किया जा सकता है।
4. बम्बई उच्च न्यायालय ने एड्स पीड़ित व्यक्ति के संचरण पर प्रतिबंध को वैध बताया।
5. यह केवल आंतरिक गतिविधियों की रक्षा करता है। (देश के अंदर)

अनुच्छेद 19(6) :- आजीविका की स्वतंत्रता की सीमाएँ

- जनसाधारण के हित में (वेश्यावृत्ति, नशीले पदार्थों पर प्रतिबंध), लाइसेंस द्वारा नियमन।

अनुच्छेद 20 :- 'अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण'

अनुच्छेद 20(1) :- किसी भी व्यक्ति को उसी कानून के तहत दण्डित किया जा सकता है जो अपराध के समय लागू था अर्थात् आपराधिक कानून का भूतलक्षी क्रियान्वयन नहीं किया जा सकता।

- नागरिक कानून का भूतलक्षी क्रियान्वयन किया जा सकता है।

अनुच्छेद 20(2)

- **दोहरी क्षति नहीं** – एक अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दो बार सजा नहीं दी जा सकती।
  - विभागीय कार्यवाही अलग से की जा सकती है।

अनुच्छेद 20(3)

❖ किसी भी आरोपी व्यक्ति को स्वयं के विरूद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।
- यह अधिकार सशरीर उपस्थिति, अंगूठे का निशान, खून का नमूना, हस्ताक्षर आदि देने से संरक्षण नहीं देता है।
- सिविल मामलों में यह अधिकार मान्य नहीं होता है।

अनुच्छेद 21 :– 'प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार'

- किसी भी व्यक्ति को विधि के द्वारा स्थापित प्रक्रिया के बिना प्राण व दैहिक स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता।

ए.के.गोपालन v/s स्टेट ऑफ मद्रास वाद 1950

- इस केस में न्यायालय ने अनुच्छेद–21 की 'संकीर्ण' व्याख्या की।
- जिसमें 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' से तात्पर्य है कि न्यायपालिका केवल कार्यपालिका के स्वेच्छाचारी कार्यों की समीक्षा कर सकती है। यह विधायिका के स्वेच्छाचारी कार्यों की समीक्षा नहीं कर सकती।
- न्यायपालिका को कानून का अक्षरशः पालन करना होता है। यदि निर्धारित प्रक्रिया द्वारा बनाया कोई कानून अतार्किक, अन्यायपूर्ण, अनुचित और नैसर्गिक न्याय के विरूद्ध भी है तब भी न्यायपालिका उनकी समीक्षा नहीं कर सकती है।
- इसी प्रकार प्राण व दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार की भी न्यायालय ने संकीर्ण व्याख्या की तथा माना कि जीवन के अधिकार से तात्पर्य है जीवित रहना तथा बंधक नहीं बनाया जाना अर्थात् किसी को भी जीवन से वंचित नहीं किया जा सकता।

मेनका गाँधी v/s यूनियन ऑफ इंडिया वाद 1978

- इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय को उलट दिया तथा अनुच्छेद–21 को व्यापक अर्थ में लिया।
- न्यायालय के अनुसार 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' को 'विधि की सम्यक प्रक्रिया' के अर्थ में लिया जाना चाहिए।
- जिसके तहत न्यायपालिका कार्यपालिका व विधायिका दोनों के स्वेच्छाचारी कार्यों की समीक्षा कर सकती है।

विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया (ब्रिटेन, जापान) –

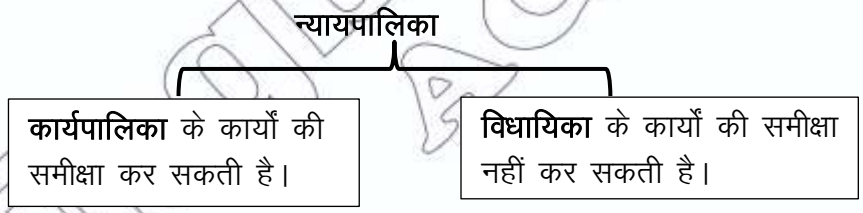

विधि की सम्यक प्रक्रिया (यू.एस.ए.)-

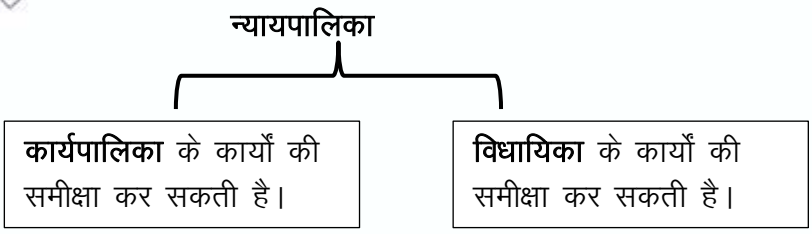

- अर्थात् यदि कोई कानून अतार्किक, अन्यायपूर्ण, अनुचित हो तथा यह नैसर्गिक न्याय के विरूद्ध हो तो न्यायालय उसकी समीक्षा कर सकता है।
- न्यायालय किसी कानून के अक्षरशः पालन के लिए बाध्य नहीं है।
- इसी तरह से न्यायालय ने 'जीवन के अधिकार' की भी व्यापक व्याख्या की।
- न्यायालय ने माना कि केवल जीवित रहना या साँसें लेना जीवन नहीं है, पशुवत् जीवन जीने को जीवन नहीं कहा जा सकता।
- जीवन का अर्थ है 'मानवीय गरिमा से युक्त जीवन' – यह सम्पूर्ण, मूल्यवान, अर्थपूर्ण जीवन होना चाहिए।

गरिमापूर्ण जीवन के लिए निम्नलिखित अधिकारों का होना अनिवार्य है–

1. मानवीय प्रतिष्ठा के साथ जीने का अधिकार
2. स्वच्छ पर्यावरण (प्रदूषण रहित जल व वायु, हानिकारक उद्योगों से सुरक्षा) का अधिकार
3. जीवकोपार्जन का अधिकार
4. निजता का अधिकार
5. आश्रय का अधिकार
6. स्वास्थ्य का अधिकार
7. 14 वर्ष से कम आयु तक निःशुल्क शिक्षा
8. निःशुल्क कानूनी सहायता का अधिकार
9. एकांत कारावास के विरूद्ध अधिकार
10. त्वरित सुनवाई का अधिकार
11. हथकड़ी लगाने के विरूद्ध अधिकार
12. अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध अधिकार
13. देर से फाँसी के विरूद्ध अधिकार
14. विदेश यात्रा करने का अधिकार
15. बंधुआ मजदूरी के विरूद्ध अधिकार
16. हिरासत में शोषण के विरूद्ध अधिकार
17. आपातकालीन चिकित्सा सुविधा का अधिकार
18. सरकारी अस्पतालों में समय पर उचित इलाज का अधिकार
19. राज्य के बाहर ना जाने का अधिकार
20. निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार
21. कैदी के लिए जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं का अधिकार
22. महिलाओं के साथ आदर व सम्मानपूर्ण व्यवहार का अधिकार
23. सार्वजनिक फाँसी के विरूद्ध अधिकार
24. पहाड़ी क्षेत्रों में मार्ग का अधिकार
25. सूचना का अधिकार
26. प्रतिष्ठा का अधिकार
27. सजा के फैसले पर अपील का अधिकार
28. सामाजिक सुरक्षा व परिवार की सुरक्षा का अधिकार
29. सामाजिक व आर्थिक न्याय व सशक्तीकरण का अधिकार
30. बेड़ियों के खिलाफ अधिकार
31. उचित जीवन बीमा पॉलिसी का अधिकार
32. सोने (नींद) का अधिकार
33. ध्वनि प्रदूषण से मुक्ति का अधिकार
34. संधारणीय विकास का अधिकार
35. अवसर का अधिकार
36. अपने पसंद के व्यक्ति से शादी करने का अधिकार
37. गरिमा के साथ मरने का अधिकार (निष्क्रिय इच्छामृत्यु)

अनुच्छेद 21(क) :– शिक्षा का अधिकार

- इसके तहत 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करवाई जानी चाहिए।
- यह अनुच्छेद 86वें संविधान संशोधन द्वारा 2002 में जोड़ा गया है।
- पूर्व में यह अनुच्छेद 45 के तहत नीति निदेशक तत्व था।
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में पारित हुआ जो 1 अप्रैल 2010 से लागू हुआ।
- इसमें प्रावधान था कि सभी निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत सीटों पर गरीब बच्चों को प्रवेश देना अनिवार्य है। जिनके शुल्क का भुगतान सरकार करेगी।

अनुच्छेद 22 :– कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध के विरुद्ध संरक्षण

गिरफ्तारी करते समय व्यक्ति को तीन अधिकार दिए गए हैं–

1. गिरफ्तारी का कारण जानने का अधिकार
2. गिरफ्तारी के समय वकील से परामर्श लेने का अधिकार
3. 24 घण्टे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किए जाने का अधिकार (इसमें यात्रा का समय शामिल नहीं है)

दो प्रकार के लोगों को उपर्युक्त अधिकार प्राप्त नहीं हैं–

1. शत्रु देश के नागरिक को।
2. निवारक निरोध के तहत निरूद्ध किए गए व्यक्ति को।

निवारक निरोध कानून के तहत निरूद्ध व्यक्ति को भी कुछ अधिकार दिए गए हैं–

1. उसे अधिकतम 3 माह के लिए निरूद्ध किया जा सकता है। इससे अधिक अवधि बढ़ाने के लिए उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों (उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हेतु योग्य व्यक्ति) से गठित सलाहकारी बोर्ड से सिफारिश आवश्यक है।
2. निरूद्ध व्यक्ति को गिरफ्तारी का कारण बताया जाना चाहिए हालांकि जनहित में तथ्य बताने से इंकार भी किया जा सकता है।
3. निरूद्ध व्यक्ति अपने प्रतिनिधि के माध्यम से निरोध के विरूद्ध न्यायालय में अपील कर सकता है।

संसद निम्न प्रावधान भी करती है–

- विशेष प्रकार के केस व स्थितियाँ जिसमें निरोध की अवधि तीन माह से अधिक भी हो सकती है।
- निरोध किये जाने की अधिकतम अवधि का निर्धारण
- सलाहकारी बोर्ड के लिए जाँच की प्रक्रिया

❖ 44वें संशोधन के माध्यम से निरूद्ध करने की अवधि को 3 माह से कम करके 2 माह कर दिया गया है किन्तु अभी इसे लागू नहीं किया गया है।

❖ संसद व राज्य विधानमण्डल दोनों निरोधक कानून बना सकते है।

निम्नलिखित विषयों पर केवल संसद निवारक निरोध कानून बना सकती है–

- रक्षा
- विदेशी मामले
- भारत की सुरक्षा

निम्नलिखित विषयों पर संसद और राज्य विधानमण्डल दोनों ही निवारक निरोध कानून बना सकते है–

- राज्य की सुरक्षा
- लोक व्यवस्था
- समुदाय हेतु आवश्यक वस्तुओं व सेवाओं की आपूर्ति सुनिश्चित करवाना।

निवारक निरोधक कानूनों के उदाहरण

1. निवारक निरोध अधिनियम, 1950 (1969 में समाप्त)
2. आंतरिक सुरक्षा अधिनियम (MISA), 1971 (1978 में समाप्त)
3. विदेशी मुद्रा का संरक्षण एवं व्यसन निवारण अधिनियम (COFEPOSA), 1974
4. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (NSA),1980
5. आतंकवादी एवं विध्वंसकारी गतिविधियाँ (निवारण) अधिनियम (TADA),1985 (1995 में समाप्त)
6. आतंकवाद निवारण अधिनियम (POTA), 2002 (2004 में निरस्त)
7. गैर–कानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम (UAPA), 1967

Springboard ACADEMY

शोषण के विरूद्ध अधिकार

अनुच्छेद 23–24

अनुच्छेद 23 :–मानव दुर्व्यापार एवं बलात् श्रम का प्रतिषेध

- मनुष्यों (पुरुष, महिला, बच्चे) की खरीद–बिक्री पर रोक।
- दास प्रथा, वेश्यावृत्ति और देवदासी प्रथा पर प्रतिबंध।
- इन कृत्यों पर दण्डित करने हेतु संसद ने 'अनैतिक दुर्व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956' बनाया है।
- अनुच्छेद 23 बेगार प्रथा, बलात् श्रम यथा बंधुआ मजदूरी पर भी प्रतिबंध लगाता है।
- बलात् श्रम में आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न बाध्यता या न्यूनतम मजदूरी से कम पर कार्य करवाना आदि भी सम्मिलित है।
- किन्तु जनहित में राज्य अनिवार्य सेवा ले सकता है। राज्य इसके बदले वेतन देने हेतु बाध्य नहीं है, लेकिन राज्य धर्म मूलवंश जाति और वर्ग के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

अनुच्छेद 24 :– बच्चों को कारखानों इत्यादि में नियोजित करने का निषेध

- बाल एवं किशोर श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 2016
- यह 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के किसी भी प्रकार की व्यावसायिक गतिविधि में नियोजन का निषेध करता है किन्तु वे पारिवारिक व्यवसाय में हाथ बँटा सकते हैं।
- यह संशोधन अधिनियम 'किशोरों (14 से 18 वर्ष की आयु) के खतरनाक व्यवसायों में नियोजन का प्रतिषेध करता है।
- उल्लंघन किए जाने पर कारावास– 6 माह से 2 वर्ष, जुर्माना– 20000 रु से 50000 रु
- अपराध दोहराने पर कारावास – 1 से 3 वर्ष

Springboard ACADEMY

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

अनुच्छेद 25–28

अनुच्छेद 25 :– अन्तः करण की स्वतंत्रता –

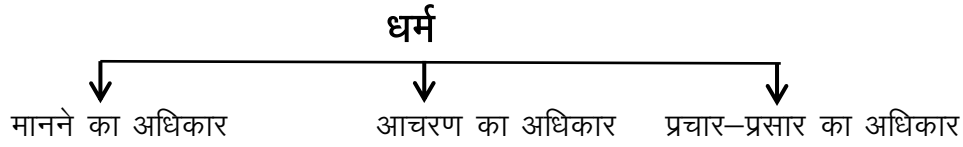

सीमाएँ –

1. लोक व्यवस्था
2. नैतिकता
3. स्वास्थ्य के आधार पर
4. अन्य मूल अधिकार

अनुच्छेद 26 :– धार्मिक मामलों के प्रबंधन का अधिकार

- धार्मिक एवं धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु संस्थाओं की स्थापना व प्रशासन का अधिकार।
- धार्मिक कार्यक्रमों के प्रबंधन का अधिकार
- धार्मिक उद्देश्य के लिए चल व अचल सम्पति अर्जित करने का अधिकार
- विधि के तहत सम्पति के प्रशासन करने का अधिकार

  सीमाएँ –

  1. लोक व्यवस्था
  2. नैतिकता
  3. स्वास्थ्य

❖ उच्चतम न्यायालय ने धार्मिक संप्रदायों के लिए तीन शर्तें रखी।

1. ये व्यक्तियों का समूह होना चाहिए।
2. इनका एक सामान्य संगठन होना चाहिए।
3. इनका एक विशिष्ट नाम होना चाहिए।

इसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय ने रामकृष्ण मिशन और आनंद मार्ग को धार्मिक संप्रदाय माना तथा अरविन्दो समाज को धार्मिक सम्प्रदाय नहीं माना।

अनुच्छेद 27 :– राज्य किसी धर्म विशेष के विकास हेतु कर नहीं लगाएगा।

- इसका अर्थ यह हुआ कि करों का प्रयोग सभी धर्मों के रखरखाव के लिए किया जा सकता है।
- हालांकि धार्मिक स्थान से जुड़ी गैर धार्मिक गतिविधियों पर शुल्क लगाया जा सकता है।

अनुच्छेद 28 :– धार्मिक शिक्षण की कक्षा में उपस्थित ना होने का अधिकार

- सरकारी विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती।
- निजी विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है।
- राज्य द्वारा प्रशासित एवं धर्म विशेष के लिए स्थापित की गई संस्था में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार
अनुच्छेद 29–30

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30 में दो प्रकार के अल्पसंख्यकों का उल्लेख है–

1. धार्मिक अल्पसंख्यक
2. भाषायी अल्पसंख्यक

हालांकि अल्पसंख्यक शब्द को परिभाषित नहीं किया गया।

धार्मिक अल्पसंख्यक –

- संसद ने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक अधिनियम 1992 में छः धर्मो को अल्पसंख्यक का दर्जा दिया गया है।
  1. मुस्लिम 2. ईसाई 3. जैन 4. बौद्ध 5. पारसी 6. सिक्ख

भाषायी अल्पसंख्यक –

- इसको ना ही तो संविधान में ना ही किसी अधिनियम में परिभाषित किया गया है।

अनुच्छेद 29 :– अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण

- भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने वाले नागरिकों को अपनी संस्कृति, भाषा, लिपि का सरंक्षण करने का अधिकार है।
- राज्य द्वारा वित्त पोषित संस्थानों में किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति व भाषा के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जा सकता।
- उच्चतम न्यायालय ने इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कहा कि यह केवल अल्पसंख्यकों के मामले में ही नहीं, जैसा की सामान्यतः माना जाता है, क्योंकि 'नागरिकों के अनुभाग' शब्द का अभिप्राय अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक दोनों से है।
- उच्चतम न्यायालय ने कहा कि भाषा की रक्षा में भाषा के संरक्षण हेतु आन्दोलन करने का अधिकार भी इसमें सम्मिलित है।

अनुच्छेद 30 :– शिक्षण संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार

- 30(1) – भाषायी व धार्मिक अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।
- 30(1)(क) - अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित एवं प्रशासित शिक्षा संस्था की संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण के समय क्षतिपूर्ति की रकम इतनी हो जिससे अनुच्छेद 30 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में कोई कमी ना हो । (44वां संविधान संशोधन)
- राज्य जब शिक्षण संस्थाओं को वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाता है तो उपर्युक्त संस्थाओं के साथ किसी भी तरह का भेदभाव नहीं किया जा सकता है।
- यह अधिकार केवल बहुसंख्यकों के साथ समानता स्थापित करने के लिए है, न कि इसलिए कि अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के मुकाबले अधिक लाभ दिया जाए।
- भारत में 8 राज्यों में हिन्दु अल्पसंख्यक है। उच्चतम न्यायालय ने एक याचिका पर फैसला देते हुए कहा कि अल्पसंख्यक का निर्धारण अखिल भारतीय स्तर के आधार पर होगा ना कि राज्य के आधार पर।

अनुच्छेद 31 :– सम्पति का अधिकार

- 44वें संविधान संशोधन के द्वारा इसे मूल अधिकारों से हटा दिया गया तथा अनुच्छेद 300–क (भाग–XII) में रखा गया
- अब यह मूल अधिकार नहीं है बल्कि एक संवैधानिक अधिकार है।
- इसके तहत कोई भी व्यक्ति कानून के बिना संपति से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 31-क

- जनहित में राज्य किसी भी निजी सम्पति का अधिग्रहण कर सकता है तथा यह सभी प्रकार के निजी व्यापारों का राष्ट्रीयकरण कर सकता है।
- इसके लिए प्रदान की जाने वाली क्षतिपूर्ति राशि को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

अनुच्छेद 31-ख

- जिन अधिनियमों को 9वीं अनुसूची में रख दिया गया है उनका न्यायिक पुनरावलोकन नहीं किया जा सकता।
- हालांकि केशवानन्द भारती वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि नौवी अनुसूची में शामिल अधिनियमों को बुनियादी संरचना के उल्लंघन के आधार पर चुनौति दी जा सकती है।
- आई.आर.कोएल्हों वाद में उच्चतम न्यायालय ने फिर से इस दृष्टिकोण की पुष्टि की।

अनुच्छेद 31-ग

- इसके तहत यदि अनुच्छेद 39(ख), 39(ग) के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संसद कोई कानून बनाती है और यह कानून अनुच्छेद 14, 19 व 31 के मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है तो इस कानून को असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता।
- इस प्रकार की विधि को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती ।

अनुच्छेद 32 :– संवैधानिक उपचारों का अधिकार

- डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इसे संविधान की 'मूल आत्मा एवं हृदय' कहा है।
- इस अनुच्छेद के अनुसार मूल अधिकारों का हनन होने पर व्यक्ति उच्चतम न्यायालय में जा सकता है।
- उच्चतम न्यायालय को नागरिकों के मूल अधिकारों का 'रक्षक एवं गारंटी देने' वाला माना गया है।
- यदि व्यक्तियों के मूल अधिकारों का हनन होता है तो उच्चतम न्यायालय 5 प्रकार की रिट जारी कर सकता है।

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण

- यदि किसी व्यक्ति को अवैधानिक तरीके से बंधक बनाया जाता है तो बंधक को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु न्यायालय द्वारा यह रिट जारी की जाती है।
- यह सरकारी तथा निजी व्यक्ति अथवा संस्था दोनों के विरूद्ध जारी की जा सकती है।
- यदि सरकार के विरूद्ध यह रिट जारी की जाती है तो यह मुख्य सचिव को जारी की जाती है।
- यह (बन्दी प्रत्यक्षीकरण) लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है "शरीर को प्रस्तुत किया जाए"।

2. परमादेश

- इसका शाब्दिक अर्थ है – 'हम आदेश देते हैं'।
- यदि सार्वजनिक पद पर नियुक्त कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो उसके विरूद्ध यह रिट जारी कर उसे कर्त्तव्यपालन का आदेश दिया जाता है।
- यह निष्क्रिय को सक्रिय करने के लिए होती है।
- यह केवल सार्वजनिक अधिकारियों तथा प्राधिकरणों के खिलाफ जारी की जा सकती है।

निम्नलिखित के विरूद्ध यह रिट जारी नहीं की जा सकती है–

1. राष्ट्रपति
2. राज्यपाल
3. निजी व्यक्ति या संस्था
4. जब कर्त्तव्य विवेकाधीन शक्तियों के अधीन हो
5. संविदाओं से संबंधित कार्य
6. उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश

3. प्रतिषेध

- इसका शाब्दिक अर्थ है– 'रोकना'
- यह रिट उच्चतर न्यायालय द्वारा निम्नतर न्यायालय के विरूद्ध जारी की जाती है यदि निम्नतर न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करता है।
- यह रिट सक्रिय को निष्क्रिय करती है।
- यह रिट केवल न्यायिक एवं अर्द्धन्यायिक प्राधिकरणों के विरूद्ध जारी की जा सकती है।
- प्रशासनिक प्राधिकरणों, विधायी निकायों एवं निजी व्यक्ति या निकाय के विरूद्ध ये रिट जारी नहीं की जाती है।

4. उत्प्रेषण

- इसका शाब्दिक अर्थ है–'प्रमाणित होना' या 'सूचना देना'।
- यह रिट उच्चतर न्यायालय के द्वारा निम्नतर न्यायालय के विरूद्ध जारी की जाती है यदि निम्नतर न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य करता है।
- इसमें उच्चतर न्यायालय मामले को अपने पास मंगवाता है और स्वयं सुनवाई करता है।
- 1991 ई. में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह रिट कार्यपालिका के विरूद्ध भी जारी की जा सकती है।
- विधायी निकायों तथा निजी व्यक्तियों या इकाइयों के विरूद्ध यह रिट उपलब्ध नहीं है।

प्रतिषेध	उत्प्रेषण
➢ प्रतिषेध में केवल निम्नतर न्यायालय को किसी कार्य को करने से रोका जाता है।	➢ इसमें निम्नतर न्यायालय को कार्य करने से रोका भी जाता है तथा उच्चतर न्यायालय केस को अपने पास मंगवा लेता है।
➢ यह रिट केवल निम्नतर न्यायालय में मामले की सुनवाई के दौरान जारी की जा सकती है।	➢ यह मामले की सुनवाई के दौरान तथा सुनवाई के बाद भी जारी की जा सकती है।
➢ यह केवल न्यायपालिका के विरुद्ध जारी की जा सकती है।	➢ यह न्यायपालिका व कार्यपालिका दोनों के विरुद्ध जारी की जा सकती है।

5. अधिकार पृच्छा

- इसका शाब्दिक अर्थ है किसी 'प्राधिकृत या वारंट द्वारा'।
- यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे राजनीतिक व प्रशासनिक पद पर नियुक्त किया जाता है जिसके लिए वो योग्य नहीं है तो यह रिट जारी की जा सकती है।
- यह नियुक्त व्यक्ति के विरूद्ध जारी की जाती है, नियुक्त करने वाले के विरूद्ध जारी नहीं की जा सकती है।
- इसे मंत्रित्व कार्यालय या निजी कार्यालय के विरूद्ध जारी नहीं किया जा सकता।
- इसे किसी भी व्यक्ति (प्रभावित नहीं है तो भी) द्वारा दायर किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता की

उच्चतम न्यायालय	उच्च न्यायालय
• उच्चतम न्यायालय रिट जारी करने के लिए बाध्य है क्योंकि अनुच्छेद 32 हमारा मूल अधिकार है।	• उच्च न्यायालय रिट जारी करने हेतु बाध्य नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 226 हमारा मूल अधिकार नहीं है।
• उच्चतम न्यायालय केवल मूल अधिकारों के हनन के मामले में ही रिट जारी कर सकता है, अन्य मामलों में नहीं ।	• उच्च न्यायालय मूल अधिकारों के हनन के साथ ही अन्य मामलों में भी रिट जारी कर सकता है।
• राष्ट्रीय आपातकाल के समय मूल अधिकार निलम्बित किए जा सकते है यदि अनुच्छेद 32 को निलम्बित कर दिया जाता है तो उच्चतम न्यायालय रिट जारी नहीं कर सकता।	• राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 226 को निलम्बित नहीं किया जा सकता इसलिए राष्ट्रीय आपातकाल की स्थिति में भी उच्च न्यायालय की रिट जारी करने की शक्ति यथावत् बनी रहती है।

अनुच्छेद 33 : – संसद सशस्त्र बलों, अर्द्ध–सैनिक बलों, पुलिस, खुफिया एजेंसी एवं अन्य के मूल अधिकारों में कटौती कर सकती है ।
'सैन्य बलों के सदस्य' का अभिप्राय इसमें वो कर्मचारी भी शामिल है, जो सेना में नाई, बढ़ई, चौकीदार, दर्जी आदि का कार्य करते है।

अनुच्छेद 34 :– जिन क्षेत्रों में सैन्य विधि (मार्शल लॉ) लागू हो वहाँ मूल अधिकारों में कटौती की जा सकती है। मार्शल लॉ की संविधान में व्याख्या नहीं की गई है।

अनुच्छेद 35

- मूल अधिकारों में कटौती का अधिकार केवल संसद को है।
- संविधान में जिन मूल अधिकारों में कटौती का प्रावधान है, संसद उन्हीं में कटौती कर सकती है। उदाहरणः अनुच्छेद 16, 32, 33 और 34

अनुच्छेद 35 (क)

- 1954 में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा जोड़ा गया।
- जम्मू कश्मीर के स्थायी निवासियों के लिए विशेष प्रावधान थे–
  - अचल संपत्ति खरीदने का अधिकार
  - राज्य की नौकरी के आवेदन
  - राज्य सरकार की योजनाओं एवं सरकारी छात्रवृतियों का लाभ।
- 2019 में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा हटा दिया गया।

वे मूल अधिकार जो केवल भारतीय नागरिकों को प्राप्त है–

अनुच्छेद 15 :– कुछ आधारों पर विभेद का प्रतिषेध

अनुच्छेद 16 :– लोक नियोजन में अवसरों की समानता

अनुच्छेद 19 :– अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सहित छह अधिकार

अनुच्छेद 29 :– अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण

अनुच्छेद 30 :– शिक्षण संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार

आपातकाल के समय मूल अधिकारों का निलम्बन

अनुच्छेद 358 :– राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 19 स्वतः निलंबित हो जाता है।

44वाँ संविधान संशोधन

- यदि सशस्त्र विद्रोह के कारण राष्ट्रीय आपातकाल लागू होता है तो अनुच्छेद 19 निलंबित नहीं होगा ।

अनुच्छेद 359 :– राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान राष्ट्रपति अन्य अनुच्छेदों को निलंबित कर सकता है ।

44वाँ संविधान संशोधन :–

- राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 20 और 21 को निलंबित नहीं किया जा सकता है ।

मूल अधिकारों में संशोधन

अनुच्छेद 13(2) :– संसद ऐसा कोई कानून नहीं बना सकती जो मूल अधिकारों को सीमित करता हो ।

अनुच्छेद 368 :– संसद की संविधान संशोधन की शक्ति।

शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ 1951

अनुच्छेद 13(2) & अनुच्छेद 368

- सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 13(2) केवल सामान्य विधियों पर लागू होता है, संविधान संशोधन अधिनियम पर नहीं। अर्थात संसद सामान्य विधि द्वारा मूल अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती किन्तु संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा सीमित कर सकती है ।

सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य 1965

- इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय को दोहराया अर्थात संसद सामान्य विधि द्वारा मूल अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती किन्तु संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा सीमित कर सकती है

गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य 1967

अनुच्छेद 13(2) – अनुच्छेद 368

- इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय को उलट दिया और इसने माना कि संविधान संशोधन अधिनियम भी एक विधि है अतः अनुच्छेद 13(2) संविधान संशोधन अधिनियम पर भी लागू होता है अर्थात संसद संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भी मूल अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती ।
- अनुच्छेद 368 संविधान संशोधन का अधिकार नहीं देता बल्कि इसमें संशोधन की प्रक्रिया दी गई है। संशोधन की शक्ति सामान्य विधायी शक्ति से प्राप्त होती है।
- न्यायालय ने स्पष्ट किया कि इस निर्णय को भूतकाल से लागू नहीं किया जा सकता अर्थात् इससे पहले मूल अधिकारों में जो कटौती की गई है वह यथावत् रहेगी लेकिन भविष्य में संसद मूल अधिकारों में कटौती नहीं कर सकती।

24वाँ संविधान संशोधन 1971

- इसके द्वारा अनुच्छेद 13(4) व 368(3) संविधान में जोड़े गए। इनमें यह प्रावधान था कि अनुच्छेद 13(2) केवल सामान्य विधियों पर लागू होता है और अनुच्छेद 368 के तहत किए गए संविधान संशोधन पर लागू नहीं होता ।
- इसके द्वारा जोड़ा गया कि राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक पर सहमति देने हेतु बाध्य है।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य 1973

- उच्चतम न्यायालय में 24वें तथा 25वें संविधान संशोधन को चुनौती दी गई थी।
- इस हेतु 13 न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ का गठन किया गया जिसने 7:6 के बहुमत से निर्णय दिया।
- न्यायालय ने 24वें तथा 25वें संविधान संशोधन को वैधानिक ठहराया अर्थात् यह माना कि अनुच्छेद–368 के तहत किए गए संविधान संशोधन द्वारा संसद मूल अधिकारों में कटौती कर सकती है।
- किन्तु न्यायालय के अनुसार संसद संविधान के बुनियादी ढाँचे के साथ छेड़छाड़ नहीं कर सकती।
- 25वें संविधान संशोधन के दूसरे भाग को न्यायालय ने असंवैधानिक ठहराया क्योंकि यह न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति को कम करता है तथा न्यायिक पुनरावलोकन संविधान का बुनियादी ढाँचा है।

42वाँ संविधान संशोधन 1976

- इसके तहत अनुच्छेद 31–ग का विस्तार किया गया।
- इसमें यह प्रावधान किया गया कि 'सभी नीति निदेशक तत्वों' के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए यदि संसद कोई विधि बनाती है तथा इस विधि से अनुच्छेद–14, 19 व 31 के मूल अधिकारों का हनन होता है तो इस आधार पर यह अधिनियम अवैधानिक नहीं होगा।

मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ 1980

- उच्चतम न्यायालय में अनुच्छेद 31–ग में किए गए विस्तार को चुनौती दी गई। न्यायालय ने इस विस्तार को असंवैधानिक माना तथा अनुच्छेद 31–ग को पूर्ववर्ती रूप में पुनः स्थापित किया गया।
- न्यायालय के अनुसार नीति निदेशक तत्वों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मूल अधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता।
- इसी समय न्यायालय ने यह माना कि मूल अधिकार व नीति निदेशक तत्व आपस में विरोधाभासी नहीं है। दोनों के उद्देश्य (मानव कल्याण) समान है अतः दोनों एक दूसरे के पूरक है।
- इसके बावजूद यदि दोनों में कोई विरोधाभास होता है तो नीति निदेशक तत्वों की तुलना में मूल अधिकारों को सर्वोपरि माना जाएगा।

संविधान का बुनियादी ढाँचा

मूल ढाँचे का उद्भव–

- संविधान के अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है या नहीं, यह विषय संविधान लागू होने के एक वर्ष पश्चात् ही सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया।
  1. **शंकरी प्रसाद वाद (1951)** – इसमें पहले संविधान संशोधन अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती दी गई। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा की मौलिक अधिकारों में संशोधन अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत आता है एवं अनुच्छेद 13 में 'विधि' शब्द के अन्तर्गत मात्र सामान्य विधियाँ ही आती है, संविधान संशोधन अधिनियम नहीं।
  2. **सज्जन सिंह वाद (1964)** – इसमें न्यायालय ने फिर से माना कि अनुच्छेद 368 के तहत बनाया गया संविधान संशोधन अधिनियम अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत विधि नहीं है।
  3. **गोलकनाथ वाद (1967)** – इसमें उच्चतम न्यायालय ने अपनी पहली की स्थिति बदल ली। न्यायलय ने कहा कि मौलिक अधिकार अपरिवर्तनीय है इसलिए संसद मौलिक अधिकारों में कटौती नहीं कर सकती है।
  4. **केशवानन्द भारती (1973)** – इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ मामले में अपने निर्णय को पलट दिया। न्यायालय ने कहा कि संसद संविधान के किसी भाग में संशोधन कर सकती है, यहाँ तक कि संसद मूल अधिकारों में कमी भी कर सकती है किन्तु संविधान के मूल ढाँचे से छेडछाड नहीं कर सकती। इस प्रकार 'मूल ढाँचे की अवधारणा' अस्तित्व में आई।
  5. **वामन राव वाद (1980)** – इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने मूल संरचना के सिद्धान्त को मानते हुए स्पष्ट किया कि यह 24 अप्रैल 1973 (अर्थात केशवानन्द भारती मामले में फैसले के दिन) के बाद अधिनियमित संविधान संशोधनों पर लागू होगा।

❖ न्यायालय के अनुसार संविधान का मूल ढाँचा तथ्य नहीं है बल्कि यह एक अवधारणा है इसलिए न्यायालय समय–समय पर इसकी व्याख्या करता रहेगा। तथा देश, काल, परिस्थिति के अनुसार इसकी व्याख्या अलग हो सकती है।

मूल संरचना के तत्व –

1. संविधान की सर्वोच्चता
2. संप्रभु, लोकतान्त्रिक एवं गणराज्य स्वरूप वाली सरकार
3. संविधान का पंथनिरपेक्ष स्वरूप
4. देश की एकता व अखण्डता
5. संसदीय शासन व्यवस्था
6. संबिधान का संघीय स्वरूप
7. स्वतन्त्र न्यायपालिका
8. न्यायिक पुनरावलोकन
9. विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के मध्य शक्ति पृथक्करण
10. स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव प्रणाली
11. विधि का शासन
12. मूल अधिकारों व नीति–निदेशक तत्वों के मध्य संतुलन
13. संविधान में संशोधन करने की संसद की सीमित शक्ति
14. समता का सिद्धान्त
15. व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा गरिमा

16. कल्याणकारी राज्य (सामाजिक– आर्थिक न्याय)
17. न्याय तक प्रभावकारी पहुँच
18. मौलिक अधिकारों के मूलभूत सिद्धान्त
19. अनुच्छेद 32, 136, 141 तथा 142 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त शक्तियाँ।
20. अनुच्छेद 226 तथा 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों की शक्ति

संविधान के मूलभूत ढाँचे का विकास

वाद का नाम	मूलभूत ढाँचे के तत्व
1. केशवानन्द भारती वाद (1973)	1. संविधान की सर्वोच्चता 2. विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच शक्ति का बंटवारा 3. संविधान का धर्म निरपेक्ष चरित्र 4. भारत की सम्प्रभुता एवं एकता 5. कल्याणकारी राज्य की स्थापना 6. संसदीय प्रणाली
2. इन्दिरा नेहरू गाँधी वाद (1975)	1. न्यायिक समीक्षा 2. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव 3. अवसर की समानता
3. मिनर्वा मिल्स वाद (1980)	1. संसद की संविधान संशोधन की सीमित शक्ति 2. मौलिक अधिकारों एवं नीति निदेशक तत्वों के बीच संतुलन
4. इन्द्रा साहनी वाद (1992)	1. कानून का शासन
5. कुमार पद्म प्रसाद वाद (1992)	1. न्यायपालिका की स्वतंत्रता
6. किहोतो होलोहोन वाद (1992)	1. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव 2. सम्प्रभु, लोकतन्त्रात्मक, गणतन्त्रात्मक ढाँचा
7. एस.आर. बोम्मई वाद (1994)	1. संघवाद 2. राष्ट्र की एकता एवं अखण्ड़ता 3. सामाजिक न्याय 4. न्यायिक समीक्षा
8. ऑल इण्डिया जजेज एसोसिएशन वाद (2001)	1. स्वतंत्र न्यायिक प्रणाली
9. एम.नागराज वाद (2006)	1. समानता का सिद्धान्त
10. आई.आर.कोएल्हो वाद (2007)	1. कानून का शासन 2. शक्तियों का बँटवारा 3. मौलिक अधिकारों के आधारभूत सिद्धान्त

भाग – IV
नीति निदेशक तत्व
अनुच्छेद 36–51

राज्य की नीति के निदेशक तत्व

- निदेशक तत्व 'संविधान की आत्मा एवं दर्शन' है।
- ये विधायी, कार्यकारी एवं प्रशासनिक मामलों में राज्य हेतु संवैधानिक निदेश या सिफारिशें है।
- इनका उद्देश्य 'लोक कल्याणकारी राज्य' की स्थापना करना है।
- निदेशक तत्व 'गैर न्यायोचित प्रकृति' के है अर्थात् इनके उल्लंघन पर इन्हें न्यायालय द्वारा लागू नहीं करवाया जा सकता ।

निदेशक तत्वों से संबंधित अनुच्छेद

अनुच्छेद 36 :– 'राज्य की परिभाषा'

'राज्य' में निम्नलिखित शामिल है–

- संघ की विधायिका एवं कार्यपालिका
- राज्यों की विधायिका एवं कार्यपालिका
- अन्य प्राधिकारी
  - सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम
  - राज्य विधि से पोषित संस्थान

अनुच्छेद 37 – नीति निदेशक तत्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है।

अनुच्छेद 38 – राज्य ऐसी 'सामाजिक व्यवस्था' का निर्माण करेगा जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय हो।

अनुच्छेद 38 (2) –आय, प्रतिष्ठा, सुविधाओं, अवसरों में किसी भी प्रकार की असमानता ना हो।

अनुच्छेद 39 – राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व–

(a) पुरूषों व महिलाओं को' रोजगार के समान अवसर'

(b) राज्य 'भौतिक संसाधनों का स्वामित्व व नियंत्रण' इस प्रकार करेगा कि 'सभी के हितों की पूर्ति हो सके।

(c) राज्य 'अर्थव्यवस्था का प्रबंधन' इस प्रकार करेगा कि 'धन व उत्पादन के साधनों का अहितकारी संकेन्द्रण' न हो।

(d) पुरूषों व महिलाओं को 'समान कार्य के लिए समान वेतन'।

(e) कर्मकारों, महिलाओं, बच्चों को बाध्य होकर वह कार्य ना करना पडे जो उनकी उम्र व सामर्थ्य के अनुरूप ना हो।

(f) बच्चों को स्वस्थ वातावरण उपलब्ध करवाना।

अनुच्छेद 39(क) :– समान न्याय व निःशुल्क विधिक सहायता (42nd संविधान संशोधन, 1976)

अनुच्छेद 40 :– राज्य पंचायतीराज संस्थाओं की स्थापना करेगा तथा उन्हें सशक्त बनाएगा। (मनरेगा अधिनियम)

अनुच्छेद 41 :– कुछ दशाओं में (वृद्ध, दिव्यांगजन, बेरोजगार, बीमार व्यक्ति आदि) काम, शिक्षा व लोकसहायता उपलब्ध करवाना।

अनुच्छेद 42 :– कार्यस्थल पर न्यायसंगत व मानवोचित दशाएँ गर्भवती महिलाओं को अवकाश/प्रसूति सहायता। (मातृत्व लाभ अधिनियम, 2016)

अनुच्छेद 43 :– निर्वाह योग्य मजदूरी, कुटीर उद्योग

अनुच्छेद 43(क) :– कर्मकारों को प्रबंधन में हिस्सेदारी दी जानी चाहिए

अनुच्छेद 43(ख) :– सहकारिता को प्रोत्साहन (97वाँ संविधान संशोधन 2011)
मजदूरों को सहकारी समितियों की स्थापना की अनुमति दी जानी चाहिए।

अनुच्छेद 44 :– 'समान नागरिक संहिता' लागू की जाए।

- **सिविल मामले (व्यक्ति बनाम व्यक्ति)**
  जैसे– विवाह, तलाक, वसीयत, सम्पत्ति विवाद (सभी के लिए समान कानून नहीं)
- **आपराधिक मामले (व्यक्ति बनाम राज्य)**
  जैसे– हत्या, डकैती, चोरी, झगड़ा (सभी के समान कानून)

अनुच्छेद 45 – 6 वर्ष तक के बच्चों के लिए पोषण तथा आरम्भिक शिक्षा की व्यवस्था।
(अनुच्छेद 21(क), 86वां संविधान संशोधन द्वारा)

अनुच्छेद 46 – अनूसूचित जाति तथा जनजाति के लिए आर्थिक सहायता व शिक्षा।

अनुच्छेद 47 – राज्य पोषाहार, जीवन स्तर, लोक स्वास्थ्य में सुधार करेगा।
(राज्य खतरनाक औषधियों व मादक पेय पर प्रतिबन्ध लगाएगा।)

अनुच्छेद 48 – कृषि व पशुपालन में आधुनिक व वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
{पशुओं की नस्ल सुधार व संरक्षण के प्रयास हो तथा बूचडखानों को बंद किया जाए (गोवध निषेध)}

अनुच्छेद 48क – पर्यावरण संरक्षण तथा संवर्धन, वन तथा वन्य जीवों की रक्षा।

अनुच्छेद 49 – राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों तथा वस्तुओं का संरक्षण किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 50 – कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण।

अनुच्छेद 51 –

- विश्व शांति व सुरक्षा की स्थापना करना।
- विभिन्न देशों के मध्य सौहार्दपूर्ण व न्यायपूर्ण संबंधों को बढावा।
- अन्तर्राष्ट्रीय संधियों, समझौते, व कानूनों का सम्मान करना।
- अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता से सुलझाना।

नीति निदेशक तत्वो में संशोधन			
42nd संविधान संशोधन, 1976	**44th संविधान संशोधन, 1978**	**86th संविधान संशोधन, 2002**	**97th संविधान संशोधन, 2011**
अनुच्छेद 39 **अनुच्छेद 39 (क)** **अनुच्छेद 43 (क)** **अनुच्छेद 48 (क)**	**अनुच्छेद 38**	**अनुच्छेद 45**	**अनुच्छेद 43 (ख)**

नीति निदेशक तत्वों का वर्गीकरण :–

- संविधान में नीति निदेशक तत्वों का पृथक से कोई वर्गीकरण नहीं किया है, परन्तु निम्नलिखित तीन आधारों पर नीति निदेशक तत्वों को वर्गीकृत किया जा सकता है–
  1. समाजवादी सिद्धांत
  2. गाँधीवादी सिद्धांत
  3. उदारवादी बौद्धिक सिद्धांत

समाजवादी सिद्धांत

- अनुच्छेद 38
- अनुच्छेद 39
- अनुच्छेद 39(क)
- अनुच्छेद 41
- अनुच्छेद 42
- अनुच्छेद 43, 43(क)
- अनुच्छेद 47

गाँधीवादी सिद्धांत

- अनुच्छेद 40
- अनुच्छेद 43
- अनुच्छेद 43(ख)
- अनुच्छेद 46
- अनुच्छेद 47
- अनुच्छेद 48

उदारवादी–बौद्धिक सिद्धांत

- अनुच्छेद 44
- अनुच्छेद 45
- अनुच्छेद 48
- अनुच्छेद 48(क)
- अनुच्छेद 49
- अनुच्छेद 50
- अनुच्छेद 51

Springboard ACADEMY

मूल अधिकार बनाम नीति निदेशक तत्व

➢ **चम्पकम दुरई राजन वाद 1951 ई.–**

- उच्चतम न्यायालय ने यह माना कि मूल अधिकारों व नीति निदेशक तत्वों के बीच यदि किसी प्रकार का विरोधाभास होता है तो इस स्थिति में मूल अधिकारों को सर्वोपरि माना जाना चाहिए।
- निदेशक तत्वों की पूर्ति हेतु मूल अधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता।

पहला संविधान संशोधन 1951 ई.

- इसके द्वारा अनुच्छेद 31-क व 31-ख को संविधान में जोड़ा गया व सम्पति के अधिकार को सीमित किया गया।
- इसके तहत कहा गया कि सामाजिक कल्याण व संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण के उद्देश्य से राज्य निजी सम्पति का अधिग्रहण कर सकता है।
- मूल अधिकारों को सीमित करने वाले ऐसे कानूनों को यदि नौवीं अनुसूची में रखा जाता है तो इसका न्यायिक पुनरावलोकन नहीं किया जा सकता।

चौथा संविधान संशोधन 1955 ई.

- जनहित में राज्य सभी प्रकार के निजी व्यापारों का राष्ट्रीयकरण कर सकता है तथा इसके बदले में सरकार द्वारा दी गई क्षतिपूर्ति राशि को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- कुछ अतिरिक्त अधिनियम 9वीं अनुसूची में शामिल किए गए।
  - इस प्रकार पहले व चौथे संविधान संशोधनों में नीति निदेशक तत्वों को मूल अधिकारों पर प्राथमिकता दी गई।

केरल शिक्षा विधेयक वाद, 1958 :– न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यद्यपि मूल अधिकारों का महत्व नीति निदेशक तत्वों से अधिक है किन्तु मूल अधिकारों के अर्थ और विस्तार को निर्धारित करते समय न्यायालय नीति निदेशक तत्वों की उपेक्षा नहीं करेंगे। इन दोनों का महत्व बनाए रखने के लिए न्यायालय 'समन्वयकारी निर्वचन का सिद्धान्त' अपनाएंगे।

17वाँ संविधान संशोधन 1964 ई.

- इसमें 44 नए अधिनियम 9वीं अनुसूची में शामिल किए गए जो मूल अधिकारों को सीमित करते थे।
- किन्तु यदि सरकार किसानों की कृषि भूमि का अधिग्रहण करती है तो उसे पर्याप्त क्षतिपूर्ति देनी होगी।

गोलकनाथ वाद 1967 ई.

- उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि संसद किसी भी मूल अधिकार में संशोधन या उसे समाप्त नहीं सकती।
- अर्थात् निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए मूल अधिकारों में संशोधन नहीं किया जा सकता।

24वां संविधान संशोधन 1971 ई.

- इसमें संसद को संविधान अधिनियम के तहत मूल अधिकारों में संशोधन करने या उन्हें समाप्त करने की शक्ति दी गई।

25वां संविधान संशोधन 1971 ई.

- अनुच्छेद 31-ग संविधान में जोडा गया।
- इसमें प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद 39(ख), 39(ग) के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए यदि संसद कोई
  अधिनियम पारित करती है और यह अधिनियम अनुच्छेद 14, 19 व 31 के मूल अधिकारों को सीमित करता है तो इस आधार पर अधिनियम को असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता।
- इस प्रकार की विधि को न्यायालय में चुनौति नहीं दी जा सकती।

केशवानंद भारती वाद 1973 ई.

- उच्चतम न्यायालय ने 24वें व 25वें संविधान संशोधन को वैधानिक माना।
- अर्थात् संसद मूल अधिकारों में कटौती कर सकती है।
- किन्तु इसमें अनुच्छेद 31-ग के दूसरे प्रावधान को असंवैधानिक घोषित किया गया क्योंकि ये न्यायालय को न्यायिक समीक्षा के अधिकार से वंचित करता है जो कि संविधान का बुनियादी ढाँचा है।

42वाँ संविधान संशोधन 1976 ई.

- इसमें अनुच्छेद 31-ग का विस्तार किया गया।
- सभी नीति निदेशक तत्वों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए यदि संसद कोई अधिनियम पारित करती है और इससे अनुच्छेद–14, 19 व 31 के मूल अधिकारों का हनन होता है तो इस आधार पर यह अधिनियम असंवैधानिक नहीं होगा।

मिनर्वा मिल्स वाद 1980 ई.

- इसमें अनुच्छेद 31-ग के विस्तार को चुनौति दी गई।
- उच्चतम न्यायालय ने इस विस्तार को अवैधानिक करार देकर अनुच्छेद 31-ग को पूर्ववर्ती रूप में स्वीकार किया।
- इसी समय न्यायालय ने माना कि मूल अधिकार व निदेशक तत्व एक दूसरे के विरोधाभासी नहीं है दोनों का उद्देश्य समान है अर्थात् 'जनकल्याण' है अतः दोनो एक–दूसरे के पूरक है।
- दोनों एक ही गाडी के दो पहियों के समान है जिससे हमारा समाज आगे बढेगा। दोनों के मध्य संतुलन संविधान का बुनियादी ढाँचा है।
- इसके बावजूद यदि दोनों में कोई विरोधाभास होता है तो नीति निदेशक तत्वों की तुलना में मूल अधिकारों को सर्वोपरि माना जाएगा।

वर्तमान स्थिति

- नीति निदेशक तत्वों की तुलना में मूल अधिकार श्रेष्ठ है।
- किन्तु अनुच्छेद 39(ख) व 39(ग) के निदेशक तत्व अनुच्छेद 14 व 19 के मूल अधिकारों की तुलना में श्रेष्ठ है।

मूल अधिकार	नीति निदेशक तत्त्व
• यह संविधान के साथ ही लागू हो गए थे। इन्हें लागू करने हेतु विधि निर्माण की आवश्यकता नहीं है।	• यह संविधान के साथ लागू नहीं हुए थे। इन्हें लागू करने हेतु विधि निर्माण की आवश्यकता होती है।
• यह न्यायालय के द्वारा प्रवर्तनीय है।	• यह न्यायालय के द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है।
• ये राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना करते हैं।	• ये सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करते हैं।
• यह व्यक्तिगत प्रकृति के है।	• यह सामाजिक/सामुदायिक प्रकृति के हैं।
• इनकी प्रकृति नकारात्मक है।	• इनकी प्रकृति सकारात्मक है।

Springboard ACADEMY

भाग – IV(क)
मूल कर्त्तव्य
अनुच्छेद 51(क)

मूल कर्त्तव्य

- सरदार स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों के आधार पर 42वें संविधान संशोधन द्वारा मूल कर्तव्यों को संविधान में जोडा गया।
- हालांकि समिति ने संविधान में आठ मूल कर्तव्यों को जोडे जाने का सुझाव दिया था किन्तु 1976 में 10 मूल कर्तव्य संविधान में जोडे गए।
- ये मूल कर्तव्य केवल भारतीय नागरिकों के लिए है, विदेशियों के लिए नहीं है।
- मूल कर्त्तव्य गैर–न्यायोचित प्रकृति के हैं।
- संसद चाहे तो उपयुक्त विधि बनाकर इनका क्रियान्वयन करवा सकती है।
- मूल कर्त्तव्य भारतीय परंम्पराओं, आदर्शों, धर्म व जीवन पद्धति आदि को प्रदर्शित करते हैं (उनका प्रतिनिधित्व करते हैं)

प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि–

1. संविधान का पालन करें और उसके आदर्शो, संस्थानों, राष्ट्रध्वज व राष्ट्रगान का आदर करें।
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।
3. भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण बनाए रखें।
4. देश की रक्षा करे व आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो पंथ, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरूद्ध हो।
6. हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे।
7. प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव है, की रक्षा करे उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।
9. सार्वजनिक सम्पति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहें।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न व उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।
11. 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को उनके अभिभावक अथवा संरक्षक या प्रतिपालक जैसी भी स्थिति में हो, शिक्षा के अवसर प्रदान करें। (86वें संविधान संशोधन 2002 द्वारा संविधान में जोड़ा गया।)

वर्मा समिति, 1999 – कुछ मूल कर्त्तव्यों को लागू करवाने हेतु वर्तमान में लागू वैधानिक प्रावधानों की पहचान की।

भाग – V
संघ सरकार
अनुच्छेद 52–151

संघ सरकार

- **कार्यपालिका (अनुच्छेद :– 52–78)**
  राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मन्त्रिपरिषद, महान्यायवादी
- **विधायिका (अनुच्छेद :– 79–123)**
- **न्यायपालिका (अनुच्छेद :– 124–147)**
- **भारत का नियंत्रक व महालेखा परीक्षक (अनुच्छेद :– 148–151)**

कार्यपालिका – अनुच्छेद 52–78

राष्ट्रपति

- **अनुच्छेद 52** – भारत का एक राष्ट्रपति होगा।
- **अनुच्छेद 53** – संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होगी ।
- **अनुच्छेद 74** – राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद होगी जिसका प्रमुख प्रधानमन्त्री होगा।
  - 'राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद की सलाह से कार्य करेगा।' (42वें संविधान संशोधन से यह जोडा गया)

चुनाव संबंधी महत्वपूर्ण तथ्य–

- राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के चुनाव की अधिसूचना 'चुनाव आयोग' द्वारा जारी की जाती है।
- लोकसभा व राज्यसभा चुनाव की अधिसूचना राष्ट्रपति द्वारा जारी की जाती है।
- राज्यों में विधानसभा व विधानपरिषद के चुनावों की अधिसूचना 'राज्यपाल' द्वारा जारी की जाती है।
- राष्ट्रपति की उम्मीदवारी के लिए 50 प्रस्तावक व 50 अनुमोदक होने आवश्यक हैं।
- उपराष्ट्रपति की उम्मीदवारी के लिए 20 प्रस्तावक व 20 अनुमोदक आवश्यक है।
- राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति दोनों की उम्मीदवारी के लिए जमानत राशि 15,000 रूपये है। यह राशि चुनाव आयोग अथवा रिजर्व बैंक के पास जमा करवाई जा सकती है।
- पूर्व में 10 प्रस्तावकों व 10 अनुमोदकों की आवश्यकता थी तथा जमानत राशि 2500 रू. थी। (1997 में इसे परिवर्तित किया गया)
- राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के चुनाव के लिए मुख्य निर्वाचन अधिकारी 'लोकसभा या राज्यसभा का महासचिव' चक्रिय क्रम से होता है।
- इस चुनाव में व्हिप जारी नहीं की जा सकती है।

अनुच्छेद 54 – 'राष्ट्रपति का निर्वाचक मण्डल'

- लोकसभा व राज्यसभा के सभी निर्वाचित सदस्य
- विधानसभाओं के सभी निर्वाचित सदस्य
- संघ शासित प्रदेशों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य
- सदस्यों द्वारा मतदान कहीं पर (संबंधित राज्य या दिल्ली) भी किया जा सकता है।

राष्ट्रपति के चुनाव में निम्नलिखित भाग नहीं लेते–

- राज्य सभा के मनोनीत सदस्य
- राज्य विधानसभाओं के मनोनीत सदस्य
- विधान परिषदों के सदस्य

अनुच्छेद 55 – 'राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति'

- आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है।
- इस पद्धति में जीत के लिए आवश्यक मत

$$= \frac{N}{n+1} + 1$$

N = कुल मतों की संख्या

n = कुल पदों की संख्या

- उम्मीदवार को जीत के लिए 50% + 1 मतों की आवश्यकता होती है।

विधायक के मत का मूल्य

$$= \frac{\text{राज्य की जनसंख्या (1971)}}{\text{कुल निर्वाचित MLA}} \times \frac{1}{1000}$$

राजस्थान के विधायक का मत मूल्य = 129

सर्वाधिक विधायक मत मूल्य = उत्तरप्रदेश में (208)

न्यूनतम विधायक मत मूल्य = सिक्किम में (7)

- सांसद के मत का मूल्य $= \frac{\text{Total Vote value of all elected MLAs}}{\text{Total elected MP}}$

एक सांसद के मत का मूल्य = 708

राष्ट्रपतियों का निर्वाचन

क्र.स.	निर्वाचन वर्ष	विजयी उम्मीदवार	प्राप्त मत (प्रतिशत में)	मुख्य प्रतिद्वंद्वी	प्राप्त मत (प्रतिशत में)
1.	1952	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	507400 (83.81)	के.टी. शाह	92827 (15.3)
2.	1957	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	459698 (99.35)	एन.एन.दास	2000 (0.4)
3.	1962	डॉ. एस. राधाकृष्णन	553067 (98.24)	चौ. हरिराम	6341 (1.1)
4.	1967	डॉ. जाकिर हुसैन	471244 (56.23)	के. सुब्बाराव	363971 (43.4)
5.	1969	वी.वी.गिरि	420044 (50.22)	एन.संजीवन रेड्डी	405427 (48.5)
6.	1974	फखरूद्दीन अली अहमद	756587 (80.18)	त्रिदेव चौधरी	189186 (19.8)
7.	1977	एन. संजीवन रेड्डी	–	निर्विरोध	–
8.	1982	ज्ञानी जैल सिंह	754113 (72.73)	एच.आर.खन्ना	282685 (27.6)
9.	1987	आर. वेंकटरमण	740148 (72.29)	वी. कृष्णअय्यर	281550 (27.1)
10.	1992	डॉ. शंकर दयाल शर्मा	675564 (65.86)	जॉर्ज स्वेल	346485 (33.21)
11.	1997	के.आर.नारायणन	956290 (94.97)	टी.एन.शेषन	50431 (5.07)
12.	2002	डॉ.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	922844 (89.58)	लक्ष्मी सहगल	107366 (10.42)
13.	2007	श्रीमती प्रतिभा पाटिल	638116 (65.82)	बी.एस.शेखावत	331306 (34.17)
14.	2012	प्रणब मुखर्जी	713763 (68.12)	पी.ए.संगमा	315987 (30.15)
15.	2017	रामनाथ कोविन्द	702044 (65.65)	मीरा कुमार	367314 (34.35)
16.	2022	द्रौपदी मुर्मू	676803 (64.03)	यशवन्त सिन्हा	380177 (35.97)

अनुच्छेद 56 – 'राष्ट्रपति का कार्यकाल'

- कार्यकाल – शपथ ग्रहण से 5 वर्ष।
- त्यागपत्र – उपराष्ट्रपति को – लोकसभा अध्यक्ष को सूचित।
- उपराष्ट्रपति का पद रिक्त है तो त्यागपत्र उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को।
- महाभियोग द्वारा हटाना – संविधान का अतिक्रमण/उल्लंघन के आधार पर।

अनुच्छेद 57 – पुनर्निर्वाचन

- राष्ट्रपति पुनर्निर्वाचित हो सकता है।

अनुच्छेद 58 – 'राष्ट्रपति के चुनाव की योग्यताएँ'

- राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को निम्न योग्यताओं को पूर्ण करना आवश्यक है–
  1. भारत का नागरिक हो।
  2. 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
  3. लोकसभा का सदस्य नियुक्त होने हेतु योग्य हो।
  4. संघ या राज्य सरकारों या स्थानीय अथवा सार्वजनिक प्राधिकरणों में लाभ के पद पर ना हो।

अनुच्छेद 59 – 'राष्ट्रपति पद की शर्तें'

अनुच्छेद 60 – 'राष्ट्रपति की शपथ'

- ईश्वर/सत्यनिष्ठा की, श्रद्धापूर्वक पद का कार्यपालन करने की।

संविधान व विधि का

परिरक्षण | संरक्षण | प्रतिरक्षण

- भारत की जनता की सेवा व कल्याण में निरत रहने की।
- उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश व उसकी अनुपस्थिति में वरिष्ठतम न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति को शपथ दिलाई जाती है।

अनुच्छेद 61 – 'राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया'

- महाभियोग एक अर्द्धन्यायिक प्रक्रिया है।
- महाभियोग का प्रस्ताव किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।
- जिस सदन में प्रस्ताव पेश किया जाता है उसके 1/4 सदस्यों के हस्ताक्षर प्रस्ताव पर होने चाहिए।
- राष्ट्रपति को 14 दिन के नोटिस के बाद सदन प्रस्ताव पर चर्चा कर सकता है।
- पहला सदन आरोप लगाता है तथा इस सदन में कुल सदस्यों के 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित किया जाना चाहिए।
- दूसरा सदन आरोपों की जाँच करता है। जाँच के दौरान राष्ट्रपति स्वयं या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से उपस्थित होकर अपना पक्ष रख सकता है।
- यदि आरोप सही पाए जाते है तो दूसरा सदन भी कुल सदस्यों के 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करता है।
- इसके पश्चात राष्ट्रपति स्वयं अपने पद से हट जाता है।
- मनोनीत सदस्य भी राष्ट्रपति के महाभियोग में भाग लेते हैं।

अनुच्छेद 62 –

- राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पहले अगले राष्ट्रपति का चुनाव कर लिया जाना चाहिए।
- यदि ऐसा नहीं होता है तो वर्तमान राष्ट्रपति अगले राष्ट्रपति का निर्वाचन हो जाने तक पद पर बना रहेगा।
- यदि राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाए (त्यागपत्र, मृत्यु, महाभियोग के कारण) तो अगले राष्ट्रपति का निर्वाचन 6 माह के भीतर अवश्य हो जाना चाहिए।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ

कार्यपालिका शक्तियाँ

- राष्ट्रपति संघ की कार्यपालिका का प्रमुख होता है।
- संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होती है।
- संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है।
- राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है।
- मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहते हैं।
- कार्यपालिका के कार्यों के सुचारू संचालन हेतु राष्ट्रपति नियम.विनियम बना सकता है।
- राष्ट्रपति राज्यों में राज्यपाल को नियुक्त करता है।
- संघ शासित प्रदेशों में उप–राज्यपाल एवं प्रशासकों की नियुक्ति करता है।
- राष्ट्रपति महान्यायवादी की नियुक्ति करता है और महान्यायवादी राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहता है।
- राष्ट्रपति नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक (CAG) की नियुक्ति करता है।
- राष्ट्रपति अनेक आयोगों के अध्यक्षों व सदस्यों की नियुक्ति करता है।

विभिन्न आयोग –

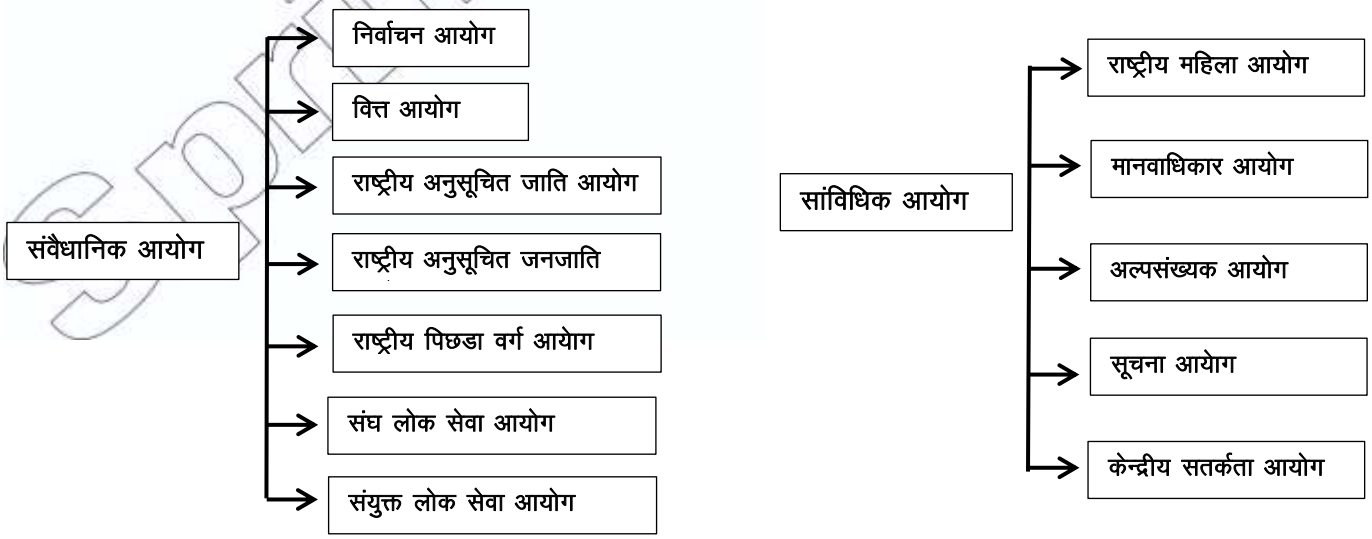

- **कार्यकारी आयोग** :– नीति आयोग – मंत्रिमंडल की अनुशंसा से
- राष्ट्रपति अन्तर्राज्यीय परिषद का गठन करता है।
- अनुसूचित व जनजातीय क्षेत्र घोषित करता है।

विधायी शक्तियाँ

- राष्ट्रपति स्वयं संसद का एक भाग है।
- राष्ट्रपति संसद के सत्र को आहूत करता है व सत्रावसान करता है।
- राष्ट्रपति लोकसभा को भंग कर सकता है किन्तु कार्यकाल पूरा होने पर लोकसभा स्वतः भंग हो जाती है।
- राष्ट्रपति राज्यसभा में 12 सदस्यों का मनोनयन कर सकता है ।
- यदि राज्यसभा में सभापति व उपसभापति दोनों पद रिक्त है तो राष्ट्रपति अस्थाई अध्यक्ष नियुक्त कर सकता है।
- यदि लोकसभा में अध्यक्ष व उपाध्यक्ष दोनों पद रिक्त है तो राष्ट्रपति अस्थाई अध्यक्ष नियुक्त कर सकता है।
- राष्ट्रपति संसद को संदेश भेज सकता है तथा वह दोनों सदनों में अभिभाषण दे सकता है।
- राष्ट्रपति संसद में 'विशेष अभिभाषण' (आम चुनाव के बाद पहले सत्र में, प्रतिवर्ष पहले सत्र में) देता है।
- सांसदों की अयोग्यता का निर्णय राष्ट्रपति द्वारा लिया जाता है (चुनाव आयोग की सलाह पर)
- राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों की 'संयुक्त बैठक' बुला सकता है। इसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करता है ।
- कुछ विधेयक राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से ही संसद में पेश किए जाते हैं; जैसेः– धन विधेयक, नए राज्य के गठन संबंधी विधेयक आदि।
- संसद से पारित कोई विधेयक राष्ट्रपति की सहमति के पश्चात ही अधिनियम बनता है।
- जब कोई विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है तो उसके पास तीन विकल्प होते हैं–
  1. अपनी सहमति देना
  2. अपनी सहमति को रोकना (अस्वीकार करना)
  3. पुनर्विचार के लिए लौटाना।
- राज्यपाल राज्य विधानमण्डल के विधेयक को राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रख सकता है तथा राष्ट्रपति इस विधेयक को अनेक बार पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है (जबकि संसद के विधेयक को केवल एक बार वापस भेज सकता है)
- निम्नलिखित संघ शासित प्रदेशों में शांति, विकास व सुशासन के लिए राष्ट्रपति नियम विनियम बना सकता है–
  1. अण्डमान निकोबार द्वीप समूह
  2. दादरा नगर हवेली और दमन तथा दीव
  3. लक्षद्वीप
- **राष्ट्रपति निम्नलिखित प्रतिवेदनों को संसद के समक्ष रखवाता है.**
  1. संघ लोक सेवा आयोग की रिपोर्ट
  2. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन
  3. वित्त आयोग का प्रतिवेदन
- **राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है।**

वित्तीय शक्तियाँ

- बजट राष्ट्रपति की ओर से पेश किया जाता है।
- धन विधेयक राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से पेश किया जाता है।
- अनुदान की माँगे राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से पेश की जाती है।
- राष्ट्रपति वित्त आयोग का गठन करता है उसके अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति करता है।
- राष्ट्रपति के अधीन 500 करोड़ की आकस्मिक निधि होती है।

न्यायिक शक्तियाँ

- राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति करता है।
- राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति करता है।
- राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय से परामर्श ले सकता है।
- राष्ट्रपति क्षमा करने की शक्ति रखता है।

कूटनीतिक शक्तियाँ

- सभी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियाँ व समझौते राष्ट्रपति के नाम से किए जाते हैं लेकिन इनका संसद से अनुमोदन आवश्यक हो सकता है।
- अन्य देशों में हमारे राजदूत तथा उच्चायुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है।
- अन्य देशों से आने वाले उच्चायुक्तों एवं राजदूतों का स्वागत राष्ट्रपति करता है।

सैन्य शक्तियाँ

- राष्ट्रपति तीनों सेनाओं का प्रमुख होता है।
- राष्ट्रपति युद्ध की एवं युद्ध विराम की घोषणा कर सकता है, किन्तु इसमें संसद के अनुमोदन की आवश्यकता होती है।

आपातकालीन शक्तियाँ

- राष्ट्रपति तीन प्रकार के आपात की उद्घोषणा कर सकता है–
  1. राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352)
  2. राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाना (अनुच्छेद 356)
  3. वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360)

राष्ट्रपति की वीटो शक्तियाँ

भारत का राष्ट्रपति अत्यांतिक, निलंबनकारी व पॉकेट तीन वीटो शक्तियाँ रखता है ।

1. **अत्यांतिक वीटो** – यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक पर अपनी सहमति रोक लेता है अर्थात विधेयक को अस्वीकार कर देता है तो इसे अत्यांतिक वीटो कहते है।

- **सामान्यतः दो परिस्थितियों में ऐसा किया जाता है–**
  (i) यदि निजी विधेयक हो
  (ii) सरकारी विधेयक के संबंध में यदि मंत्रिपरिषद बदल गया हो।

- **अभी तक दो बार इस वीटो शक्ति का प्रयोग हुआ है–**
  (i) 1954 में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा PEPSU विनियोग विधेयक पर अपना निर्णय रोककर।
  (ii) 1991 में डॉ. आर. वेंकटरमण द्वारा संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक को रोककर।

2. निलम्बनकारी वीटो –

- यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक को पुनर्विचार हेतु संसद के पास वापस भेजता है तो इसे निलंबनकारी वीटो कहते है।
  - राष्ट्रपति केवल एक बार ही किसी विधेयक को पुनर्विचार हेतु वापस भेज सकता है। राष्ट्रपति APJ अब्दुल कलाम द्वारा लाभ का पद विधेयक, 2006 पर इसका प्रयोग किया गया।
  - धन विधेयक पर राष्ट्रपति इस वीटो का प्रयोग नहीं कर सकता है।

3. पॉकेट वीटो –

- भारतीय संविधान में राष्ट्रपति के द्वारा किसी विधेयक पर हस्ताक्षर करने की समय सीमा का उल्लेख नहीं है।
- राष्ट्रपति यदि विधेयक पर ना तो सहमति दे, ना ही असहमति दे और ना ही पुनर्विचार हेतु वापस भेजे बल्कि अनिश्चित काल के लिए विधेयक को अपने पास रख ले तो इसे पॉकेट वीटो कहते है।
- अभी तक केवल एक बार इस वीटो का प्रयोग किया गया है। 1986–राष्ट्रपति जैल सिंह– भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक।

संयुक्त राज्य अमेरिका में वीटो

1. **पॉकेट वीटो –**
   - अमेरिकी संविधान में किसी विधेयक पर हस्ताक्षर करने के लिए राष्ट्रपति को दस दिन का समय दिया गया है।
   - यदि राष्ट्रपति 10 दिन में हस्ताक्षर नहीं करता है और इसी दौरान कांग्रेस का सत्र समाप्त हो जाता है, तो वह बिल भी समाप्त हो जाता है इसे ही पॉकेट वीटो कहते है।
2. **क्वालिफाइंग वीटो –**
   - यदि अमेरिकी राष्ट्रपति किसी विधेयक को अस्वीकार कर देता है और कांग्रेस उसे विशेष बहुमत से पुनः पारित कर देती है, तो वह विधेयक अधिनियम बन जाता है। इसे राष्ट्रपति की सहमति की आवश्यकता नहीं होती है।
   - भारतीय संविधान में यह वीटो शक्ति नहीं है।

अनुच्छेद 72 :– राष्ट्रपति की क्षमादान शक्तियाँ

- **राष्ट्रपति निम्नलिखित विषयों पर क्षमादान की शक्तियों का प्रयोग कर सकता है–**
  - संघीय कानून के उल्लंघन पर यदि किसी व्यक्ति को दंडित किया गया हो।
  - सैन्य न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड के संबंध में ।
  - मृत्युदण्ड के सभी मामलों में।

1. **क्षमा**

- इसके तहत व्यक्ति को पूर्णतः क्षमा कर दिया जाता है अर्थात् व्यक्ति अपराध पूर्व की स्थिति में आ जाता है।
- सजा के कारण उत्पन्न सभी अयोग्यताएँ भी समाप्त हो जाती है।

2. **लघुकरण**

- इसके तहत सजा की प्रकृति को बदला जाता है जैसे– मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में या कठोर कारावास को साधारण कारावास में बदलना।

3. **परिहार**

- इसमें सजा की अवधि को कम किया जाता है; जैसेः– 10 वर्ष के कारावास को 5 वर्ष के कारावास में बदलना।

4. **विराम**

- इसमें सजा की प्रकृति को भी बदला जाता है तथा सजा की अवधि को भी कम किया जाता है; जैसे– चार वर्ष के कठोर कारावास को कम कर दो वर्ष का साधारण कारावास करना।
- दिव्यांग व्यक्ति, गर्भवती महिला आदि के मामलों में।

5. **प्रविलम्ब**

- इसके तहत सजा पर अस्थायी रोक लगाई जाती है। सामान्यतः मृत्यु दण्ड की स्थिति में इसका प्रयोग किया जाता है।

अनुच्छेद 161 :– राज्यपाल की क्षमादान की शक्तियाँ

- यदि किसी व्यक्ति को राज्य के कानून के उल्लंघन के लिए दण्डित किया गया हो तो राज्यपाल उसे क्षमा कर सकता है।
- सैन्य न्यायालय द्वारा दण्डित व्यक्ति को राज्यपाल क्षमा नहीं कर सकता।
- मृत्युदण्ड के मामले में राज्यपाल पूर्णतः क्षमा नहीं कर सकता किन्तु वह 'प्रविलम्ब' व 'लघुकरण' की शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय

- दया की याचना करने वाले व्यक्ति को राष्ट्रपति से मौखिक सुनवाई का अधिकार नहीं है क्योंकि इसकी प्रकृति प्रशासनिक है/न्यायिक नहीं।
- राष्ट्रपति प्रमाण (साक्ष्य) का पुनः अध्ययन कर सकता है और उनका विचार न्यायालय से भिन्न हो सकता है।
- राष्ट्रपति अपने आदेश के कारण बताने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि यह राष्ट्रपति की विवेकाधीन दया है। (रंगा बिल्ला वाद 1978)
- राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग केन्द्रीय मंत्रीमंडल के परामर्श से करेगा। (मारूराम बनाम भारत संघ 1980) (धनंजय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल 1994)
- राष्ट्रपति को अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए, उच्चतम न्यायालय द्वारा कोई भी दिशा–निर्देश निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है।
- राष्ट्रपति की इस शक्ति पर कोई भी न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती। यह विवेकाधीन दया है पर उसका विशेषाधिकार नहीं है इसलिए इसका प्रयोग कर्तव्य निर्वहन के लिए व जनहित में किया जाना चाहिए । यदि राष्ट्रपति का निर्णय स्वेच्छाचारी, विवेकरहित, दुर्भावना या भेदभाव पूर्ण हो, तो न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। (इपुरू सुधाकर बनाम आन्ध्रप्रदेश राज्य 2006)
- यदि राष्ट्रपति ने दया याचिका को खारिज कर दिया है तो सजा के क्रियान्वयन को रोकने के लिए पुनः आवेदन नहीं किया जा सकता है।
- यदि राष्ट्रपति मृत्यु दण्ड की दया याचिका पर समय पर निर्णय नहीं देता है तो मृत्यु दण्ड का लघुकरण किया जा सकता है। (सिजोफ्रेनिया व मानसिक बीमार को मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए) (शत्रुघन चौहान बनाम भारत संघ 2014)

राष्ट्रपति की क्षमादान शक्तियाँ

विपक्ष

1. औपनिवेशिक कालीन व्यवस्था है। उन स्थितियों में अंग्रेजों को सजा से बचाने के लिए ब्रिटिश को इसकी आवश्यकता थी।
2. शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के विरूद्ध है क्योंकि कार्यपालिका को न्यायिक शक्ति प्रदान की गई है।
3. न्यायपालिका की प्रतिष्ठा के विरूद्ध है क्योंकि राष्ट्रपति का निर्णय न्यायपालिका के निर्णय से अलग हो सकता है तथा राष्ट्रपति इसका कारण बताने के लिए भी बाध्य नहीं है। राष्ट्रपति बिना किसी जांच के अपना निर्णय देता है।
4. राष्ट्रपति के पास अधिकांश दया याचिकाएं लम्बे समय तक लम्बित पड़ी रहती है जिससे न्याय मांगने वाले व अपराधी दोनों के अधिकारों का हनन होता है।
5. राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इसका दुरुपयोग भी किया जाता है राजनीतिक दल अपने लाभ के लिए इसका उपयोग करते है।

पक्ष

1. संविधान में इसका प्रावधान है अतः यह संवैधानिक है । यह संविधान निर्माताओं की भावनाओं के अनुरूप है।
2. न्यायपालिका की भूल को सुधारने का एक अतिरिक्त अवसर है क्योंकि यह मान्यता है कि 99 अपराधी बच जाए पर एक निर्दोष को सजा नहीं होनी चाहिए।
3. न्यायपालिका सबूतों व गवाहों के आधार पर अपना निर्णय देती है लेकिन कई बार मानवीय भावनाओं व संवेदनाओं को भी महत्व देना होता है अतः राष्ट्रपति मानवीय भावनाओं के आधार पर निर्णय दे सकता है। जैसेः– गर्भवती महिला
4. न्यायिक प्रक्रिया के अधिक चरण हो तो इसे अच्छा माना जाता है या ऐसी न्यायिक प्रक्रिया को आदर्श माना जाता है।
5. आपातकालीन स्थितियों में ये काम आ सकती है ।
6. कार्यपालिका को प्रायः विशिष्ट शक्तियाँ दी जाती है।
7. नीतिशास्त्र व परम्परागत मान्यताओं में भी दया को महान गुण माना गया है।
8. उच्चतम न्यायालय ने भी इसे वैध माना है ।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान शक्तियों में अंतर	
राष्ट्रपति (अनुच्छेद 72)	**राज्यपाल (अनुच्छेद 161)**
संघीय कानून के उल्लंघन पर यदि किसी व्यक्ति को दण्डित किया गया है तब राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।	राज्य कानून के उल्लंघन पर यदि किसी व्यक्ति को दण्डित किया गया है तब राज्यपाल इन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।
राष्ट्रपति सैन्य न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड के संबंध में भी इन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।	राज्यपाल सैन्य न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड के संबंध में इन शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता।
राष्ट्रपति मृत्युदण्ड के मामले में पाँचों शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।	राज्यपाल मृत्युदण्ड के मामले में क्षमा नहीं कर सकता हालाँकि अन्य शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है।

अनुच्छेद 73 – संघ की कार्यपालिका शक्तियों का विस्तार

i. जिन विषयों के संबंध में संसद को विधि बनाने की शक्ति है।
ii. किसी संधि या करार के आधार पर भारत सरकार को प्राप्त शक्ति।

अनुच्छेद 74 – राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए एक मंत्रीपरिषद होगी जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होगा।

42वां संविधान संशोधन, 1976–

- राष्ट्रपति मंत्रीपरिषद की सलाह से कार्य करेगा।

44वां संविधान संशोधन, 1978–

- राष्ट्रपति मंत्रीपरिषद की सलाह को एक बार पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है।

अनुच्छेद 75 – राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करेगा एवं प्रधानमंत्री की सलाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करेगा।

- प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों की कुल संख्या लोकसभा के कुल सदस्यों का 15% से अधिक नहीं हो सकती (91वां संविधान संशोधन, 2003)
- दल बदल का दोषी व्यक्ति उस लोकसभा के कार्यकाल में नया चुनाव जीते बिना मंत्री नहीं बन सकता है।(उपचुनाव)
- 6 माह में मंत्री को सांसद बनना आवश्यक है अन्यथा मंत्री पद समाप्त हो जाएगा।
- मंत्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर बने रहते है और व्यक्तिगत रूप से राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
- मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

अनुच्छेद 76 महान्यायवादी Attorney General	अनुच्छेद 165 महाधिवक्ता Advocate General
• यह केन्द्र सरकार का प्रथम विधिक अधिकारी है।	• यह राज्य सरकार का प्रथम विधिक अधिकारी है।
• इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।	• इसकी नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है।
• योग्यता उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के बराबर। वेतन राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित किया जाता है।	• योग्यता उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के बराबर। वेतन राज्यपाल द्वारा निर्धारित किया जाता है।
• यह राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यंत अपने पद पर रहता है।	• यह राज्यपाल के प्रसाद पर्यंत अपने पद पर रहता है।
• यह विधिक मामलों में केन्द्र सरकार को परामर्श देता है।	• यह विधिक मामलों में राज्य सरकार को परामर्श देता है।
• यह न्यायालय में केन्द्र सरकार के पक्ष में वकालत करता है।	• यह न्यायालय में राज्य सरकार के पक्ष में वकालत करता है।
• यह भारत में स्थित किसी न्यायालय में पैरवी कर सकता है किन्तु केन्द्र सरकार के विरुद्ध किसी मामले में पैरवी नहीं कर सकता।	• यह भारत में स्थित किसी न्यायालय में पैरवी कर सकता है किन्तु राज्य सरकार के विरुद्ध किसी मामले में पैरवी नहीं कर सकता।
• यह संसदीय सदनों की कार्यवाही एवं संसदीय समितियों की कार्यवाही में भाग ले सकता है लेकिन इस आधार पर वो मत नहीं दे सकता है।	• यह राज्य विधानसभा, विधानपरिषदों व उनकी समितियों की कार्यवाहियों में भाग ले सकता है लेकिन इस आधार पर वो मत नहीं दे सकता।
• इसकी सहायता हेतु सॉलिसिटर जनरल होता है।	• इसकी सहायता के लिए लोक अभियोजक होते हैं।

अनुच्छेद 77 – भारत सरकार के कार्यों का संचालन

- संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति के नाम से किया जाएगा।
- कार्यपालिका के कार्यों के सुचारू संचालन के लिए राष्ट्रपति नियम–विनियम बना सकता है तथा मंत्रियों में कार्य आवंटन हेतु नियम बना सकता है।

- इसके तहत 4 प्रकार के मंत्री बनाए जाते हैं
  1. केबिनेट मंत्री
  2. राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार)
  3. राज्यमंत्री
  4. उपमंत्री

अनुच्छेद 78 – राष्ट्रपति को सूचित करने के संदर्भ में प्रधानमंत्री के कर्त्तव्य

- प्रधानमंत्री का कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रपति को सरकार के विनिश्चयों की सूचना उपलब्ध करवाएं।
- राष्ट्रपति संघ के प्रशासनिक व विधायी कार्यों के संबंध में सूचना माँग सकता है।
- यदि किसी मंत्री ने कोई विनिश्चय कर दिया है (बिना मंत्रीपरिषद में विचार किए) तो राष्ट्रपति प्रधानमंत्री से यह अपेक्षा करता है कि मंत्रीपरिषद में इस पर विचार हो।

बहुमत के प्रकार

1. **साधारण बहुमत** – उपस्थित सदस्यों का बहुमत
2. **प्रभावी बहुमत** – तत्कालीन सदस्यों का बहुमत
   (तत्कालीन सदस्य = कुल सदस्य – रिक्त स्थान)
3. **पूर्ण बहुमत** – कुल सदस्यों का बहुमत
4. **विशेष बहुमत** – इसमें दो शर्तें पूरी होनी आवश्यक है–
   (i) कुल सदस्यों का बहुमत
   (ii) उपस्थित सदस्यों का 2/3 बहुमत
5. केन्द्र राज्य संबंधों को प्रभावित करने वाले संविधान संशोधन के लिए दोनों सदनों में विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है तथा आधे से अधिक राज्यों की विधानसभाओं का अनुमोदन आवश्यक है। (विधानसभा में साधारण बहुमत)

- राष्ट्रपति पर महाभियोग के लिए कुल सदस्यों के 2/3 बहुमत की आवश्यकता होती है (केवल राष्ट्रपति के लिए)

अनुच्छेद 123 :– राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति

- यदि संसद के दोनों सदन सत्र में नहीं है तथा सरकार को तत्काल किसी कानून की आवश्यकता हो तो उस स्थिति में राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है।
- यदि संसद के दोनों सदनों में से कोई एक सदन सत्र में नहीं है तो राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है।
- यदि संसद के दोनों सदन सत्र में हो तो राष्ट्रपति अध्यादेश जारी नहीं कर सकता है।
- अध्यादेश एक अस्थाई कानून होता है।
- यह संसदीय अधिनियम की भाँति ही प्रभावी होता है।
- इससे संसदीय अधिनियम में संशोधन किया जा सकता है, किन्तु संविधान में संशोधन नहीं किया जा सकता है।
- संसदीय अधिनियम की भांति इसे भूतकाल से लागू किया जा सकता है।
- अध्यादेश का आयुकाल सीमित होता है– संसद के दोनों सदनों के सत्र आरम्भ होने के बाद 6 सप्ताह तक यह अस्तित्व में रहता है। अध्यादेश का अधिकतम आयुकाल 6 माह एवं 6 सप्ताह होता है।
- अध्यादेश को राष्ट्रपति कभी भी वापस ले सकता है।
- संसद अध्यादेश को समाप्त कर सकती है।
- सरकार जब अध्यादेश को अनुमोदन हेतु संसद में पेश करती है तो सरकार को अध्यादेश की तात्कालिक आवश्यकता का स्पष्टीकरण देना होता है।

- अध्यादेश की तात्कालिक आवश्यकताओं के कारणों का न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकता है।
- **38 वां संविधान संशोधन–** इसमें यह प्रावधान था कि न्यायालय इसका न्यायिक पुनरावलोकन नहीं कर सकता तथा राष्ट्रपति की संतुष्टि अंतिम है।
- **44 वाँ संविधान संशोधन–** इसमें प्रावधान किया गया कि न्यायालय द्वारा अध्यादेश की तात्कालिक आवश्यकताओं के कारणों का न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकता है।

डी. सी. वाधवा केस 1987

- उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि एक ही अध्यादेश को संसद में पारित करवाने का प्रयास किए बिना एक ही लेख में बार बार प्रख्यापित नहीं किया जा सकता।
- यदि ऐसा किया जाता है तो ये कार्यपालिका के द्वारा विधायिका की शक्तियों पर किया गया अतिक्रमण है जैसा कि बिहार में 1967 से 1981 के बीच 256 अध्यादेश जारी किए गए थे जो कि अध्यादेश जारी करने की शक्ति का दुरूपयोग था।
- 2017 में भी उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय की पुष्टि की एवं दोहराया। (कृष्ण कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य 2017)

प्रश्न : क्या भारत का राष्ट्रपति रबड़ की मोहर मात्र है ?

उत्तर: भारत ने ब्रिटेन की भाँति संसदीय शासन व्यवस्था को अपनाया है जिसमें कार्यपालिका के दो प्रमुख होते हैं (एक नाममात्र व दूसरा वास्तविक प्रमुख)। इसमें शासन की वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद् में होती है अतः ब्रिटिश क्राउन की भाँति भारत के राष्ट्रपति को रबड़ स्टैम्प मात्र माना जाता है लेकिन भारत का राष्ट्रपति रबड़ स्टैम्प मात्र नहीं है क्योंकि इसके पास अनेक विवेकाधीन शक्तियाँ है जैसे–

- यदि आम चुनावों में किसी दल या गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो राष्ट्रपति स्वयं यह निर्धारित करता है कि सरकार बनाने के लिए किसे आमंत्रित किया जाए।
- यदि लोकसभा मे मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास पारित हो जाता है तो राष्ट्रपति निर्णय करता है कि लोकसभा को भंग किया जाए अथवा सरकार बनाने के लिए किसी अन्य को अवसर दिया जाए।
- यदि लोकसभा भंग हो गई हो तब मंत्रीपरिषद महत्वपूर्ण नीतिगत निर्णय नहीं ले सकती। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति मंत्रीपरिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है।
- राष्ट्रपति मंत्रीपरिषद की सलाह को एक बार पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है (अनुच्छेद–74)
- राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा से पहले राष्ट्रपति यह सुनिश्चित करता है कि लिखित सलाह पर सभी केबिनेट मंत्रियों के हस्ताक्षर है या नहीं।
- राष्ट्रपति प्रधानमंत्री से सरकार के विधायी व कार्यपालिका कार्यों के संबंध में सूचनाएँ मांग सकता है तथा प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह सूचनाएँ उपलब्ध करवाए।
- यदि किसी मंत्री ने विनिश्चय कर लिया है और मंत्रिपरिषद में उस पर चर्चा नहीं हुई हो तो राष्ट्रपति प्रधानमंत्री से यह अपेक्षा कर सकता है कि मंत्रिपरिषद उस पर चर्चा करे।
- वर्तमान में मीडिया की सक्रियता है ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति यदि सरकार के कामकाज पर टिप्पणी करता है तो इसे गंभीरता से लिया जाता है जिससे सरकार पर नैतिक दबाव उत्पन्न होता है।
- गठबन्धन सरकार में राष्ट्रपति का पद अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वह एक से अधिक दलों के समर्थन से निर्वाचित होता है अतः राष्ट्रपति एक दल के प्रभाव में नहीं रहता है और अधिक सक्रियता एवं प्रभावी तरीके से कार्य करता है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि भारत के राष्ट्रपति के पास अनेक विवेकाधीन शक्तियाँ है तथा सरकार में उसकी भूमिका प्रभावी व महत्वपूर्ण है इसलिए इसे रबड स्टैम्प नहीं कहा जा सकता।

उपराष्ट्रपति

उपराष्ट्रपति का पद अमेरिका से लिया गया है। यू.एस.ए का उपराष्ट्रपति सीनेट का पदेन सभापति होता है। किन्तु अमेरिका के राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर उपराष्ट्रपति उसके शेष कार्यकाल को पूरा करता है, जबकि भारत में पद रिक्तता की स्थिति में उपराष्ट्रपति नए राष्ट्रपति के चुनाव तक उसके पद पर बना रहता है।

अनुच्छेद 63 – भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा।

अनुच्छेद 64 – उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होगा।

अनुच्छेद 65 – राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में उपराष्ट्रपति उसके कर्त्तव्यों का निर्वहन करेगा।

अनुच्छेद 66 – 'उपराष्ट्रपति पद हेतु योग्यताएँ, शर्तें, एवं उसका निर्वाचन'

निर्वाचक मण्डल – लोकसभा व राज्यसभा के सभी सदस्य (निर्वाचित + मनोनीत)

निर्वाचन पद्धति – आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति, एकल संक्रमणीय मत द्वारा उपराष्ट्रपति को विजय हेतु 50% + 1 मत की आवश्यकता होती है।

अनुच्छेद 67 – कार्यकाल एवं हटाने की प्रक्रिया

- कार्यकाल 5 वर्ष (शपथ ग्रहण से)
- उपराष्ट्रपति को पद से हटाने के कारण का उल्लेख संविधान में नहीं है।
- उपराष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव केवल राज्यसभा में पेश किया जा सकता है।
- 14 दिन के नोटिस के बाद सदन इस पर चर्चा करता है।
- चर्चा के दौरान उपराष्ट्रपति पीठासीन अधिकारी नहीं हो सकता किन्तु वह सदन की कार्यवाही में भाग ले सकता है और अपना पक्ष रख सकता है।
- किन्तु वह मतदान नहीं कर सकता क्योंकि वह राज्यसभा सदस्य नहीं है।
- यह प्रस्ताव राज्यसभा में तत्कालीन सदस्यों के बहुमत (प्रभावी बहुमत) से पारित होना चाहिए।
- इसके पश्चात प्रस्ताव लोकसभा में भेजा जाता है जिसे लोकसभा में साधारण बहुमत से अनुमोदित किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 68 – उपराष्ट्रपति का कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व ही अगले उपराष्ट्रपति का चुनाव कर लिया जाना चाहिए।

- यदि उपराष्ट्रपति का पद (मृत्यु, त्यागपत्र, पद से हटाए जाने के कारण) रिक्त हो जाए तो यथाशीघ्र उपराष्ट्रपति का निर्वाचन किया जाना चाहिए।
- इसमें राष्ट्रपति की भांति 6 माह की बाध्यता नहीं है।

अनुच्छेद 69 – उपराष्ट्रपति की शपथ

वे उपराष्ट्रपति जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने–

1. डॉ. राधाकृष्णन
2. डॉ. जाकिर हुसैन
3. वी. वी. गिरि
4. आर. वेंकटरमन
5. डॉ. शंकर दयाल शर्मा
6. के.आर.नारायणन

अनुच्छेद 70 – अन्य आकस्मिक स्थितियों में राष्ट्रपति के कर्त्तव्यों का निर्वहन।

- यदि राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति दोनों के पद रिक्त हो तो इस स्थिति में राष्ट्रपति के कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिए संसद कोई प्रावधान करेगी।
- 1969 में संसद ने इसके लिए प्रावधान किया कि ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश (उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश) राष्ट्रपति के कर्त्तव्यों का निर्वहन करेगा।
- यदि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद भी रिक्त हो तो सर्वोच्च न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश राष्ट्रपति के कर्त्तव्यों का निर्वहन करेगा।

अनुच्छेद 71 – राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के चुनावों से संबंधित विवादों की सुनवाई केवल उच्चतम न्यायालय में ही की जा सकती है।

भारत एवं अमेरिकी उपराष्ट्रपति की तुलना–

- भारत के उपराष्ट्रपति का पद अमेरिका के उपराष्ट्रपति के मॉडल पर आधारित है, परन्तु इसमें काफी भिन्नता है।
- अमेरिका का उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर कार्यकाल की शेष अवधि तक उस पद पर रहता है।
- भारत का उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर कार्यकाल की शेष अवधि तक उस पद पर नहीं रहता है। वह एक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में तब तक कार्य करता है, जब तक कि नया राष्ट्रपति कार्यभार ग्रहण न कर ले।

उप–राष्ट्रपतियों का निर्वाचन

क्र. सं.	निर्वाचन वर्ष	विजय उम्मीदवार	प्राप्त मत (प्रतिशत में)	मुख्य प्रतिद्वंदी	प्राप्त मत
1.	1952	डॉ. एस. राधाकृष्णन	–	निर्विरोध	–
2.	1957	डॉ. एस. राधाकृष्णन	–	निर्विरोध	–
3.	1962	डॉ. जाकिर हुसैन	568	एन.सामंत सिंह	14
4.	1967	वी.वी.गिरि	486	प्रो. हबीब	192
5.	1969	जी.एस.पाठक	400	एच.वी.कामथ	156
6.	1974	बी.डी. जत्ती	521	एन.ई.होरो	141
7.	1979	एम.हिदायतुल्ला	–	निर्विरोध	–
8.	1984	आर.वेंकटरमण	508	बी.सी.काम्बली	207
9.	1987	डॉ. शंकर दयाल शर्मा	–	निर्विरोध	–
10.	1992	के.आर.नारायणन	700	काका जोगिंदर सिंह	01
11.	1997	कृष्णकांत	441	सुरजीत सिंह बरनाला	273
12.	2002	बी.एस.शेखावत	454	सुशील कुमार शिंदे	305
13.	2007	मो. हामिद अंसारी	455	नजमा हेपतुल्ला	222
14.	2012	मो. हामिद अंसारी	490	जसवंत सिंह	238
15.	2017	वेंकैया नायडु	516	गोपाल कृष्ण गाँधी	244
16.	2022	जगदीप धनखड़	528	मार्गरेट अल्वा	182

विधायिका
अनुच्छेद 79–123

विधायिका

अनुच्छेद 79

- संसद (राष्ट्रपति + राज्यसभा + लोकसभा)

अनुच्छेद 80 – राज्यसभा

- राज्यसभा नाम 1954 में रखा गया। पहले इसका नाम 'काउन्सिल ऑफ स्टेट्स' था।
- अन्य नाम– 'उच्च सदन', स्थायी सदन, द्वितीय चैम्बर, प्रबुद्ध सदन

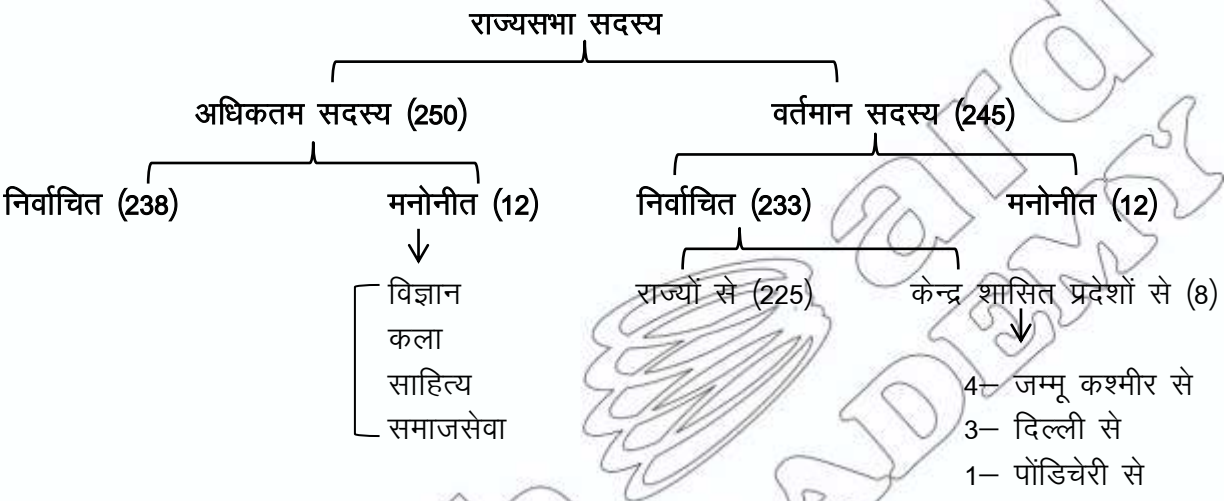

शेष संघ शासित प्रदेश कम जनसंख्या के कारण अपना कोई भी प्रतिनिधि राज्य सभा में नहीं भेजते।

- हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड से 3–3 प्रतिनिधि आते है।
- सर्वाधिक उत्तर प्रदेश से – 31 प्रतिनिधि
- राजस्थान से – 10 प्रतिनिधि
- 8 राज्यों से 1–1 प्रतिनिधि होते हैं।
- राज्यसभा हमारे परिसंघीय ढाँचे का प्रतिनिधित्व करती है लेकिन सभी राज्यों को इसमें समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है जैसे कि यू.एसूए में सीनेट में प्रत्येक राज्य से 2 प्रतिनिधि आते है जबकि हमारे यहाँ प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर दिया गया है।
- **निर्वाचन** – राज्यसभा सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है।
- **निर्वाचन मण्डल** – राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य
- **निर्वाचन पद्धति** – आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति तथा एकल संक्रमणीय मत द्वारा।
- राज्यसभा स्थाई सदन है क्योंकि लोकसभा की भांति यह भंग नहीं होती। इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष (हालांकि संविधान में उल्लेख नहीं) होता है। प्रति 2 वर्ष पश्चात् राज्यसभा के 1/3 सदस्य सेवानिवृत होते है।

राज्यसभा की विशेष शक्तियाँ

अनुच्छेद 249 – राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने की संसद की शक्ति ।

- राज्यसभा 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित कर संसद को राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने की अनुमति दे सकती है।
- यह कानून एक वर्ष तक लागू रहता है।
- यदि कानून की समयावधि को बढाना हो तो पूरी प्रक्रिया को दोहराना होता है।

अनुच्छेद 312 – अखिल भारतीय सेवाएँ

- राज्यसभा 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करके संसद को नई अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन की अनुमति दे सकती है।

- वर्तमान में 3 अखिल भारतीय सेवाएँ हैं–

(i) IAS - ICS (1947)
(ii) IPS - IP (1947)
(iii) IFS - भारतीय वन सेवा (1966)

अनुच्छेद–67 – उपराष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव (पहले) राज्यसभा में ही लाया जा सकता है।

अनुच्छेद 81 – लोकसभा

- 1954 में यह नाम रखा गया था । इससे पहले नाम 'हाउस ऑफ पीपुल' था।
- अन्य नाम– लोकप्रिय सदन, निम्न सदन, प्रथम सदन, अस्थाई सदन

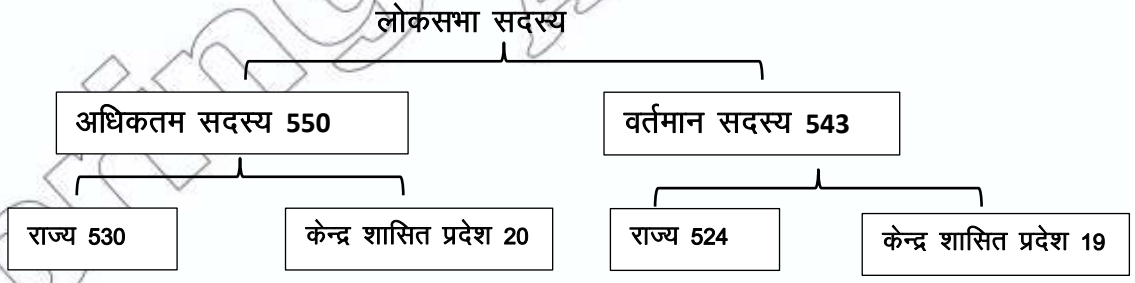

104वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा 2 आंग्ल–भारतीय सदस्यों का मनोनयन 2020 से आगे नहीं बढ़ाया गया ।

राज्यों से लोकसभा सदस्य (524)	
नागालैण्ड	- 1
मिजोरम	- 1
सिक्किम	- 1
गोवा	- 2
अरूणा प्रदेश	- 2
मणिपुर	- 2
मेघालय	- 2
त्रिपुरा	- 2
राजस्थान	- 25
उत्तर प्रदेश	- 80

केन्द्र शासित प्रदेशों से लोकसभा सदस्य (19)	
लद्दाख	- 1
जम्मू कश्मीर	- 5
दिल्ली	- 7
दादर और नागर हवेली & दमन और दीव	- 2
शेष केन्द्रशासित प्रदेश	– सभी में 1-1

चुनाव प्रणाली –

- लोकसभा सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से होता है।
- प्रत्यक्ष निर्वाचन कराने के लिए सभी राज्यों को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों विभाजित किया गया है। प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों को इस प्रकार से विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का उसको आवंटित स्थानों की संख्या से अनुपात समस्त राज्य में एक समान हो।
- जनसंख्या का प्रत्येक जनगणना के पश्चात पुनः समायोजन किया जाता है। 87वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के अनुसार निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन 2001 की जनगणना के आधार पर किया जाएगा।
- अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण का निर्धारण किया गया है। प्रारम्भ में ये आरक्षण 10 वर्षो के लिए था। उसके बाद इसे हर 10 वर्ष बाद 10 वर्षो के लिए बढ़ा दिया जाता है। 104वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2019 में इस आरक्षण को 2030 तक के लिए बढ़ा दिया गया।
- लोकसभा निर्वाचन के लिए प्रादेशिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (फर्स्ट–पास्ट–द पोस्ट सिस्टम) को अपनाया गया।

अनुच्छेद 82 – परिसीमन आयोग

- प्रत्येक जनगणना के बाद लोकसभा के निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करने के लिए परिसीमन आयोग का गठन किया जाता है जो राज्य विधानसभा के निर्वाचन क्षेत्रों का भी परिसीमन करता है।
  (अनुच्छेद 170 – राज्यों में परिसीमन)
- इसके अनुसार संसद परिसीमन आयोग अधिनियम बनाती है ।
- केन्द्र सरकार द्वारा परिसीमन आयोग का गठन किया जाता है।
- परिसीमन आयोग की अनुशंसाओं को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।
- परिसीमन आयोग की अनुशंसाओं को लोक सभा और विधानसभाओं के पटल पर रखा जाता है किन्तु परिवर्तन नहीं कर सकते ।
- परिसीमन आयोग एक सांविधिक संस्था है।

- अब तक 4 परिसीमन आयोगों का गठन किया गया है–

  1. 1952 2. 1963
  3. 1973 4. 2002

(1952, 1962, 1972, 2002 के अधिनियम के अंतर्गत)

परिसीमन आयोग की संरचना –

1. अध्यक्ष – सर्वोच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश
2. मुख्य चुनाव आयुक्त
3. संबंधित राज्य चुनाव आयुक्त

42वां संविधान संशोधन

- 1971 की जनगणना के आधार पर लोकसभा और विधानसभा सीटों की संख्या 2001 की जनगणना के आंकड़ों के प्रकाशन तक निश्चित कर दी गई।

84वां संविधान संशोधन 2001 –

- इसके तहत लोकसभा सीटों की संख्या को 2026 तक निश्चित कर दिया गया।
- इसमें चौथे परिसीमन आयोग के गठन का प्रावधान था जो 1991 की जनगणना के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का पुनः समायोजन करेगा।
- 1991 की जनगणना के आधार पर अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिए आरक्षित सीटों का पुनर्निर्धारण परिसीमन आयोग करेगा।

87वां संविधान संशोधन –

- चौथा परिसीमन आयोग 1991 के स्थान पर 2001 की जनगणना के आंकड़ों का प्रयोग करेगा।
  - 2002 में चौथे परिसीमन आयोग का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष जस्टिस कुलदीप सिंह थे।
  - इस आयोग ने 2008 में अपनी सिफारिशें दी।
  - इसने 22 राज्यों व 2 केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए परिसीमन किया।
  - निम्नलिखित राज्यों में परिसीमन नहीं किया गया–
    (i) जम्मू और कश्मीर (ii) झारखण्ड
    (iii) अरूणाचल प्रदेश (iv) असम
    (v) नागालैण्ड (vi) मणिपुर
- हाल ही में जम्मू कश्मीर के परिसीमन के लिए जस्टिस रंजना प्रकाश देसाई आयोग का गठन किया गया।
- वर्तमान में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों की संख्या क्रमशः 84 तथा 47 है।
- राजस्थान में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों की संख्या क्रमशः 4 तथा 3 है।

अनुच्छेद 83 – संसद के सदनों का कार्यकाल

- लोक सभा का कार्यकाल – 5 वर्ष
- राष्ट्रपति कार्यकाल से पूर्व भी लोक सभा को भंग कर सकता है।
- राष्ट्रीय आपातकाल के समय लोक सभा के कार्यकाल को एक बार में 1 वर्ष द्वारा कितनी भी अवधि तक बढाया जा सकता है। (आपातकाल समाप्त होने पर 6 माह से अधिक नहीं बढ़ा सकते)
- अभी तक लोक सभा का कार्यकाल दो बार 1976–77 में बढाया गया था।
- राज्य सभा एक स्थायी सदन है।

अनुच्छेद–84 – 'सांसदों की योग्यताएँ'

- भारत का नागरिक होना चाहिए।
- लोक सभा हेतु आयु – 25 वर्ष
- राज्य सभा हेतु आयु – 30 वर्ष
- भारत में किसी भी लोक सभा निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में नाम होना चाहिए। (निवास)
- एक उम्मीदवार अधिकतम दो लोकसभा क्षेत्रों से नामांकन दाखिल कर सकता है।
- भारत सरकार ने 2011 में NRI को चुनाव लड़ने का अधिकार दिया।

अनुच्छेद 85 – संसद के सत्र

आहूत करना (सभा में उपस्थित होने का आदेश) – राष्ट्रपति समय–समय पर संसद के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर बैठक के लिए बुलाता है, जैसे वह उचित समझे, लेकिन संसद के दो सत्रों के मध्य अधिकतम अंतराल छः माह से ज्यादा न होना चाहिए।

वर्तमान में 3 नियमित सत्र बुलाये जाते हैं–

1. बजट सत्र
2. मानसून सत्र
3. शीतकालीन सत्र

इसके अतिरिक्त विशेष सत्र भी बुलाए जा सकते हैं।

स्थगन – इसके द्वारा संसद की बैठक को कुछ निश्चित समय के लिए अध्यक्ष द्वारा स्थगित किया जाता है।

अनिश्चित काल के लिए स्थगन – जब सदन को बिना यह बताए स्थगित कर दिया जाता है कि अब उसे किस दिन आहूत किया जाएगा। अनिश्चित काल के लिए स्थगन करने की शक्ति अध्यक्ष या सभापति के पास होती है।

सत्रावसान – पीठासीन अधिकारी सदन को सत्र के पूर्ण होने पर अनिश्चित काल के लिए स्थगित करता है, तथा इसके कुछ दिनों में ही राष्ट्रपति सदन सत्रावसान की अधिसूचना जारी करता है। हालांकि राष्ट्रपति सत्र के दौरान भी सत्रावसान कर सकता है।

विघटन – राज्यसभा स्थायी सदन होने के कारण विघटित नहीं की जा सकती जबकि लोकसभा का विघटन होता है। विघटन वर्तमान सभा के जीवनकाल को समाप्त कर देता है और इसका पुनर्गठन नए चुनाव के बाद ही होता है। लोकसभा को दो प्रकार से विघटित किया जा सकता है– स्वयं विघटित तथा राष्ट्रपति द्वारा।

अनुच्छेद 86 – राष्ट्रपति संसद में संदेश भेज सकता है और अभिभाषण दे सकता है।

अनुच्छेद 87 – राष्ट्रपति का विशेष अभिभाषण

- राष्ट्रपति दोनों सदनों को समवेत रूप से बैठाकर विशेष अभिभाषण दे सकता है।
- लोक सभा के आम चुनावों के बाद पहले सत्र में तथा प्रति वर्ष पहले सत्र में।

अनुच्छेद 88 –

- मंत्री व महान्यायवादी दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकते है तथा संसदीय समितियों की कार्यवाही में भी भाग ले सकते है; जिनमें वे सदस्य के रूप में नामित है लेकिन इस आधार पर उन्हें मतदान करने का अधिकार नहीं है।
- महान्यायवादी संसदीय समिति का सदस्य बन सकता है।

लोक सभा अध्यक्ष

- भारत सरकार अधिनियम 1919 के द्वारा भारत में लोक सभा अध्यक्ष का पद सृजित किया गया।
- 1921 ई. में फ्रेडरिक व्हाइट पहले लोक सभा अध्यक्ष बने। सच्चिदानंद सिन्हा उपाध्यक्ष बने।
- 1925 ई. में विठ्ठलभाई पटेल प्रथम निर्वाचित भारतीय अध्यक्ष बने।
- आजादी के बाद जी. वी. मावलंकर पहले लोक सभा अध्यक्ष बने।
- बलराम जाखड़ सर्वाधिक कार्यकाल (9साल, 330दिन) वाले अध्यक्ष थे।
- मीरा कुमारी (2009–2014) पहली महिला लोकसभा अध्यक्ष रही।
- वर्तमान लोकसभा अध्यक्ष ओम बिड़ला है।

अध्यक्ष का निर्वाचन

- लोक सभा सदस्य अपने में से ही अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचन करते हैं।

अध्यक्ष का कार्यकाल

- लोक सभा के भंग होने पर अध्यक्ष का कार्यकाल समाप्त नहीं होता बल्कि अगली लोक सभा की पहली बैठक तक वह अपने पद पर बना रहता है।
- सभी सदस्यों तथा लोकसभा के उपाध्यक्ष का कार्यकाल लोकसभा भंग होने तक होता है।

अध्यक्ष को हटाने की प्रक्रिया

- हटाने का प्रस्ताव 14 दिन के नोटिस के बाद लोक सभा में पेश किया जाता है तथा यह प्रस्ताव लोकसभा में तत्कालीन सदस्यों के बहुमत (प्रभावी बहुमत) से पारित होना चाहिए।
- अध्यक्ष प्रस्ताव पर चर्चा के समय पीठासीन अधिकारी नहीं हो सकता लेकिन सदन की कार्यवाही में भाग ले सकता है । वह सामान्य मत दे सकता है लेकिन निर्णायक मत नहीं दे सकता।
- ब्रिटेन में स्पीकर निर्वाचित होने के बाद अपने दल से त्यागपत्र दे देता है।
- अध्यक्ष अपना त्यागपत्र उपाध्यक्ष को देता है।

अध्यक्ष की शक्तियाँ

- वह लोकसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
- वह लोक सभा के नियमों को लागू करवाना और अनुशासन बनाए रखना।
- यदि बराबर मत की स्थिति हो तो अध्यक्ष निर्णायक मत दे सकता है।
- कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसका निर्णय अध्यक्ष करता है एवं उसका निर्णय अंतिम होता है। इसे चुनौती नहीं दी जा सकती है।
- वह सदस्यों के दल–बदल पर निर्णय लेता है।
- अध्यक्ष सदस्यों के त्यागपत्र स्वीकार करता है।
- वह अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर संसदीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व करता है।
- वह लोकसभा की समितियों के अध्यक्ष की नियुक्ति करता है।

लोक सभा उपाध्यक्ष

- निर्वाचन एवं हटाने की प्रक्रिया – अध्यक्ष के समान
- कार्यकाल – लोक सभा भंग होने तक
- **कार्य** :– यह अध्यक्ष की अनुपस्थिति में लोकसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है, जब यह अध्यक्षता करता है तो इसके पास वही शक्तियाँ होती है जो लोकसभा अध्यक्ष के पास होती है।
- जब भी यह किसी संसदीय समिति का सदस्य बनता है तो यह उसका अध्यक्ष होता है।
- लोकसभा उपाध्यक्ष अपना त्यागपत्र अध्यक्ष को देता है।

10 सदस्यों का पैनल

- लोक सभा के सदस्य यह पैनल बनाते हैं ।
- लोकसभा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष दोनों की अनुपस्थिति में पैनल के सदस्य बैठकों की अध्यक्षता करते है।

❖ यदि अध्यक्ष व उपाध्यक्ष दोनों पद रिक्त हो तो राष्ट्रपति अस्थाई अध्यक्ष की नियुक्ति करता है।

सामयिक अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर)

- लोक सभा के आम चुनाव के बाद राष्ट्रपति इसके सदस्यों में से वरिष्ठतम सदस्य को प्रोटेम स्पीकर नियुक्त करता है (फ्रांसीसी परम्परा)।
- 17वीं लोक सभा (2019) – डॉ. वीरेन्द्र कुमार
- 16वीं लोक सभा (2014) – कमलनाथ

प्रोटेम स्पीकर के दो कार्य है–

(i) सभी सदस्यों को शपथ दिलवाना।
(ii) अध्यक्ष का निर्वाचन करवाना।

- प्रोटेम स्पीकर को शपथ राष्ट्रपति दिलाता है। (सदस्य के रूप में)
- अध्यक्ष के निर्वाचन के साथ ही प्रोटेम स्पीकर का पद स्वतः समाप्त हो जाता है।
- प्रोटेम स्पीकर को स्थायी अध्यक्ष के समान शक्तियाँ प्राप्त होती है।

राज्य सभा का सभापति

- उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होता है।
- शक्तियाँ– लोक सभा अध्यक्ष के समान
- अपवाद–
  - धन विधेयक संबंधी शक्ति
  - संयुक्त बैठक संबंधी शक्ति
  - संसदीय प्रतिनिधि दल के नेतृत्व संबंधी शक्ति।

राज्य सभा का उपसभापति

- निर्वाचन व हटाने की प्रक्रिया लोकसभा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के समान होती है।
- यह सभापति की अनुपस्थिति में राज्यसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
- जब यह बैठकों की अध्यक्षता करता है तो इसके पास वहीं शक्तियाँ होती है जो सभापति के पास होती है।

सदस्यों का पैनल

- राज्यसभा द्वारा यह पैनल तैयार किया जाता है।
- लोकसभा की भाँति पैनल में सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है।
- सभापति व उपसभापति की अनुपस्थिति में पैनल के सदस्य बैठकों की अध्यक्षता करते हैं।

❖ यदि सभापति व उपसभापति दोनों पद रिक्त हो तो राष्ट्रपति अस्थाई सभापति नियुक्त करता है।

अनुच्छेद 89 – सभापति– पदेन (उपराष्ट्रपति) उपसभापति – निर्वाचित

अनुच्छेद 90 – उपसभापति का कार्यकाल व हटाने की प्रक्रिया

अनुच्छेद 93 – अध्यक्ष – निर्वाचित उपाध्यक्ष – निर्वाचित

अनुच्छेद 94 – लोकसभा अध्यक्ष व उपाध्यक्षका कार्यकाल व हटाने की प्रक्रिया

राज्य सभा	लोक सभा
अनुच्छेद 89 : सभापति – पदेन (उपराष्ट्रपति) उपसभापति – निर्वाचित	**अनुच्छेद–93 :** अध्यक्ष – निर्वाचित उपाध्यक्ष – निर्वाचित
अनुच्छेद 90 : उपसभापति का कार्यकाल व हटाने की प्रक्रिया	**अनुच्छेद 94 :** लोकसभा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का कार्यकाल व हटाने की प्रक्रिया
अनुच्छेद 91 : सभापति की अनुपस्थिति में कार्य निर्वहन– 1. उपसभापति – 2. पैनल द्वारा • दोनों के पद रिक्त होने पर राष्ट्रपति द्वारा अस्थाई सभापति की नियुक्ति	**अनुच्छेद 95 :** अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसके कार्यों का निर्वहन– 1. उपाध्यक्ष – 2. पैनल द्वारा • दोनों के पद रिक्त होने पर राष्ट्रपति द्वारा अस्थाई अध्यक्ष की नियुक्ति
अनुच्छेद 92 : पद से हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन होने पर सभापति व उपसभापति का पीठासीन अधिकारी नहीं होना ।	**अनुच्छेद 96 :** पद से हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन होने पर अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का पीठासीन अधिकारी नहीं होना ।

सदन का नेता

- इसका उल्लेख संविधान में नहीं किया गया है तथा संसद के नियम में उल्लेख किया गया है।
- प्रधानमंत्री जिस सदन का सदस्य होता है वह उस सदन का नेता होता है।
- दूसरे सदन में प्रधानमंत्री किसी मंत्री को सदन का नेता घोषित करता है।

विपक्ष का नेता

- 1969 में यह पद सृजित किया गया।
- 1977 में इस पद को वैधानिक दर्जा दिया गया जिसके तहत इसे कैबिनेट मंत्री के समकक्ष दर्जा दिया गया अर्थात् इसे कैबिनेट मंत्री के बराबर भत्ते व सुविधाएं दी जाती है।
- विपक्षी दल का दर्जा प्राप्त करने के लिए सदन में कम से कम 10 प्रतिशत सीटें होना आवश्यक है। (2014 से लोक सभा में विपक्ष का नेता पद किसी राजनीतिक दल के पास नहीं है)

सचेतक (व्हिप)

- इसका उल्लेख न तो भारत के संविधान में न ही सदन के नियमों में किया गया है। यह संसदीय सरकार की परम्पराओं पर आधारित होता है।
- प्रत्येक राजनीतिक दल सदन में अपना एक व्हिप नियुक्त करता है। यह उस सदन के सदस्यों के व्यवहार को नियन्त्रित करता है। दल के सदस्यों को सदन में व्हिप के निर्देशों का पालन करना होता है।
- यदि कोई सदस्य व्हिप के निर्देशों का पालन नहीं करता तथा राजनीतिक दल 15 दिन में उसे क्षमा नहीं करता है तो सदस्य को दल–बदल का दोषी माना जाता है।
- गुप्त मतदान में व्हिप जारी नहीं किया जाता है। (राष्ट्रपति चुनाव, उपराष्ट्रपति चुनाव)
- लोकसभा में सरकारी दल का मुख्य सचेतक संसदीय कार्यमंत्री होता है।

छाया मंत्रिमंडल/शैडो कैबिनेट

- यह ब्रिटेन की परम्परा है।
- ब्रिटेन में विपक्षी दलों के द्वारा छाया कैबिनेट की घोषणा की जाती है, ताकि जनता वास्तविक कैबिनेट और शैडो कैबिनेट के बीच तुलना कर सके।
- सरकार पर नैतिक दबाव उत्पन्न करने के लिए छाया मंत्रिमंडल बनाया जाता है।

किचन कैबिनेट

- प्रधानमन्त्री तथा उसके मुख्य सलाहकार किचन कैबिनेट कहलाते है।
- यह एक अनौपचारिक शब्द है जो प्रायः मीडिया द्वारा प्रयोग में लिया जाता है।
- गैर–मंत्री भी इसके सदस्य हो सकते है।

त्रिशंकु संसद

- यदि आम चुनावों में किसी भी दल या गठबंधन को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता है तो इसे त्रिशंकु संसद कहते है।

लेम डक सेशन

- अगली लोकसभा के चुनाव के बाद निवर्तमान लोकसभा का जो सत्र बुलाया जाता है उसे लेम–डक सेशन कहते है। क्योंकि वे सदस्य जो नयी लोकसभा का चुनाव हार चुके हैं वे लेम–डक कहलाते हैं।

अनुच्छेद 97

- लोक सभा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष, सभापति, उपसभापति के वेतन तथा भत्ते।

अनुच्छेद 98

- राज्य सभा तथा लोक सभा के पृथक–पृथक सचिवालय होंगे।
- दोनों सदनों के सचिवालय का मुखिया महासचिव होता है। वह स्थायी अधिकारी होता है और उसकी नियुक्ति सदन का पीठासीन अधिकारी करता है।

अनुच्छेद 99

- सांसदों को शपथ लेना आवश्यक है। ये राष्ट्रपति के प्रतिनिधि (प्रोटेम स्पीकर) के समक्ष अनुसूची–III के प्रारूप के अनुसार शपथ लेंगे।

अनुच्छेद 100 – गणपूर्ति (कोरम)

- संविधान के प्रावधान अनुसार गणपूर्ति हेतु 10 प्रतिशत सदस्य होने चाहिए।
- लोक सभा व राज्य सभा के नियमानुसार गणपूर्ति हेतु एक तिहाई सदस्य होने चाहिए।

अनुच्छेद 101 – स्थानों का रिक्त होना

- यदि कोई लोकसभा व राज्यसभा दोनों के लिए निर्वाचित होता है तो 10 दिन के भीतर उसे एक स्थान रिक्त करना होगा अन्यथा उसकी राज्यसभा की सदस्यता समाप्त हो जाएगी।
- यदि कोई व्यक्ति पहले से किसी सदन का सदस्य है तथा बाद में दूसरे सदन के लिए निर्वाचित होता है तो पहले वाले सदन की उसकी सदस्यता स्वतः समाप्त हो जाएगी।
- यदि कोई व्यक्ति लोकसभा की दो सीटों से निर्वाचित होता है तो 14 दिन के भीतर उसे एक स्थान रिक्त करना होगा अन्यथा उसके दोनों स्थान रिक्त हो जाएंगे।
- यदि कोई व्यक्ति संसद (लोकसभा) व राज्य विधानसभा दोनों के लिए निर्वाचित होता है तो उसे 14 दिन के भीतर राज्य विधानमण्डल के स्थान को रिक्त करना होगा अन्यथा उसकी संसद की सदस्यता स्वतः समाप्त हो जाएगी।
- यदि कोई सांसद राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचित हो जाता है तो उसकी संसद सदस्यता समाप्त हो जाएगी।
- यदि कोई सांसद राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया जाता है तो उसकी संसद की सदस्यता समाप्त हो जाएगी।
- यदि न्यायालय किसी सदस्य के चुनाव को रद्द घोषित कर दे तो सदस्य की संसद सदस्यता समाप्त हो जाएगी।
- यदि कोई सदस्य सदन की अनुमति के बिना लगातार 60 दिनों तक सदन से अनुपस्थित रहे तो उसकी संसद सदस्यता समाप्त हो जाएगी।
- यदि कोई सांसद अध्यक्ष या सभापति को अपना त्यागपत्र दे दे तो उसकी संसद सदस्यता समाप्त हो जाएगी।

अनुच्छेद 102 – सांसदों की अयोग्यताएँ

- यदि कोई सांसद भारत का नागरिक ना रहे।
- यदि वह भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अधीन कोई लाभ का पद ग्रहण कर ले।
- यदि कोई व्यक्ति दिवालिया घोषित हो चुका हो।
- यदि न्यायालय ने उसे विकृतचित घोषित किया हो।
- संसद द्वारा निर्धारित अन्य अयोग्यताएँ–

  जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में निर्धारित अन्य निरर्हताएँ–

  - उसे चुनावी अपराध या चुनाव में भ्रष्ट आचरण के तहत दोषी ठहराया गया हो ।
  - उसे किसी अपराध में 2 वर्ष या उससे अधिक की सजा हुई हो। किन्तु निवारक निरोध विधि के तहत किसी व्यक्ति का बंदीकरण निरर्हता नहीं है।
  - वह निर्धारित समय के अंदर चुनावी खर्च का ब्यौरा देने में विफल रहा हो।
  - उसे सरकारी ठेका, कार्य या सेवाओं में कोई रूचि हो।
  - वह निगम में लाभ के पद या निदेशक या प्रबंध निदेशक के पद पर हो जिसमें सरकार का हिस्सा 25% से कम ना हो ।
  - उसे भ्रष्टाचार या निष्ठाहीन होने के कारण सरकारी सेवा से बर्खास्त किया हो।
  - उसे विभिन्न समूहों में शत्रुता बढाने या रिश्वतखोरी के लिए दण्डित किया गया हो।
  - उसे छुआछूत, दहेज व सती जैसे सामाजिक अपराधों का प्रसार करने व इनमें संलिप्त पाया गया हो।

  दल–बदल के आधार पर निर्हरता– इसका उल्लेख संविधान के 10वीं अनुसूची में किया गया है।

अनुच्छेद 103

- राष्ट्रपति चुनाव आयोग की सलाह पर सांसदों की अयोग्यता का निर्णय करता है।
- चुनाव आयोग द्वारा दी गई सलाह राष्ट्रपति पर बाध्यकारी होती है।

अनुच्छेद 104

- 500 रू जुर्माना प्रतिदिन (यदि कोई व्यक्ति संसद का सदस्य नहीं हैं तथा संसद की कार्यवाही में भाग लेता है)

अनुच्छेद 105 – सांसदों, संसदीय समितियों, सदन के विशेषाधिकार

संसदीय विशेषाधिकारों के स्रोत–

1. संवैधानिक प्रावधान
2. संसदीय नियम
3. संसदीय परम्परा
4. न्यायिक निर्णय

सामूहिक विशेषाधिकार :– संसद के दोनों सदनों के संबंध में

1. सदन को अपनी कार्यवाही, रिपोर्ट, वाद–विवाद को प्रकाशित करने तथा अन्यों को इसे प्रकाशित करने से रोकने का अधिकार है।

✓ 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 ने सदन की पूर्व अनुमति के बिना संसद की कार्यवाही की सारतः सही रिपोर्ट के प्रकाशन की प्रेस की स्वतन्त्रता को पुनर्स्थापित किया किन्तु यह सदन की गुप्त बैठक के मामले में लागू नहीं है। अनुच्छेद 361(घ)

2. यह अपनी कार्यवाही से अतिथियों को बाहर कर सकती है तथा कुछ आवश्यक मामलों पर विचार विमर्श हेतु गुप्त बैठक कर सकती है।
3. संसद अपनी कार्यवाही के संचालन, कार्य के प्रबंधन तथा इन मामलों में निर्णय हेतु नियम बना सकती है।
4. यह सदस्यों के साथ–साथ बाहरी लोगों को इसके विशेषाधिकारों के हनन या सदन की अवमानना करने पर निंदित, चेतावनी या कारावास द्वारा दण्ड़ दे सकती है। (सदस्यों के मामलों में बर्खास्तगी या निष्कासन भी)
5. इसे किसी सदस्य की बंदी, निरुद्ध, अपराध सिद्धि, कारावास या मुक्ति संबंधी, तात्कालिक सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।
6. यह जाँच कर सकती है तथा गवाह की उपस्थिति व संबंधित पेपर और रिकॉर्ड के लिए आदेश दे सकती है।
7. सदन परिसर में पीठासीन अधिकारी की अनुमति के बिना कोई व्यक्ति (सदस्य या बाहरी) बंदी नहीं बनाया जा सकता है और ना ही कोई कानूनी कार्यवाही (सिविल या आपराधिक) की जा सकती है।
8. न्यायालय सदन व इसकी कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।

व्यक्तिगत विशेषाधिकार (सांसदों के)

1. उन्हें संसद सत्र के दौरान, सत्र से 40 दिन पूर्व तथा सत्र के 40 दिन बाद तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता (केवल सिविल मामलों में)
2. उन्हें संसद में भाषण देने की स्वतंत्रता है जो किसी न्यायालय में वाद योग्य नहीं है। कोई सदस्य संसद या इसकी किसी समिति में दिए गए वक्तव्य या मत के लिए किसी भी न्यायालय की किसी भी कार्यवाही के लिए उत्तरदायी नहीं है।
3. वे न्याय निर्णयन सेवा से मुक्त है। संसद के सत्र के समय सदस्य न्यायालय में लंबित मुकदमे में प्रमाण प्रस्तुत करने या उपस्थित होने के लिए मना कर सकते है।

अनुच्छेद 106 – संसद सदस्यों के वेतन–भत्ते

- सांसदों के वेतन–भत्ते, संसद द्वारा निर्धारित किए जाएंगे ।
- संविधान में सांसदों की पेंशन का उल्लेख नहीं किया गया है। (संसद द्वारा निर्धारित)
- संसद ने वर्ष 2018 में सदस्यों का वेतन 50,000 से बढ़ाकर 1 लाख कर दिया तथा पेंशन को 20 हजार से बढ़ाकर 25 हजार कर दिया।

अनुच्छेद 107 – 'विधेयक की पुरःस्थापना एवं पारित होने संबंधी उपबंध'

- **साधारण विधेयक दो प्रकार के होते हैं–**
  1. **सरकारी विधेयक** – मंत्री द्वारा पेश किया जाने वाला विधेयक।
  2. **निजी विधेयक** – सांसद जो मंत्री ना हो, के द्वारा पेश किया जाने वाला विधेयक।

प्रक्रिया – विधेयक प्रस्तुत करने के संदर्भ में

- किसी भी सदन में
- सरकारी या निजी दोनो प्रकार
- राष्ट्रपति की पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं
- विधेयक को तीन चरणों में पारित किया जाता है –

प्रथम चरण–

- इसमें विधेयक का सामान्य परिचय दिया जाता है।
- इस समय विधेयक पर चर्चा नहीं होती है और ना ही संशोधन होता है।
- ❖ यदि विधेयक गजट में प्रकाशित हो चुका है इसे ही प्रथम पाठन मान लिया जाता है। (गजटः सरकारी समाचार पत्र)

द्वितीय चरण–

इस वाचन में तीन उप–चरण होते हैं–

1. सामान्य चर्चा

- विधेयक पर तत्काल चर्चा की जाए या चर्चा हेतु कोई अन्य दिन निर्धारित किया जाए।
- विधेयक प्रवर समिति को सौंपा जाए।
- विधेयक संयुक्त समिति के सौंपा जाए।
- जनता की राय जानने के लिए समाचार पत्रों में प्रकाशित करवाया जाए।

2. समिति स्तर

- विधेयक को खण्डों में विभाजित करती है।
- समिति प्रत्येक खण्ड पर विस्तार से चर्चा करती है तथा यथावश्यक संशोधन करती है।

3. विचार विमर्श स्तर

- सदन प्रत्येक खण्ड पर विस्तार से चर्चा करता है।
- सदन यथावश्यक संशोधन करता है।
- प्रत्येक भाग को सदन मतदान द्वारा पारित करता है।

तृतीय चरण–

- इसमें समग्र विधेयक पर चर्चा की जाती है। (विधेयक के पक्ष–विपक्ष में)
- अब विधेयक में संशोधन नहीं किया जा सकता लेकिन व्याकरण की अशुद्धियाँ दूर की जा सकती हैं।
- मतदान कर विधेयक को पारित किया जाता है।
- पहले सदन में पारित होने के बाद विधेयक को दूसरे सदन में भेजा जाता है।
- दूसरे सदन में भी यही प्रक्रिया अपनाई जाती है।
- दूसरा सदन अधिकतम 6 माह तक किसी विधेयक को रोक सकता है।
- यदि दूसरा सदन विधेयक को संशोधित रूप में पारित करता है, तो विधेयक को पुनः पहले सदन में भेजा जाता है।
- दोनों सदनों के द्वारा विधेयक एक ही रूप में पारित होना चाहिए।
- दोनों सदनों में पारित होने के बाद विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु भेजा जाता है।

अनुच्छेद 108 – संयुक्त बैठक

यदि एक सदन (संसद का) विधेयक को पारित कर दे व दूसरा सदन विधेयक को पारित ना करे अर्थात दोनों सदनों में टकराव की स्थिति हो तो राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है।

- संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करता है।

लोकसभा अध्यक्ष की अनुपस्थिति में–

1. लोकसभा उपाध्यक्ष (अनुपस्थित हो तो)
2. राज्यसभा उपसभापति (अनुपस्थित हो)
3. सदस्य स्वयं में से किसी को अध्यक्षता हेतु चुनते है।

- संयुक्त बैठक में लोकसभा के नियमों व प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है।
- केवल साधारण विधेयक व वित्त विधेयक के मामलों में ही संयुक्त बैठक बुलाई जा सकती है।
- धन विधेयक तथा संविधान संशोधन विधेयक के संबंध में संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं है।

अभी तक तीन बार संयुक्त बैठक बुलाई गई है–

1. 1962 ई. – दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961
2. 1978 ई. – बैंक सेवा आयोग (समाप्ति) अधिनियम,1977
3. 2002 ई. – आतंकवाद निवारक अधिनियम, 2002

अनुच्छेद 110 – धन विधेयक की परिभाषा

1. किसी कर का अधिरोपण, उत्सादन, परिवर्तन, परिहार या विनियमन।
2. ऋण– केन्द्र सरकार द्वारा उधार लिए गए धन का विनिमय ।
3. भारत की संचित निधि या आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा ऐसी किसी निधि में धन जमा करना या उसमें से धन निकालना।
4. भारत की संचित निधि से धन का विनियोग ।
5. भारत की संचित निधि पर किसी व्यय को भारित घोषित करना या इस प्रकार के किसी व्यय की राशि में वृद्धि।
6. भारत की संचित निधि या लोक लेखा में किसी प्रकार के धन की प्राप्ति या अभिरक्षा या व्यय अथवा इनका केन्द्र या राज्य की निधियों का लेखा परीक्षण।
7. उपर्युक्त से संबंधित अन्य कोई प्रावधान।

❖ यदि किसी विधेयक में उपर्युक्त में से कोई प्रावधान हो तथा इसमें अन्य कोई प्रावधान न हो तो इसे धन विधेयक कहते है।

अनुच्छेद 109 – धन विधेयक की प्रक्रिया

1. धन विधेयक राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से पेश किया जाता है।
2. धन विधेयक को केवल लोकसभा में पेश किया जा सकता है।
3. कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं इसका निर्णय लोकसभा अध्यक्ष करता है तथा उसका निर्णय अंतिम होता है।
4. राज्यसभा धन विधेयक को नकार या संशोधित नहीं कर सकती । वह केवल इसे अधिकतम 14 दिनों के लिए रोक सकती है।
5. राज्यसभा धन विधेयक पर सुझाव दे सकती है किन्तु लोकसभा किसी या सभी सुझावों को नकार सकती है (बाध्यकारी नहीं है)।
6. राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार हेतु नहीं लौटा सकता।
7. धन विधेयक सरकारी विधेयक होता है।

वित्त विधेयक

अनुच्छेद 110	अनुच्छेद 117(1)	अनुच्छेद 117(3)
• यदि किसी विधेयक में केवल अनुच्छेद 110 के प्रावधान हो, इसके अतिरिक्त कोई अन्य प्रावधान ना हो (धन विधेयक)	• यदि किसी विधेयक में अनुच्छेद 110 के प्रावधानों के साथ–साथ अन्य प्रावधान भी हो।	• यदि किसी विधेयक में अनुच्छेद 110 का कोई प्रावधान नहीं हो किन्तु संचित निधि से संबंधित अन्य कोई प्रावधान हो।
• यह राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से पेश किया जा सकता है।	• यह राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से पेश किया जाता है।	• इसे राष्ट्रपति की पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं होती है।
• इसे केवल लोकसभा में पेश किया जा सकता है।	• इसे केवल लोकसभा में पेश किया जा सकता है।	• इसे किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।
• लोक सभा अध्यक्ष इसे प्रमाणित करता है– ▪ राज्य सभा में भेजते समय ▪ राष्ट्रपति के पास भेजते समय	• इसके बाद यह साधारण विधेयक की तरह पारित किया जाता है।	• किन्तु राष्ट्रपति की अनुशंसा के बाद सदन इस पर चर्चा कर सकता है।
• राष्ट्रपति इसे पुनर्विचार के लिए नहीं लौटा सकता है।	• राष्ट्रपति इसे पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है।	

सभी धन विधेयक वित्त विधेयक होते है किन्तु सभी वित्त विधेयक धन विधेयक नहीं होते है।

अनुच्छेद 111 – विधेयक पर राष्ट्रपति की सहमति

- कोई विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है तो उसके पास तीन विकल्प होते है–
  1. सहमति देना
  2. सहमति रोकना
  3. पुनर्विचार के लिए वापस भेजना (धन विधेयक के अलावा)

अनुच्छेद 112 – 'वार्षिक वित्तीय विवरण' (बजट)

यद्यपि संविधान में 'बजट' शब्द का उल्लेख नहीं है।

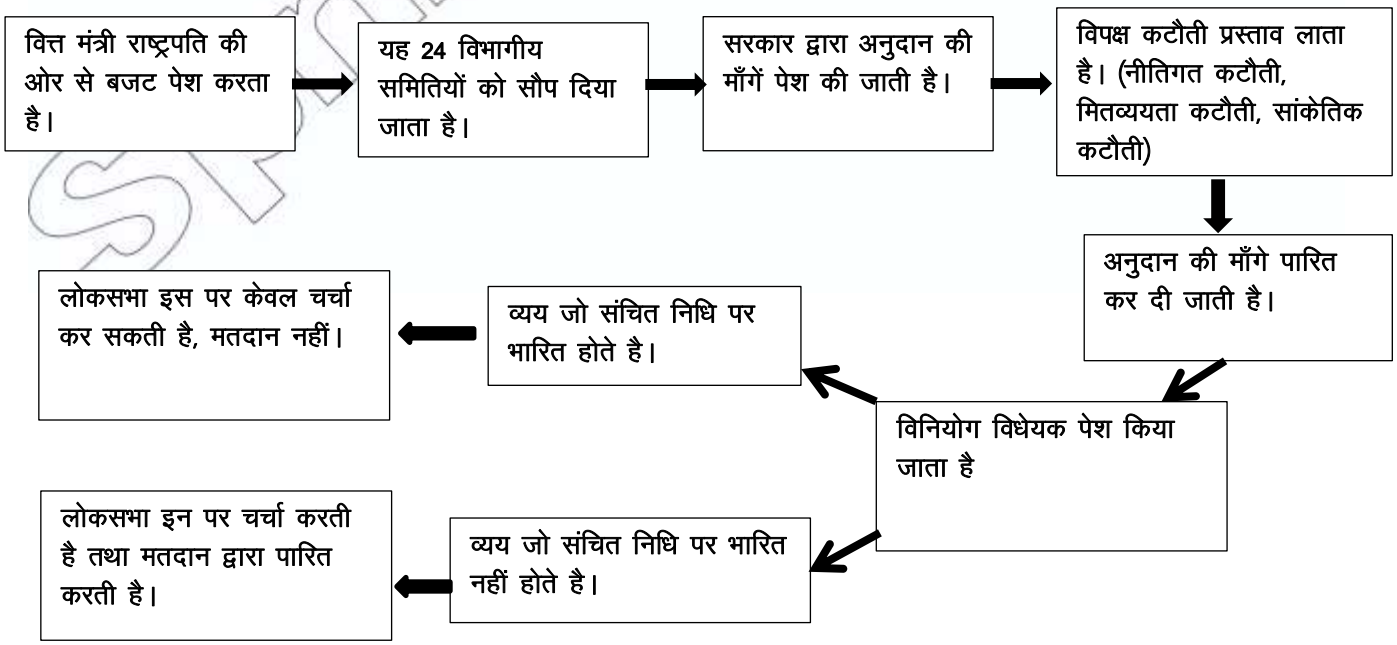

अनुच्छेद 113 – अनुदान की माँगें

कटौती प्रस्ताव

नीतिगत कटौती प्रस्ताव

- यह सरकार द्वारा माँग की गई सम्पूर्ण नीति के प्रति असहमति को दर्शाता है तथा अनुदान की माँग को कम करके एक रूपये कर दिया जाता है। सदस्य वैकल्पिक नीति भी पेश कर सकते हैं ।

मित्तव्ययता कटौती प्रस्ताव

- इसमें बजट के फिजूलखर्चों को उजागर किया जाता है तथा मितव्ययता पर बल दिया जाता है। इसमें कटौती की राशि निश्चित नहीं है। यह विपक्ष निर्धारित करता है।

सांकेतिक कटौती प्रस्ताव

- इसमें सरकार की किसी योजना विशेष की आलोचना की जाती है तथा उसमें 100 रूपये की कटौती का प्रस्ताव रखा जाता है।
- कटौती प्रस्ताव केवल लोक सभा में पेश किए जाते हैं।
- कटौती प्रस्ताव के कारण बजट पर विस्तार से चर्चा हो जाती है।
- यदि कटौती प्रस्ताव पारित हो जाता है तो सरकार को त्यागपत्र देना होता है लेकिन यह पारित होता नहीं है क्योंकि लोक सभा में मंत्रिपरिषद का बहुमत होता है।
- **संचित निधि पर भारित व्यय –**
  1. दूसरी अनुसूची में दिए गए वेतन
  2. उच्चतम न्यायालय के सभी व्यय
  3. संघ लोक सेवा आयोग के सभी व्यय
  4. भारत सरकार के ऋण
  5. संसद द्वारा विहित कोई अन्य व्यय

अनुच्छेद 114 – विनियोग विधेयक :– अनुदान की माँगों पर मतदान होने और लोकसभा द्वारा पारित होने के बाद, भारत की निधि से विनियोग के लिए एक विनियोग विधेयक पूरःस्थापित किया जाता है।

निधियां –

1. **भारत की संचित निधि (अनुच्छेद 266)** – इस निधि में से किसी भी धन को संसदीय विधि के बिना विनियोजित नहीं किया जा सकता है।
2. **भारत का लोक लेखा (अनुच्छेद 266)** – इसमें भविष्य निधि जमा, न्यायिक जमा, बचत, बैंक जमा आदि शामिल है। इस लेखे को कार्यकारी प्रक्रिया द्वारा नियन्त्रित किया जाता है अर्थात इस खाते से भुगतान संसदीय विनियोजन के बिना किया जा सकता है।
3. **भारत की आकस्मिकता निधि (अनुच्छेद 267)** – संविधान संसद को 'भारत की आकस्मिक निधि' के गठन की अनुमति देता है। यह निधि राष्ट्रपति के अधिकार में रहती है, राष्ट्रपति की ओर से इस निधि को वित्त सचिव द्वारा रखा जाता है। भारत के लोक लेखा की तरह इसे कार्यकारी प्रक्रिया से संचालित किया जाता है।

अनुच्छेद 115

1. **अनुपूरक अनुदान :–** यदि किसी सेवा के लिए बजट में आंवटित राशि अपर्याप्त हो अर्थात उस सेवा के लिए धन कम पड़ जाए तो अधिक धन प्राप्त करने के लिए अनुपूरक अनुदान पेश किया जाता है।
2. **अतिरिक्त अनुदान :–** कोई नई सेवा जिसका बज़ट में उल्लेख नहीं था किन्तु उसी वित्त वर्ष में सरकार को उसके लिए धन की आवश्यकता हो तो अतिरिक्त अनुदान पेश किया जाता है।
3. **अधिक अनुदान –**

- यदि किसी वित्त वर्ष के दौरान सरकार किसी सेवा पर बजट में आवंटित की गई धनराशि से अधिक व्यय करती है तो अगले वित्त वर्ष में अधिक अनुदान पेश किया जाता है।
- इसे पेश करने हेतु राष्ट्रपति के साथ लोक लेखा समिति की पूर्वानुमति की भी आवश्यकता होती है।
- सभी अनुदान की माँगें राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से पेश की जाती है।

अनुच्छेद 116

लेखानुदान

- बजट की प्रक्रिया मई माह तक पूरी होती है जबकि नया वित्त वर्ष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होता है तो इस अवधि (अप्रैल+मई) के खर्चों को पूरा करने के लिए लेखानुदान पेश किया जाता है।

प्रत्ययानुदान

- यदि सरकार को आकस्मिक रूप से धन की आवश्यकता होती है तो आवश्यकताओं के कारणों का उल्लेख किए बिना यह अनुदान पेश किया जाता है। (राष्ट्रपति की पूर्वानुमति)

अपवादानुदान

- ऐसी कोई सेवा जिसका वजह में प्राबधान नहीं है और सरकार को धन की आवश्यकता होती है या सरकार की किसी अपवादस्वरूप आवश्यकता के लिए यह अनुदान पेश किया जाता है (इस हेतु राष्ट्रपति की पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं होती है।)

अंतरिम बजट

- यदि सरकार का कार्यकाल कम बचा है तो इस स्थिति में अंतरिम बजट पेश किया जाता है ताकि मुख्य बजट अगली निर्वाचित सरकार पेश कर सके।
- इसका संविधान में उल्लेख नहीं है।

सांकेतिक अनुदान

- यह अनुदान किसी नई सेवा के लिए प्रस्तावित व्यय की मांग है जिसे एक सेवा के धन को पुनर्वियोजन द्वारा नई सेवा में स्थानान्तरित कर उपलब्ध करवाया जाता है।
- इसमें किसी नए धन की मांग नहीं की जाती है।
- सांकेतिक अनुदान (1रू.) की मांग को लोक सभा के समक्ष रखा जाता है और सदन की अनुमति मिलने पर धन उपलब्ध करवाया जाता है।

अनुच्छेद 118 –

- संसद अपने कार्यों के सुचारू संचालन के लिए स्वयं नियम बना सकती है।

प्रश्नकाल

- 11–12 बजे तक
- सदस्य मंत्रियों से प्रश्न पूछते हैं।

प्रश्नों के प्रकार – 3 प्रकार

1. तारांकित प्रश्न

- प्रश्न जिनके उत्तर मौखिक रूप से दिए जाते हैं।
- इसमें अनुपूरक प्रश्न पूछे जा सकते है।

प्रतिदिन –

- लोकसभा में – 20 प्रश्न
- राज्यसभा में– 15 प्रश्न

2. अतारांकित प्रश्न

- प्रश्न जिनका उत्तर लिखित रूप में दिया जाता है।
- इसमें अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछे जा सकते है।

प्रतिदिन

- लोकसभा में – 230 प्रश्न
- राज्य सभा में – 160 प्रश्न
- एक सांसद एक दिन में अधिकतम 5 प्रश्न पूछ सकता है।

3. अल्पसूचना प्रश्न

- यदि कोई प्रश्न 10 दिन से कम समय के नोटिस पर पूछा जाता है।
- अत्यावश्यक मामलों में यह प्रश्न पूछा जाता है।
- मंत्री की सहमति के बाद इस प्रकार के प्रश्न स्वीकार किए जाते हैं।
  लोकसभा में – 1 प्रश्न
  राज्यसभा में – 1 प्रश्न

शून्यकाल

- 12–1 बजे तक
- संसद सदस्य बिना पूर्व सूचना के मामले उठा सकते हैं।
- भारतीय नवाचार – 1962 से ।

लंच 1–2 बजे तक होता है।

शाम की कार्यवाही – 2 बजे से अंत तक

- इस समय विभिन्न विधेयकों व प्रस्तावों पर चर्चा होती है।

राज्यसभा में प्रश्नकाल व शून्यकाल की अवधि लोकसभा के विपरीत होती है अर्थात 11–12 बजे तक शून्यकाल तथा 12 बजे से प्रश्नकाल होता है।

महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव

1. विश्वास प्रस्ताव –

- लोकसभा में सत्ता पक्ष के द्वारा अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए यह प्रस्ताव पेश किया जाता है।
- यदि यह पारित नहीं होता है तो मंत्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पडता है।
- सामान्यतया गठबंधन की सरकार में इसकी आवश्यकता पडती है।

2. अविश्वास प्रस्ताव –

- यह लोकसभा में विपक्ष के द्वारा लाया जाता है।
- इस पर 50 सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए।
- इसमें अविश्वास का कारण बताने की आवश्यकता नहीं होती है।
- यह किसी मंत्री विशेष के विरूद्ध नहीं लाया जा सकता है वरन् यह समस्त मंत्रिपरिषद के विरूद्ध ही लाया जाता है।
- यदि यह पारित हो जाता है तो मंत्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पडता है।

3. निंदा प्रस्ताव–

- चूँकि मंत्रिपरिषद केवल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है इसलिए लोकसभा ही मंत्रिपरिषद की निंदा कर सकती है अतः निंदा प्रस्ताव केवल लोकसभा में लाया जाता है।
- इस पर 50 सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए।
- इसमें निंदा का कारण बताना आवश्यक है।
- यह किसी मंत्री विशेष या मंत्रियों के समूह या समस्त मंत्रिपरिषद के विरूद्ध भी लाया जा सकता है।
- यदि यह पारित हो जाता है तो मंत्रिपरिषद को त्यागपत्र नहीं देना पड़ता है।

4. स्थगन प्रस्ताव–

- यदि कोई बडी दुर्घटना घटित हो जाती है तो तत्काल उस पर चर्चा करने के लिए सदन की नियमित कार्यवाही को स्थगित करने के लिए यह प्रस्ताव लाया जाता है।
- इस प्रस्ताव में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए–
  1. प्रस्ताव किसी एक ही विषय से संबंधित हो।
  2. कोई तात्कालिक विषय जिस पर तुरंत चर्चा ज़रूरी हो
  3. विषय स्पष्ट व तथ्यपरक हो।
  4. जनहित से जुडा विषय हो।
- चूँकि स्थगन प्रस्ताव में सरकार की निंदा का अंश होता है इसलिए इसे केवल लोकसभा में ही लाया जा सकता है।
- इस पर 50 सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए।

5. ध्यानाकर्षण प्रस्ताव –

- यदि कोई बडी दुर्घटना घटित होती है तो उस पर सदन एवं मंत्री का ध्यान आकर्षित करने के लिए यह प्रस्ताव लाया जाता है।
- एक दिन में 2 ध्यानाकर्षण प्रस्ताव लाए जा सकते है।
- एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव में अधिकतम 5 सदस्यों के नाम हो सकते है।
- इसमें मंत्री केवल वक्तव्य देता है।
- इसमें चर्चा का प्रावधान नहीं है तथा मतदान भी नहीं होता है।
- यह भारतीय नवाचार है, 1954 से प्रारम्भ हुआ।
- सदन की प्रक्रिया के नियमों में इसका उल्लेख है।
- इसमें सरकार की निंदा नहीं होती है इसलिए इसे दोनों सदनों में पेश किया जा सकता है।

6. अल्पकालीन चर्चा –

- 1953 से यह प्रारम्भ हुई।
- इसके तहत लोक महत्व के किसी विषय को उठाया जाता है।
- इस पर दो अतिरिक्त सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए।
- इसके लिए कार्यमंत्रणा समिति (Business Advisory Committee) की सहमति आवश्यक होती है।
- इसमें चर्चा का समय (लोकसभा में 2घण्टे, राज्यसभा में 2:30 घण्टे) निश्चित है इसलिए इसे अल्पकालीन चर्चा कहा जाता है।

नियम 377

- 1966 ई. में प्रारम्भ
- यह लोकसभा का नियम है।
- इसके तहत लोक महत्व के वे विषय जिन्हें प्रश्नकाल, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव व अल्पकालीन चर्चा के दौरान नहीं उठाया गया है, उन्हें इस नियम के तहत उठाया जा सकता है।
- इसमें चर्चा के दौरान मंत्री का उपस्थित होना आवश्यक नहीं है तथा उसके द्वारा वक्तव्य देना भी आवश्यक नहीं है।
- इसमें प्रतिदिन 20 प्रश्नों (विषयों) को उठाया जा सकता है।

समाप्ति प्रस्ताव

- यह संसद में चर्चा को समाप्त करने के लिए लाया जाता है।

I. सामान्य समाप्ति

- यदि किसी विधेयक पर चर्चा पूरी हो जाती है अर्थात चर्चा के बिन्दुओं का दोहराव होने लगता है तो सामान्य समाप्ति द्वारा चर्चा को समाप्त कर दिया जाता है।

II. कंगारू समाप्ति

- यदि सदन के पास समयाभाव है और विधेयक के सभी बिन्दुओं पर चर्चा संभव नहीं है तो इस स्थिति में अध्यक्ष सर्वदलीय बैठक बुलाता है और उसमें कंगारू समाप्ति के लिए सहमति बनाता है। इसमें विधेयक के केवल महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा की जाती है और उसके बाद चर्चा समाप्त कर दी जाती है।

III. गिलोटिन समाप्ति

- यदि सदन के पास समयाभाव है जिससे की सदन के सभी बिन्दुओं पर चर्चा संभव नहीं है तो इस स्थिति में पहले से ही चर्चा का समय निश्चित कर दिया जाता है। और समय पूरा होने पर चर्चा को समाप्त कर दिया जाता है।

लोकसभा के भंग होने पर किसी विधेयक पर प्रभाव

- यदि विधेयक लोकसभा के सम्पर्क में आया हुआ है तो वह लोकसभा के भंग होने पर समाप्त हो जाएगा।
- यदि कोई विधेयक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति के सम्पर्क में आया हुआ है तो वह समाप्त नहीं होगा।

यथा–

- यदि कोई विधेयक लोकसभा में पेश किया गया है और लोकसभा में विचाराधीन है तो लोकसभा के भंग होने के साथ ही विधेयक समाप्त हो जाएगा।

- यदि विधेयक लोकसभा से पारित हो गया है और राज्यसभा में विचाराधीन है तो लोकसभा के भंग होने के साथ विधेयक समाप्त हो जाएगा।
- राज्यसभा द्वारा पारित विधेयक यदि लोकसभा में विचाराधीन है तो लोकसभा के भंग होने पर विधेयक समाप्त हो जाएगा।
- यदि कोई विधेयक राज्यसभा में पेश किया गया है और उस पर अभी विचार चल रहा है तो लोकसभा के भंग होने पर विधेयक समाप्त नही होगा।
- यदि विधेयक राज्यसभा में पेश किया गया था और पारित कर दिया गया है किन्तु अभी लोकसभा में नहीं भेजा गया है तो विधेयक समाप्त नहीं होगा।
- विधेयक यदि राष्ट्रपति के पास विचाराधीन है या पुनर्विचार हेतु वापस लौटाया गया है या विधेयक पर संयुक्त बैठक बुलाई जा चुकी है तो विधेयक समाप्त नहीं होगा।

Springboard ACADEMY

महत्वपूर्ण तथ्य

राष्ट्रपति –

- प्रथम राष्ट्रपति – डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (सर्वाधिक कार्यकाल – 1950–1962)
- डॉ. जाकिर हुसैन – (1967–69) (पद पर रहते हुए मृत्यु)
- वी.वी.गिरी (न्यूनतम मत)
- एम. हिदायतुल्ला (पहले कार्यवाहक राष्ट्रपति जो उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे।)
- फखरूद्दीन अली अहमद (राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान) (1974–1977), पद पर रहते हुए मृत्यु
- नीलम संजीव रेड्डी (एकमात्र निर्विरोध)
- प्रतिभा देवीसिंह पाटिल (पहली महिला राष्ट्रपति)
- द्रौपदी मुर्मू (15 वीं) (पहली दलित आदिवासी महिला राष्ट्रपति)

उपराष्ट्रपति –

- प्रथम उपराष्ट्रपति – डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1952–1962) – 10 वर्ष कार्यकाल
- हामिद अंसारी – 10 वर्ष कार्यकाल
- 14 वें उपराष्ट्रपति जगदीप धनकड़
- उपराष्ट्रपति जो बाद में राष्ट्रपति बने – डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन
  जाकिर हुसैन
  वी. वी. गिरी
  आर. वेंकेटरमण
  शंकरदयाल शर्मा
  के. आर. नारायणन
- वे उपराष्ट्रपति जो कार्यवाहक राष्ट्रपति रहे – बी.डी. जत्ती, एम. हिदायतुल्ला

प्रथम लोकसभा उपाध्यक्ष – एम. ए. अयंगर

- 8 वें – एम. थम्बीदुरई (2014–2019)
- सर्वाधिक कार्यकाल – जी. जी. स्वेल (GG Swell)

राज्यसभा के उपसभापति –

- प्रथम – एस.वी. कृष्णमूर्ति (सर्वाधिक कार्यकाल– 10 वर्ष)
- पहली महिला उपसभापति – वायलेट अल्वा (वी. अल्वा)
- वर्तमान – हरिवंश नारायण (12 वें)
- प्रतिभा पाटिल – (1986–88)

प्रधानमंत्री

- प्रथम जवाहर लाल नेहरू (सर्वाधिक कार्यकाल)
- द्वितीय लाल बहादुर शास्त्री (पद पर मृत्यु)
- गुलजारी लाल नन्दा (2 बार कार्यवाहक प्रधानमंत्री)
- प्रथम गैर कांग्रेसी प्रधानमंत्री – मोरारजी देसाई

संसदीय समितियाँ

- संसदीय समितियों का उद्भव ब्रिटेन में हुआ था किन्तु वर्तमान में इनका प्रयोग अमेरिका में ज्यादा किया जाता है।
- भारत सरकार अधिनियम 1919 ई. से भारत में संसदीय समितियों का आरम्भ हुआ।
- 1921 ई. में पहली बार संसदीय समितियों का गठन किया गया।
- संसदीय समितियाँ दो प्रकार की होती हैं–
  1. स्थायी समिति
  2. अस्थाई समिति
- संसदीय समितियों में कोरम (गणपूर्ति) हेतु एक तिहाई (1/3) सदस्य उपस्थित होने चाहिए।

संसदीय समितियों का महत्व

- यह कार्य विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित है। संसद के पास कार्य अधिक होते है जबकि समय का अभाव होता है अतः विभिन्न कार्यों को समितियों में बाँट दिया जाता है।
- विशेषज्ञता को प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि विषय विशेष के विशेषज्ञों को ही उस समिति में सदस्य बनाया जाता है।
- **गोपनीयता रखने में सहायक–** संसद को राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित अनेक संवेदनशील मुद्दों पर निर्णय लेना होता है जिन पर खुले सदन में चर्चा नहीं की जा सकती इसलिए गोपनीयता को बनाए रखने हेतु संसदीय समितियाँ इन पर विचार करती है।
- संसदीय समितियों के माध्यम से विधायिका का कार्यपालिका पर नियंत्रण बढ़ता है।
- यह लोकसभा व राज्यसभा के मध्य सहयोग व सामंजस्य को बढ़ावा देती है।
- सत्ता पक्ष व विपक्ष के मध्य सहयोग व सामंजस्य को बढ़ावा देती है।

स्थायी समितियाँ

प्राक्कलन समिति

- स्वतंत्रता पश्चात पहली बार जॉन मथाई समिति की सिफारिश पर 1950 पहली प्राक्कलन समिति का गठन किया गया।
- इसमें 30 सदस्य होते है (मूलतः 25 सदस्य, 1956 में संख्या बढ़ाकर 30)
- सभी सदस्य लोकसभा से होते है।
- आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से सदस्यों का निर्वाचन होता है।
- सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है।
- मंत्री इसका सदस्य नहीं बन सकता है।

कार्य –

1. बजट प्रावधानों की समीक्षा करना
2. कार्यकुशलता हेतु वैकल्पिक नीतियों का सुझाव देना।
3. प्राक्कलन में नीति के अनुसार राशि के समुचित प्रावधान की जाँच करना।
4. बजट प्रावधनों की कमियों और अनियमितताओं को दूर करना।

लोक लेखा समिति

- इस समिति का गठन भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अन्तर्गत 1921 में हुआ और तब से यह अस्तित्व में है।
- इसमें 22 सदस्य होते है। (15 लोकसभा + 7 राज्यसभा से)
- आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से सदस्यों का निर्वाचन किया जाता है।
- इसका अध्यक्ष विपक्षी दल से होता है।
- इसका कार्यकाल 1 वर्ष होता है।
- मंत्री इसका सदस्य नहीं बन सकता है।

कार्य

1. कैग के सामान्य प्रतिवेदन की समीक्षा करना।
2. अधिक अनुदान के लिए लोक लेखा समिति की अनुमति आवश्यक है।

लोक उपक्रम समिति

- यह समिति 1964 में कृष्ण मेनन समिति की सिफारिश पर पहली बार गठित हुई थी।
- इसमें 22 सदस्य होते है। (15 लोकसभा + 7 राज्यसभा से)
- आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से सदस्यों का निर्वाचन होता है।
- सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है।
- मंत्री सदस्य नहीं बन सकता।

कार्य

- कैग (CAG) के लोक उपक्रम प्रतिवेदन की जाँच करना।

कार्य मंत्रणा समिति

- यह लोकसभा तथा राज्यसभा के लिए अलग–अलग होती है।
- लोकसभा समिति में– 15 सदस्य होते है (अध्यक्षताः लोकसभा अध्यक्ष द्वारा)
- राज्यसभा की समिति में – 11 सदस्य होते है (अध्यक्षताः सभापति द्वारा)
- **कार्य** – सदन के दैनिक कार्यक्रम का निर्धरण करना।

विभागीय स्थायी समितियाँ

- इनका आरम्भ अमेरिका से हुआ।
- 1993 में 17 विभागीय समितियों की स्थापना की गई ।
- 2004 में इनकी संख्या बढ़ाकर 24 कर दी गई ।
- प्रत्येक समिति में 31 सदस्य होते हैं (21 लोक सभा + 10 राज्य सभा से)
- 16 समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति लोकसभा अध्यक्ष द्वारा तथा 8 समितियों के अध्यक्ष की नियुक्ति राज्यसभा सभापति द्वारा की जाती है।

कार्य

- वित्त मंत्री द्वारा बजट पेश करने के बाद बजट विभागीय समितियों को सौंप दिया जाता है।
- एक समिति एक से अधिक विभागों के बजट की समीक्षा करती है।

अस्थायी समितियाँ

- उद्देश्य विशेष के लिए इन समितियों का गठन किया जाता है तथा उद्देश्य प्राप्ति के बाद ये समितियाँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

जैसे –

- किसी विधेयक के लिए प्रवर समिति तथा संयुक्त समिति का गठन किया जाता है।
- उद्देश्य विशेष के लिए संयुक्त संसदीय समिति (JPC) का गठन किया जाता है।
- 31 सदस्य (21 लोकसभा + 10 राज्यसभा)

अभी तक गठित संयुक्त संसदीय समितियाँः–

1. बोफोर्स घोटाला
2. हर्षद मेहता घोटाला (शेयर बाजार)
3. शीतल पेय पदार्थों में कीटनाशक
4. केतन पारेख शेयर बाजार घोटाला
5. 2G घोटाला (पी.सी. चाको)
6. वी.वी.आई.पी. हेलिकॉप्टर घोटाला (निर्णय लिया गया किन्तु गठन नहीं)

अनुच्छेद 120

'संसद में प्रयोग ली जाने वाली भाषा।'

- हिन्दी तथा अंग्रेजी का उपयोग होता है।
- किन्तु अध्यक्ष व सभापति की अनुमति से अन्य भाषा का भी प्रयोग किया जा सकता है।

अनुच्छेद 121

- संसद में किसी न्यायाधीश के व्यवहार पर चर्चा तथा टिप्पणी नहीं की जा सकती है अर्थात् संसद न्यायपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती ।
- किन्तु किसी न्यायाधीश को हटाने के प्रस्ताव के समय चर्चा की जा सकती है।

अनुच्छेद 122

- न्यायालय सदन के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

अनुच्छेद 123

- राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने संबंधी शक्ति।

शासन प्रणाली

संसदीय शासन व्यवस्था	अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था
• इसमें कार्यपालिका के दो प्रमुख होते हैं– 1. एक नाममात्र का 2. दूसरा वास्तविक	• इसमें कार्यपालिका का एक ही प्रमुख होता है–वास्तविक
• इसमें राष्ट्रध्यक्ष व शासनाध्यक्ष अलग – अलग होते है।	• इसमें राष्ट्राध्यक्ष ही शासनाध्यक्ष होता है।
• कार्यपालिका प्रमुख अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है वह बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है।	• कार्यपालिका प्रमुख सामान्यतः जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है। वह बहुमत प्राप्त दल का नेता नहीं होता है।
• इसमें स्पष्ट शक्ति पृथक्करण नहीं होता है क्योंकि कार्यपालिका विधायिका का भाग होती है। (मंत्री विधायिका के भी सदस्य होते हैं)	• इसमें स्पष्ट शक्ति पृथक्करण होता है क्योंकि कार्यपालिका व विधायिका पूर्णतः पृथक होते है (मंत्री विधायिका का सदस्य नहीं हो सकता है।)
• कार्यपालिका सामूहिक रूप से विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है अर्थात् विधायिका अविश्वास प्रस्ताव के द्वारा कार्यपालिका को हटा सकती है।	• कार्यपालिका सामूहिक रूप से विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती अर्थात विधायिका अविश्वास प्रस्ताव द्वारा कार्यपालिका को नहीं हटा सकती है।
• इसमें सामूहिक उत्तरदायित्व होता है।	• इसमें केवल व्यक्तिगत उत्तरदायित्व होता है।
• विधायिका कार्यपालिका के दैनिक कार्यों पर नियंत्रण रखती है (विभिन्न प्रकार के प्रश्नों व प्रस्तावों के माध्यम से)	• विधायिका कार्यपालिका के दैनिक कार्यों पर नियंत्रण नहीं रखती है क्योंकि विधायिका कार्यपालिका से प्रश्न नहीं पूछ सकती तथा उसके विरूद्ध प्रस्ताव भी नहीं लाए जा सकते।

अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था के गुण

- **स्थायित्व** – चूँकि कार्यपालिका प्रमुख का प्रत्यक्ष निर्वाचन होता है, वह विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। विधायिका अविश्वास प्रस्ताव द्वारा कार्यपालिका को नहीं हटा सकती है इसलिए कार्यपालिका अपना कार्यकाल पूरा करती है इससे स्थायित्व बना रहता है।
- **त्वरित निर्णय** – चूँकि कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है; कार्यपालिका की निर्णयन प्रक्रिया तीव्र होती है। इसमें कार्यपालिका प्रमुख अकेला निर्णय ले सकता है, सामूहिक सहमति ज़रूरी नहीं होती है।
- **स्पष्ट शक्ति पृथक्करण** – क्योंकि कार्यपालिका व विधायिका पूर्णतः पृथक होते है।
- **विशेषज्ञों द्वारा सरकार** – कार्यपालिका प्रमुख के पास मंत्री नियुक्त करने के लिए अधिक विकल्प होते हैं क्योंकि वह किसी भी योग्य नागरिक को मंत्री नियुक्त कर सकता है।
- इसमें गठबंधन की सरकार नहीं होती है अतः गठबंधन सरकार के दोष नहीं होते हैं, दल–बदल की समस्या नहीं होती है।
- कार्यपालिका प्रमुख का मंत्रियों पर अधिक प्रभावी नियंत्रण होता है।

अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था के दोष

निरंकुशता – कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है अतः कार्यपालिका पर विधायिका का नियंत्रण नहीं रहता जिससे वह निरंकुश बनी रहती है।

- कार्यपालिका के दैनिक कार्यों पर भी विधायिका का नियन्त्रण नहीं होता है जिससे कार्यपालिका कम जवाबदेह होती है।

टकराव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है – यदि विधायिका में किसी अन्य दल का बहुमत हो तो दोनों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिससे विधि निर्माण की प्रक्रिया बाधित हो जाती है।

- अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था में सभी वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिलता है अतः बहुसांस्कृतिक देश में यह प्रणाली उचित नहीं है।
- इस शासन प्रणाली में विपक्ष का अधिक महत्व नहीं होता है।

संसदीय शासन व्यवस्था के गुण

- **उत्तरदायित्व** – क्योंकि कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है इसलिए विधायिका का कार्यपालिका पर नियन्त्रण रहता है अतः कार्यपालिका निरंकुश नहीं हो पाती।
- **जवाबदेहिता** – विधायिका का कार्यपालिका के दैनिक कार्यों पर भी नियंत्रण होता है। कार्यपालिका को विधायिका के प्रश्नों के जवाब देने होते हैं अतः कार्यपालिका अधिक जवाबदेह होती है।
- **कार्यपालिका तथा विधायिका के बीच बेहतर तालमेल** – चूँकि कार्यपालिका को विधायिका में बहुमत प्राप्त होता है इसलिए दोनों के बीच बेहतर सामंजस्य होता है एवं दोनों में टकराव उत्पन्न नहीं होता, इससे सरकारी निर्णयन व विधि निर्माण सरल होते हैं।
- इसमें अल्संख्यक वर्ग भी राजनीतिक रूप से संगठित हो सकते हैं एवं वे अपने हितों को संरक्षित कर सकते हैं।
- इसमें विपक्षी दलों का महत्व होता है। इसमें राजनीतिक दल अधिक होते है। राजनीतिक दलों के द्वारा जन आन्दोलन भी होते हैं जिससे जनता में राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न होती है।

संसदीय शासन व्यवस्था के दोष

- **अस्थिरता** – चूँकि कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है अतः विधायिका अविश्वास प्रस्ताव के द्वारा कार्यपालिका को हटा सकती है। प्रायः कार्यपालिका अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाती है और पुनः चुनाव करवाने पड़ते हैं जिससे धन व समय का अपव्यय होता है तथा राजनीतिक नीतियों में भी अस्थिरता बनी रहती है।
- **अनिर्णय की स्थिति या त्वरित निर्णय का अभाव** – कोई भी निर्णय लेने से पहले सभी सहयोगी दलों की सहमति लेनी पड़ती है। प्रायः सहयोगी दल सहमत नहीं होते है तो सरकार निर्णय नहीं ले पाती है।
- इसमें स्पष्टतः शक्ति पृथक्करण नहीं होता है क्योंकि कार्यपालिका विधायिका का एक भाग होती है जो कि आदर्श लोकतंत्र के अनुरूप नहीं है।
- **अकुशल लोगों की सरकार या विकल्पों की सीमितता** – मंत्री नियुक्त करने के लिए अधिक विकल्प नहीं होते हैं क्योंकि केवल विधायिका के सदस्यों में से ही मंत्री नियुक्त करने होते हैं। इससे विशेषज्ञता को प्रोत्साहन नहीं मिलता है।
- इसमें गठबंधन की सरकारें भी बनती हैं। इस कारण गठबंधन सरकारों के सभी दोष इसमें आ जाते हैं। जैसे– अस्थिरता, अनिर्णय, मंत्रियों पर पर्याप्त नियंत्रण का अभाव, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय मुद्दों की बजाय क्षेत्रीय मुद्दों को अधिक महत्त्व, अवसरवादिता, दल–बदल की प्रवृत्ति, बेमेल गठबंधन आदि।

प्रश्नः भारतीय संविधान निर्माताओं द्वारा अध्यक्षात्मक की बजाय संसदीय शासन व्यवस्था को क्यों अपनाया गया ? संसदीय शासन व्यवस्था की कमियों को देखते हुए क्या हमें अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था के विकल्प पर विचार करना चाहिए?

उत्तरः संसदीय शासन व्यवस्था अपनाने के कारण –

(i) ब्रिटिश सरकार द्वारा औपनिवेशिक भारत में स्थापित प्रारंभिक लोकतांत्रिक संस्थाएँ संसदीय ढाँचे पर आधारित थी।

(ii) भारतीय संविधान निर्माताओं का लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रशिक्षण संसदीय शासन व्यवस्था पर आधारित संस्थाओं में हुआ था।

(iii) संविधान निर्माताओं द्वारा ब्रिटिश शिक्षा प्राप्त करने के कारण वे संसदीय व्यवस्था से निकट परिचित थे।

(iv) भारतीय संविधान का मुख्य स्रोत भारत सरकार अधिनियम, 1935 है, जो संसदीय ढाँचे पर आधारित है।

- इसके अलावा संसदीय शासन व्यवस्था में कार्यपालिका द्वारा विधायिका के प्रति उत्तरदायी होने से निरंकुशता का अभाव, कार्यपालिका की विधायिका के प्रति जवाबदेही, कार्यपालिका–विधायिका के बीच बेहतर तालमेल, विपक्षी दलों का महत्त्व और बहुसांस्कृतिक एवं विविधतापूर्ण देश में सभी वर्गों का प्रतिनिधित्त्व जैसी विशेषताएँ भी पाई जाती हैं।
- किन्तु संसदीय शासन व्यवस्था के विभिन्न दोष जैसे– अस्थिरता, अनिर्णय की स्थिति, स्पष्ट शक्ति पृथक्करण एवं विशेषज्ञता का अभाव और गठबंधन सरकारों की कमियों ने भारत में अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था अपनाने के विचार को आगे बढ़ाया।
- अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था में स्थिरता, त्वरित निर्णय, स्पष्ट शक्ति पृथक्करण, विशेषज्ञता को प्रोत्साहन जैसे गुण विद्यमान हैं किन्तु इसकी निरंकुश प्रवृत्ति, जवाबदेहिता की कमी, कार्यपालिका–विधायिका टकराव, अल्पसंख्यक वर्गों के हितों के संरक्षण का अभाव और विपक्षी दलों के कमजोर राजनीतिक प्रतिनिधित्त्व जैसी कमियाँ बहुसांस्कृतिक एवं विविधतापूर्ण भारतीय लोकतंत्र के अनुकूल नहीं है।

  निष्कर्षतः हमारे संविधान निर्माताओं ने अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था के स्थायित्व की बजाय जिस उत्तरदायी एवं जवाबदेह संसदीय व्यवस्था का चयन किया, वही भारतीय लोकतंत्र के अनुकूल एवं श्रेष्ठ है।

न्यायपालिका
अनुच्छेद 124–147

उच्चतम न्यायालय

- 28 जनवरी 1950 को सर्वोच्च न्यायालय का उद्घाटन किया गया।
- सर्वोच्च न्यायालय ने 'प्रिवी काउंसिल' (अपील का सर्वोच्च न्यायालय) तथा 'फेडरल कोर्ट' (संघीय न्यायालय) का स्थान लिया।

अनुच्छेद 124

- भारत का एक उच्चतम न्यायालय होगा।
- इसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा 7 अन्य न्यायाधीश होंगे।
- संसद न्यायाधीशों की संख्या बढा सकती है।
- वर्तमान में 33 + 1 = 34 न्यायाधीश है।
- राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है, इसके लिए वह भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) से 'परामर्श' करता है।

'परामर्श' शब्द से क्या तात्पर्य है ?

प्रथम न्यायाधीश वाद 1982 – (एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ)

- इसके तहत उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद–124 की व्याख्या की।
- न्यायालय ने माना कि 'परामर्श' शब्द से तात्पर्य है राष्ट्रपति व मुख्य न्यायाधीश के मध्य विचारों का आदान–प्रदान ।
- इसके तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश के द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह बाध्यकारी नहीं है, अर्थात सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति मंत्रिपरिषद की सलाह से ही की जानी चाहिए।

द्वितीय न्यायाधीश वाद, 1993

- उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय को उलट दिया तथा माना कि CJI व उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों के द्वारा दी गई सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी है। (1+2 न्यायाधीश– इस समय कॉलेजियम व्यवस्था अस्तित्व में आई किन्तु 'कॉलेजियम' शब्द 1998 में प्रयुक्त हुआ)
- यदि राष्ट्रपति इनकी सलाह को नहीं मानता है तो उसे इसका कारण बताना होगा।
- उच्चतम न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया जाना चाहिए।
  - 1958 में विधि आयोग ने सिफ़ारिश की कि CJI की नियुक्ति में वरिष्ठता की बजाय योग्यता एकमात्र आधार होनी चाहिए।
- केशवानन्द भारती वाद, 1973 –
  - सरकार के विरूद्ध निर्णय– तीन वरिष्ठतम न्यायाधीशों जे. एम. शेलात, के. एस. हेगडे, ए. एन. ग्रोवर की वरिष्ठता लांघकर ए. एन. रे को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया।
- 1976 – ए.डी.एम जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला वाद (4:1 से निर्णय) – यह वाद बंदी प्रत्यक्षीकरण वाद से जाना जाता है।
  - सरकार के विरूद्ध निर्णय के कारण हंसराज खन्ना की वरिष्ठता लांघकर एम. एच. बेग को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया।
- जनता पार्टी ने मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में वरिष्ठता सिद्धांत को अपनाने का वादा किया।

तृतीय न्यायाधीश वाद 1998

- उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय की पुष्टि की तथा ये भी माना कि भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों का 'कॉलेजियम' राष्ट्रपति को न्यायाधीश की नियुक्ति हेतु सलाह देगा।
- राष्ट्रपति को इनकी सलाह माननी होगी।
- यदि 'कॉलेजियम' के दो सदस्य सलाह से असहमत हैं तो राष्ट्रपति सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है।
- यदि राष्ट्रपति कॉलेजियम की सलाह नहीं मानता है तो उसे इसका कारण बताना होगा।
- इस समय पहली बार 'कॉलेजियम' शब्द का प्रयोग किया गया ।
- कालान्तर में कॉलेजियम व्यवस्था की आलोचना होने लगी क्योंकि यह एक बंद व्यवस्था है जिसमें पारदर्शिता का अभाव है। इस पर भाई–भतीजावाद के आरोप लगते हैं, उच्चतम न्यायालय में कुछ परिवारों का ही दबदबा है इसलिए उच्चतम न्यायालय में सभी वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। उच्चतम न्यायालय में अनुसूचित जाति, जनजाति (SC/ST), अन्य पिछडा वर्ग (OBC), महिलाएँ तथा अल्पसंख्यक वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।
- इन आलोचनाओं को देखते हुए 99वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2015 द्वारा 'राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग' (NJAC) का गठन किया गया जो न्यायधीशों की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति को सलाह देता। **इसमें कुल 6 सदस्य थे–**

  (i) भारत का मुख्य न्यायाधीश (CJI)
  (ii) उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीश
  (iii) विधि मंत्री
  (iv) दो अन्य सदस्य (एक प्रख्यात कानूनविद् एवं एक SC/ST/OBC/ अल्पसंख्यक/महिला)

  - दो अन्य सदस्यों की नियुक्ति (3 वर्षों के लिए और पुनः नियुक्ति नहीं) एक तीन सदस्यीय समिति द्वारा की जानी थी।

  समिति के सदस्य –

  (i) भारत का मुख्य न्यायाधीश
  (ii) प्रधानमंत्री
  (iii) लोकसभा में विपक्ष का नेता

'राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग' (NJAC)

कार्य

1. नियुक्तियाँ–

(i) भारत का मुख्य न्यायाधीश
(ii) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश
(iii) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश

2. न्यायाधीशों का स्थानांतरण

- राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग का निर्णय– न्यूनतम 5:1 बहुमत से
- राष्ट्रपति राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग की राय को पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है, दुबारा वही राय आने पर भी माननी पड़ेगी।

- 2015 में उच्चतम न्यायालय ने 99वें संविधान संशोधन को शून्य घोषित कर दिया। न्यायालय के अनुसार यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सीमित करता है और स्वतंत्र न्यायपालिका संविधान का बुनियादी ढाँचा है। अतः कॉलेजियम व्यवस्था पुनः अस्तित्व में आ गई।

उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों की योग्यता

- 5 वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रहा हो।
- 10 वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय में वकील रहा हो।
- राष्ट्रपति की राय में एक प्रख्यात विधिवेता हो।

कार्यकाल :– संसद द्वारा निर्धारित

- 65 वर्ष तक की आयु तक न्यायाधीश अपने पद पर बना रह सकता है।

पद से हटाने की प्रक्रिया :–

- निम्नलिखित दो आधारों पर न्यायाधीश को पद से हटाया जा सकता है–
  (i) अक्षमता (ii) सिद्ध कदाचार
- हटाने का प्रस्ताव किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है, राज्यसभा में 50 सदस्यों के, लोकसभा में 100 सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए।
- सदन का सभापति/अध्यक्ष प्रस्ताव को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकता है।
- यदि प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है तो अध्यक्ष/सभापति आरोपों की जाँच के लिए 3 सदस्यीय समिति का गठन करता है जिसमें निम्नलिखित सदस्य होते हैं–
  (a) उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश या अन्य न्यायाधीश
  (b) किसी भी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश
  (c) विख्यात विधिवेता
- यदि समिति द्वारा आरोप सही पाए जाते हैं तो सदन प्रस्ताव को आगे बढ़ाता है।
- यहाँ तक की प्रक्रिया का न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकता है।
- यह प्रस्ताव दोनों सदन में विशेष बहुमत से पारित किया जाता है।
- प्रत्येक सदन द्वारा प्रस्ताव पारित होने के बाद न्यायाधीश को हटाने की सूचना राष्ट्रपति को दी जाती है।
- राष्ट्रपति न्यायाधीश को हटाने के आदेश जारी करता है।

अनुच्छेद 125 – 'न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते पेंशन एवं सेवा शर्तें'

- CJI – 2 लाख 80 हजार रू.
- अन्य न्यायाधीश – 2 लाख 50 हजार रू.
- पेंशन – वेतन का 50 प्रतिशत

अनुच्छेद 126 – 'कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश'

- यदि मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो, वह अस्थायी रूप से अनुपस्थित हो अथवा वह अपने दायित्त्वों के निर्वहन में असमर्थ हो तब राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय में कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति कर सकता है।

अनुच्छेद 127 – तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति

- उच्चतम न्यायालय में गणपूर्ति को पूरा करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से भारत का मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय में तदर्थ न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है।
- उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश बनने की योग्यता रखने वाले को ही तदर्थ न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है।
- इसके लिए संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से भी परामर्श लिया जाता है।

अनुच्छेद 128 – 'सेवानिवृत्त न्यायाधीश की नियुक्ति'

- उच्चतम न्यायालय में यदि कार्यभार अधिक हो तो भारत का मुख्य न्यायाधीश किसी भी उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय में नियुक्त कर सकता है।
- इसमें राष्ट्रपति की पूर्वानुमति के साथ सेवानिवृत्त न्यायाधीश की सहमति आवश्यक है।
- इसके वेतन–भत्ते राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।
- वह उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान शक्तियाँ रखता है लेकिन वह 'उच्चतम न्यायालय' का न्यायाधीश' पदनाम का प्रयोग नहीं कर सकता।
- इसका अधिकतम कार्यकाल 2 वर्ष हो सकता है।

अनुच्छेद–130 – 'उच्चतम न्यायालय का स्थान'

- संविधान अनुसार उच्चतम न्यायालय का स्थान दिल्ली होगा किन्तु भारत का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से उच्चतम न्यायालय की पीठ के लिए अन्य स्थान का निर्धारण कर सकता है।

Springboard ACADEMY

उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता

- **अनुच्छेद 131 – आरंभिक अधिकारिता/मूल क्षेत्राधिकार**
- इसके तहत वे मामले आते हैं जिनकी सुनवाई सीधे उच्चतम न्यायालय में की जाती है–
  (i) केन्द्र–राज्य विवाद
  (ii) राज्य–राज्य विवाद
  (iii) केन्द्र, राज्य बनाम अन्य राज्य विवाद
- इसके निम्नलिखित अपवाद हैं– (इन मामलों की सुनवाई उच्चतम न्यायालय में नहीं होगी।)
  (i) संविधान पूर्व के किसी संधि, समझौते, करार से संबंधित विवाद।
  (ii) यदि किसी समझौते अथवा संधि में पहले से यह प्रावधान हो।
  (iii) अंतर–राज्यीय नदी जल विवाद।
  (iv) वित्त आयोग को सौंपे गए मामले।
  (v) वाणिज्यिक प्रकृति के अन्य मामले।
  (vi) केंद्र – राज्य के बीच विभिन्न प्रकार के व्यय तथा पेंशन के भुगतान से संबंधित विवाद।
  (vii) केन्द्र के विरूद्ध राज्यों के द्वारा नुकसान की भरपाई के मामले।

❖ राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित विवादों की सुनवाई केवल उच्चतम न्यायालय करेगा।

अपीलीय अधिकारिता

- उच्च न्यायालय की खण्डपीठ के निर्णय के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।
- उच्चतम न्यायालय में निम्नलिखित तीन प्रकार के मामलों में अपील हो सकती है–

(i) अनुच्छेद 132 – संवैधानिक मामले

- इसमें उच्च न्यायालय निर्णय के साथ यह प्रमाण देता है कि इस वाद में 'विधि का सारवान प्रश्न' निहित है जिसमें 'संविधान की व्याख्या' आवश्यक है तो उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(ii) अनुच्छेद 133 – दीवानी मामले

- यदि उच्च न्यायालय अपने निर्णय के साथ यह प्रमाण पत्र देता है कि इस वाद में ' लोक महत्व का विधि का सारवान प्रश्न' निहित है जिसकी व्याख्या उच्चतम न्यायालय के द्वारा की जानी चाहिए तो इस स्थिति में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(iii) अनुच्छेद 134 – आपराधिक मामले

- यदि उच्च न्यायालय प्रमाण पत्र देता है तो उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।
  - किन्तु निम्नलिखित मामलों में उच्च न्यायालय के प्रमाण पत्र के बिना भी उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है–
    (i) यदि किसी व्यक्ति को अधीनस्थ न्यायालय ने बरी कर दिया हो लेकिन उच्च न्यायालय ने उसे 10 वर्ष या अधिक की सजा दे दी हो।
    (ii) यदि उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालय से किसी वाद/मामले को स्वयं ले लिया हो तथा आरोपी को 10 वर्ष या अधिक की सजा दी हो।

अनुच्छेद 129 – अभिलेखिय न्यायालय व न्यायालय की अवमानना

- उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय भारत के राज्यक्षेत्र में स्थित अन्य सभी न्यायालयों के लिए अनुकरणीय होंगे अर्थात् इन निर्णयों को आधार बनाकर वे अपने निर्णय देंगे।
- अन्य न्यायालय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की समीक्षा व आलोचना नहीं कर सकते है।
- न्यायालय की अवमानना करने वाले व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय दण्डित कर सकता है। इसके लिए 6 माह की सजा अथवा 2 हजार रू. जुर्माना अथवा दोनों की सजा दी जा सकती है।
- न्यायालय की अवमानना : संविधान द्वारा परिभाषित नहीं।

न्यायिक अवमानना अधिनियम, 1971

- न्यायालय की अवमानना को परिभाषित किया गया।
- न्यायालय की अवमानना पर जाँच की प्रक्रिया और दण्ड का प्रावधान।
  - नागरिक अवमानना – जान–बूझकर आदेश आदि न मानना।
  - आपराधिक अवमानना – न्यायालय का अपमान (प्रतिष्ठा को कम करना, न्यायिक प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करना)

अनुच्छेद 32 – रिट अधिकारिता

- यदि मूल अधिकारों का हनन होता है तो उच्चतम न्यायलय 5 प्रकार की रिट जारी कर सकता है।

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण
2. परमादेश
3. प्रतिषेध
4. उत्प्रेषण
5. अधिकार पृच्छा

अनुच्छेद 143 – परामर्शदात्री अधिकारिता

- राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय से परामर्श ले सकता है, यदि–
  - लोक महत्त्व का विधि का प्रश्न या तथ्य का प्रश्न उत्पन्न हुआ हो या होने की संभावना हो।
- निम्नलिखित मामलों में उच्चतम न्यायालय सलाह देने के लिए बाध्य है–
  - संविधान–पूर्व की संधि अथवा समझौतों से संबंधित विवाद।
- अन्य मामलों में उच्चतम न्यायालय सलाह देने के लिए बाध्य नहीं है।
- उच्चतम न्यायलय जो सलाह देता है राष्ट्रपति उस सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

न्यायिक पुनरावलोकन

- उच्चतम न्यायलय विधायिका द्वारा पारित किए गए अधिनियमों तथा कार्यपालिका द्वारा जारी किए गए आदेशों की समीक्षा कर सकता है और यदि ये संविधान के प्रावधानों के अनुरूप ना हो तो उन्हें शून्य घोषित कर सकता है।
- यद्यपि संविधान में स्पष्टतः न्यायिक पुनरावलोकन शब्द का उल्लेख नहीं है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से अनेक अनुच्छेद न्यायालय को यह शक्ति प्रदान करते हैं–

जैसे–

अनुच्छेद – 13(2)
अनुच्छेद – 32
अनुच्छेद – 131,132,133,134,135,136
अनुच्छेद – 143, 145
अनुच्छेद – 226, 246, 256

अनुच्छेद 136 – विशेष अनुमति याचिका (SLP)

- उच्चतम न्यायालय अपने विवेकानुसार भारत के राज्यक्षेत्र में स्थित किसी न्यायालय अथवा अधिकरण द्वारा दिए गए किसी निर्णय या आदेश के विरूद्ध अपील करने की अनुमति दे सकता है।
- उच्चतम न्यायालय निम्नलिखित मामलों में यह अनुमति दे सकता है–
  - किसी भी प्रकार का मामला हो– सिविल, संवैधानिक, आपराधिक।
  - मामला किसी भी स्तर/चरण में हो।
  - किसी भी न्यायालाय (अधीनस्थ न्यायालय, उच्च न्यायालय, न्यायाधिकरण आदि) का मामला हो।

अपवाद

- सैन्य न्यायालय का मामला हो।

अनुच्छेद – 135

- संघीय न्यायालय की सारी शक्तियाँ उच्चतम न्यायालय के पास होगी।

अनुच्छेद – 137

- उच्चतम न्यायालय अपने निर्णयों की पुनः समीक्षा कर सकता है।

अनुच्छेद – 138

- संसद उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता में वृद्धि कर सकती है।
  - संघ सूची के विषय पर।
  - संघ और राज्य के मध्य समझौते से भी प्रदान की जा सकती है।

अनुच्छेद 139

- संसद उच्चतम न्यायालय की रिट अधिकारिता में वृद्धि कर सकती है अर्थात् अनुच्छेद 32 के अतिरिक्त अन्य मामलों में भी रिट जारी करने का अधिकार दे सकती है।

अनुच्छेद 139 (क) - 'कुछ मामलों का स्थानान्तरण'

- भारत के राज्यक्षेत्र में स्थित किसी भी न्यायालय से किसी भी मामले को उच्चतम न्यायालय स्वयं के पास स्थानांतरित कर सकता है तथा एक न्यायालय से दूसरे न्यायलय में भी स्थानांतरित कर सकता है।

अनुच्छेद 140

- संसद विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को आनुषंगिक शक्तियाँ प्रदान कर सकती है।

अनुच्छेद 141

- उच्चतम न्यायालय के द्वारा घोषित की गई विधि भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होगी।

अनुच्छेद 142

- उच्चतम न्यायालय के आदेशों का प्रवर्तन (पूर्ण न्याय) उच्चतम न्यायालय अपने आदेशों को लागू करवाने के लिए विधायिका व कार्यपालिका की शक्तियों को स्वयं अपने हाथ में ले सकता है।
- कुछ आलोचकों का मानना है कि इस अनुच्छेद के कारण न्यायिक सक्रियता को प्रोत्साहन मिलता है।
- आरम्भ में वंचित वर्गों और पर्यावरण मामलों में उपयोग।
- यूनियन कार्बाइड केस, 1989 – उच्चतम न्यायालय ने स्वयं को संसदीय कानूनों से ऊपर स्थापित कर दिया और कहा कि 'पूर्ण न्याय के लिए वह संसद के कानूनों को अध्यारोपित कर सकता है।
- उच्चतम न्यायालय बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ, 1998 – अनुच्छेद 142 का प्रयोग संसदीय कानूनों के अनुपूरक के रूप में किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 142 के उपयोग के उदाहरण –

- ताजमहल के संगमरमर की सफाई।
- कोल ब्लॉक आवंटन रद्द।
- IPL फिक्सिंग की जाँच।
- राष्ट्रीय राजमार्गों (500 मीटर तक) पर शराब बिक्री प्रतिबंधित।
- राम जन्मभूमि हेतु 3 माह में न्यास।
- ए. जी. पेरारिवलन को बरी करना।

अनुच्छेद 144

- सिविल तथा न्यायिक अधिकारी उच्चतम न्यायालय के सहायक के रूप में कार्य करेंगे।

अनुच्छेद 145

- उच्चतम न्यायालय अपने नियम विनियम स्वयं बनायेगा।
  - संवैधानिक पीठ – 5 न्यायाधीश
  - खुले न्यायालय में निर्णय
  - असहमत न्यायाधीश भी अपना निर्णय देगा।

अनुच्छेद 146

- उच्चतम न्यायालय के अधिकारियों अथवा सेवकों की नियुक्ति और सेवा शर्तें, वेतन–भत्ते, पेंशन आदि का निर्धारण भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा अथवा इस कार्य हेतु उसके द्वारा नियुक्त अन्य न्यायाधीश या अधिकारी द्वारा किया जाएगा।
- नियुक्ति – संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श।
- वेतन–भत्ते – राष्ट्रपति का अनुमोदन।
- उच्चतम न्यायालय के सभी व्यय संचित निधि पर भारित होंगे।

अनुच्छेद 147 – निर्वचन

Springboard ACADEMY

उच्च न्यायालय

भाग–VI

अनुच्छेद – 214–231

- 1862 ई. में 3 उच्च न्यायालयों की स्थापना की गई थी–
- (i) कलकता (ii) बॉम्बे (iii) मद्रास
- 1866 ई. में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की स्थापना की गई।
- 1947 से पहले देश में 11 प्रान्त थे, सभी प्रान्तों में उच्च न्यायालय स्थापित कर दिए गए थे।

अनुच्छेद 214 – प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा।

- **7वां संविधान संशोधन, 1956** – एक उच्च न्यायालय एक से अधिक राज्यों के लिए हो सकता है।
- वर्तमान में 25 उच्च न्यायालय
- 25वां आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय
- 2013 में तीन उच्च न्यायालय बने–
- (i) त्रिपुरा (ii) मणिपुर (iii) मेघालय

उच्च न्यायालय	राज्य / संघ क्षेत्र
• गुवाहाटी उच्च न्यायालय	• असम, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मिजोरम
• बोम्बे उच्च न्यायालय	• महाराष्ट्र, गोवा, दमन दीव – दादरा नगर हवेली
• कलकत्ता उच्च न्यायालय	• पश्चिम बंगाल, अण्डमान एवं निकोबार
• पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय	• पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ
• मद्रास उच्च न्यायालय	• तमिलनाडु, पुदुचेरी
• केरल उच्च न्यायालय	• केरल, लक्षद्वीप
• जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख उच्च न्यायालय	• जम्मू कश्मीर, लद्दाख

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति –

- इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
- इस हेतु राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) + 2 अन्य वरिष्ठतम न्यायाधीशों से सलाह लेता है।
- राष्ट्रपति राज्यपाल तथा संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करता है।
- उच्च न्यायालय के न्यायधीशों को शपथ राज्यपाल दिलाता है।
- **स्थानांतरण** – कॉलेजियम द्वारा (दोनों उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से)

कार्यकाल

- 62 वर्ष की आयु सीमा तक न्यायाधीश अपने पद पर बने रह सकते है।

हटाने की प्रक्रिया

- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया के समान।

योग्यताएँ–

- भारत का नागरिक होना चाहिए।
- न्यूनतम 10 वर्ष तक उच्च न्यायालय में वकील रहा हो।

अथवा

- न्यूनतम 10 वर्ष तक अधीनस्थ न्यायालय में न्यायाधीश रहा हो।

न्यायाधीशों की संख्या – इसका निर्धारण भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।

उच्च न्यायालय की अधिकारिता
अनुच्छेद 225

आरंभिक अधिकारिता

- विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, वसीयत, कम्पनी मामले
- नागरिकों के मूल अधिकारों का प्रवर्तन।
- सांसदों व राज्य विधानमण्डल के सदस्यों के चुनाव से संबंधित विवाद।
- राजस्व विषय तथा राजस्व संग्रहण से संबंधित मामले।
- अधीनस्थ न्यायालय द्वारा भेजे गए मामले।
- निम्नलिखित उच्च न्यायालयों को एक राशि तक के दीवानी मामलों में आरम्भिक अधिकारिता है–
  (i) दिल्ली (ii) मद्रास
  (iii) कलकत्ता (iv) बोम्बे
- 1973 से पहले निम्नलिखित उच्च न्यायालयों के पास आपराधिक मामलों में भी आरम्भिक अधिकारिता थी–
  (i) मद्रास (ii) बोम्बे
  (iii) कलकत्ता।
- 1973 में इसे समाप्त कर दिया गया।

अपीलीय अधिकारिता

- जिला न्यायालय व सत्र न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।
- उच्च न्यायालय की एकल पीठ के निर्णय के विरूद्ध उच्च न्यायालय की खण्डपीठ में अपील की जा सकती है।

निम्नलिखित 2 प्रकार के मामलों में अपील की जा सकती है–

(i) दीवानी मामले – इसमें प्रथम अपील व द्वितीय अपील दोनों प्रकार की अपील हो सकती है।
- प्रथम अपील – जिसमें तथ्य का प्रश्न व विधि का प्रश्न दोनों निहित होते हैं।
- द्वितीय अपील – इसमें केवल विधि का प्रश्न निहित होता है।
  1997 में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि प्रशासनिक एवं दूसरे अधिकरणों के निर्णय के विरूद्ध उच्च न्यायालय की खण्डपीठ में अपील की जा सकती है।

(ii) आपराधिक मामले– जिन मुकदमों में 7 वर्ष से अधिक की सजा का प्रावधान हो, उनके लिए उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।
- मृत्युदण्ड के सभी मामलों में उच्च न्यायालय का अनुमोदन आवश्यक है।

अनुच्छेद 226 – रिट अधिकारिता

- अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय पाँच प्रकार की रिट जारी कर सकता है–

1. बंदी प्रत्यक्षीकरण
2. परमादेश
3. प्रतिषेध
4. उत्प्रेषण
5. अधिकार पृच्छा

चन्द्रकुमार वाद, 1997 – रिट अधिकारिता संविधान का मूल ढाँचा है।

अनुच्छेद 215 – अभिलेखिय न्यायालय व न्यायालय की अवमानना

- उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय राज्य के अन्य न्यायालयों के लिए अनुकरणीय होंगे।
- अन्य न्यायालय उन निर्णयों की समीक्षा या आलोचना नहीं कर सकते है।
- न्यायालय की अवमानना पर 6 माह की सजा अथवा 2 हजार रूपये जुर्माना अथवा दोनों की सजा दी जा सकती है।

न्यायिक पुनरावलोकन
{अनुच्छेद 226, 13(2)}

- उच्च न्यायालय संसद व राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किए गए अधिनियमों तथा केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए आदेशों की समीक्षा कर सकता है तथा संविधान के विरोधी होने पर उन्हें शून्य घोषित कर सकता है।
- यह निर्णय केवल राज्य में लागू होंगे।
  - 42वां संशोधन – उच्च न्यायालय की केंद्रीय कानूनों के पुनरावलोकन की शक्ति समाप्त।
  - 43वां संशोधन – उच्च न्यायालय की केंद्रीय कानूनों के पुनरावलोकन की शक्ति वापस प्रदान।
- उच्च न्यायालय राज्य में स्थित अन्य अधीनस्थ न्यायालयों का अधीक्षण कर सकता है।

अधीनस्थ न्यायालय

भाग– VI

अनुच्छेद – 233–237

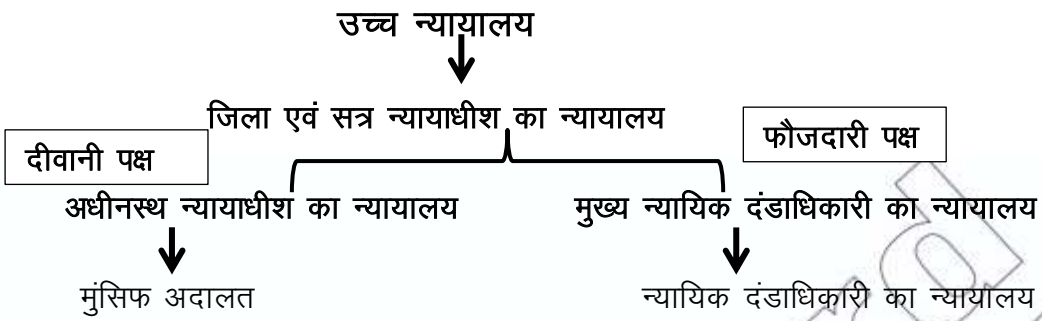

- जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा राज्य के उच्च न्यायालय के परामर्श से की जाती है।

जिला न्यायाधीश हेतु योग्यताएँ–

(i) वह कम से कम 7 वर्ष वकील रहा हो।

(ii) उच्च न्यायालय ने उसकी नियुक्ति की सिफारिश की हो।

(iii) वह केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन सार्वजनिक सेवा में ना हो।

- जिला न्यायधीश किसी अपराधी को उम्रकैद अथवा मृत्युदण्ड की सजा दे सकता है यद्यपि उसके द्वारा दिया गया मृत्युदण्ड उच्च न्यायालय के अनुमोदन के पश्चात ही लागू हो सकता है।
- जिला न्यायाधीश जिले के सभी अधीनस्थ न्यायालयों के निरीक्षण का अधिकार रखता है।
- जिला न्यायधीश के फैसले के विरूद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

ग्राम न्यायालय

- 2 अक्टूबर 2008 – ग्राम न्यायालयों हेतु अधिनियम पारित किया गया।
- 2009 में ग्राम न्यायालयों की स्थापना की गई।

उद्देश्य –

1. नागरिकों को उनके द्वार पर न्याय उपलब्ध करवाना ।
2. यह सुनिश्चित करना कि कोई भी नागरिक अपनी सामाजिक, आर्थिक, व अन्य अशक्ताओं के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित ना रहे।
3. ग्राम पंचायत स्तर तक न्यायालय को पहुँचाना।
   - उच्च न्यायालय की अनुमति से राज्य सरकार ग्राम न्यायालय की स्थापना करती है तथा प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को नियुक्त करती है।
   - यह एक भ्रमणशील न्यायालय है।
   - यह आपराधिक व दीवानी दोनों प्रकार के मुकदमें सुनता है।
   - 6 माह के भीतर मामले की सुनवाई तथा निस्तारण किया जाएगा।
   - इसके निर्णय के विरूद्ध एक माह में अपील की जा सकती है। फौजदारी मामलों में निर्णय के विरूद्ध सत्र न्यायालय में तथा दीवानी मामलों में निर्णय के विरूद्ध जिला न्यायालय में अपील की जा सकती है।
   - ग्राम न्यायालय अधिक सफल नहीं रहे हैं।

❖ राजस्थान का प्रथम ग्राम न्यायालय 2010 में – बस्सी (जयपुर)

लोक अदालत

- लोक अदालत ऐसा मंच है जहाँ मामलें (न्यायालय में लंबित/आरंभिक स्तर) सौहार्द्रपूर्ण ढंग से निपटाए जाते हैं।
- सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार लोक अदालत–
  - प्राचीन भारत में प्रचलित न्याय व्यवस्था का पुराना स्वरूप है जो आज भी प्रासंगिक है।
  - यह गाँधीवादी दर्शन पर आधारित है।
  - यह वैकल्पिक विवाद समाधान का अंग है।
- 1982 ई.– गुजरात में लोक अदालत स्थापित की गई।
- भारतीय न्यायालयों में लंबित मुकदमों की भरमार है और लोक अदालतें त्वरित तथा किफायती न्याय का एक वैकल्पिक समाधान उपलब्ध करवाती है।
- लोक अदालतों का उद्देश्य– लंबित मामलों को निपटाना अर्थात लम्बे समय से विचाराधीन मामलों को निपटाना।
- कोई मामला सीधे लोक अदालत में भी ले जा सकते हैं।
- लोक अदालतों की बढ़ती सफलता और लोकप्रियता के कारण वैधानिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत इसे वैधानिक दर्जा प्रदान किया गया तथा लोक अदालत के अवार्ड (निर्णय) को सिविल न्यायालय की डिक्री (आदेश) के समान माना गया।
- लोक अदालत के निर्णय से असंतुष्ट होने पर अपील नहीं की जा सकती किंतु पक्षकार आवश्यक प्रक्रिया का पालन कर उचित क्षेत्राधिकार वाली अदालत में मुकदमा दायर कर सकते हैं।
- लोक अदालत की स्थापना निम्नलिखित द्वारा की जा सकती है–
  - उच्चतम न्यायालय का वैधानिक सेवा प्राधिकरण।
  - उच्च न्यायालय
  - राज्य सरकार

लोक अदालत की संरचना–

- एक न्यायिक अधिकारी (सेवारत या सेवानिवृत्त)
- एक वकील
- एक समाजसेवी

लोक अदालत में भेजे जाने वाले मामलों की प्रकृतिः

- किसी भी न्यायालय के समक्ष लंबित कोई भी मामला।
- कोई भी विवाद जो किसी भी न्यायालय के समक्ष नहीं लाया गया है।

नोट –

1. गैर–शमनीय मामलों को लोक अदालत में सुना जा सकता है।
2. लोक अदालत के तलाक के मामलों में निर्णय देने का अधिकार नहीं है, विवाह के मामलों में केवल मध्यस्थता कर सकती है।

राष्ट्रीय लोक अदालत

- एक ही दिन में पूरे देश में सुप्रीम कोर्ट से लेकर तालुक स्तर पर सभी अदालतों आयोजित की जाती है।
- फरवरी 2015 से प्रत्येक माह एक विशिष्ट विषय पर राष्ट्रीय लोक अदालत का आयोजन किया जा रहा है।

स्थायी लोक अदालत

- वैधानिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22 बी के तहत इनका आयाजन किया जाता है।
- परिवहन डाक आदि जैसी सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं से संबंधित मामलों की सुलह हेतु।
- एक अध्यक्ष एवं दो सदस्यों के साथ स्थायी निकाय के रूप में स्थापित।
- स्थायी लोक अदालतों का क्षेत्राधिकार रुपये 10 लाख की राशि तक का है।
- इसका निर्णय अंतिम व बाध्यकारी होता है।

मोबाइल लोक अदालत

- विवादों के निपटान हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान तक गतिशील लोक अदालतें।
- दोनों पक्षों की सहमति के बाद किसी मुकदमे को लोक अदालत में लाया जाता है।
- इनमें किसी तरह का न्यायालय शुल्क अथवा स्टाम्प नहीं लगता है।
- इसमें दोनों पक्षों के मध्य समझौता करवाया जाता है।
- लोक अदालत द्वारा दिया गया निर्णय अंतिम होता है तथा इसे चुनौती नहीं दी जा सकती है।
- कानूनों का सख्ती से पालन नहीं।
- प्रक्रिया रिकॉर्ड की जाती है।
- शमनीय आपराधिक मामले (आपसी समझौते द्वारा निपटारे की अनुमति) को भी लोक अदालत में लाया जा सकता है।
- 2002 में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम में संशोधन – स्थायी लोक अदालत का प्रावधान किया गया।

लोक अदालतों की स्थापना निम्नलिखित के द्वारा की जा सकती है–

(i) उच्चतम न्यायालय का वैधानिक सेवाएँ प्राधिकरण
(ii) उच्च न्यायालय
(iii) राज्य सरकार

लोक अदालत में आने वाले मामलेः–

- किसी भी प्रकार का मामला हो।
- मामला किसी भी न्यायालय में चल रहा हो।
- मामले का पूरा खर्च विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा।

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण

- अनुच्छेद 39(क) – समान न्याय व निःशुल्क विधिक सहायता।
- 1980 ई. में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पी.एन. भगवती ने समिति का गठन किया।
- 1987 ई. में संसद ने वैधानिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम पारित किया तथा इसके तहत लोक अदालत को वैधानिक दर्जा दिया गया और राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (NALSA) का गठन किया गया।
- राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (प्रमुख – भारत का मुख्य न्यायाधीश) → राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण (राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश) → जिला विधिक सेवा प्राधिकरण (जिला न्यायाधीश)।
- 9 नवम्बर, 1995 – अधिनियम लागू (सीजेआई – आर. एन मिश्रा)।
- 9 नवम्बर – विधिक सेवा दिवस
- 1998 – कार्य प्रारम्भ (सीजेआई – ए. एस. आनंद)
- न्याय दीप – NALSA का समाचार पत्र।
- राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण – कमजोर लोगों को निःशुल्क विधिक सेवा प्रदान करना व लोक अदालत का संचालन।

कमजोर व्यक्ति

- अनुसूचित जाति/जनजाति
- अनुच्छेद 23 के अनुसार पीड़ित
- महिला व बच्चे
- मानसिक रूप से बीमार
- आपदा से ग्रसित
- औद्योगिक श्रमिक
- हिरासत में हो
- आय (राज्य द्वारा निर्धारित)

Plea Bargaining

- यह एक अमेरिकी अवधारणा है।
- इसमें न्यायालय के बाहर ही दोनों पक्षों में समझौता करवाया जाता है।
- 2005 में आपराधिक प्रक्रिया संहिता (CrPC) में संशोधन करके इसे वैधानिक बनाया गया।
- निम्नलिखित मामलों में प्ली बारगेनिंग की अनुमति नहीं है–
  (i) जिनमें 7 वर्ष या अधिक की सजा का प्रावधान हो।
  (ii) महिलाओं के विरूद्ध किए गए अपराध पर
  (iii) 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के विरूद्ध किए गए अपराध पर
  (iv) सामाजिक व आर्थिक सुधारों के विरूद्ध अपराध।

न्यायिक सक्रियता

- न्यायिक सक्रियता को 2 अर्थो में लिया जाता है–

(i) सकारात्मक न्यायिक सक्रियता

(ii) नकारात्मक न्यायिक सक्रियता

(i) सकारात्मक न्यायिक सक्रियता–

- इसके तहत न्यायपालिका अतिरिक्त सक्रियता दिखाते हुए अपने कार्यों को अधिक कुशलता व तीव्रता के साथ संपादित करती है।
- आरंभ में न्यायपालिका के कुछ स्वघोषित सिद्धान्त थे जैसे–
  - न्याय मांगने हेतु व्यक्ति को न्यायपालिका के पास जाना होगा।
  - प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के लिए ही न्याय मांग सकता है।
  - आरंभिक एवं अपीलीय मामलों में न्याय हेतु आवेदन की निश्चित प्रक्रिया का पालन करना होगा।
- 1979 ई. में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पी.एन. भगवती और वी.आर. कृष्ण अय्यर ने पहली बार जनहित याचिका को स्वीकार किया अर्थात जनता के हित में कोई भी जागरूक व्यक्ति याचिका दायर कर सकता है।
- भारत में पुष्पा कपिला हिंगोरानी (जनहित याचिका की जननी) ने सर्वप्रथम जनहित याचिका दायर की (हुसैनआरा खातून बनाम बिहार राज्य वाद)
- जनहित याचिका (PIL) न्यायिक सक्रियता का सबसे लोकप्रिय स्वरूप है।
- कालांतर में सभी न्यायालयों द्वारा जनहित याचिकाओं को स्वीकार किया जाने लगा।
- पोस्टकार्ड पर लिखी शिकायतों को भी जनहित याचिका के रूप में स्वीकार किया गया।
- समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचार को भी जनहित याचिका के रूप में स्वीकार किया गया अर्थात् न्यायाधीशों ने प्रसंज्ञान लेते हेतु जनहित याचिकाएँ स्वीकार की।
- इस प्रकार उपर्युक्त विवरण सकारात्मक न्यायिक सक्रियता है।

(ii) नकारात्मक न्यायिक सक्रियता–

- यदि न्यायपालिका अधिक सक्रिय हो जाए तथा यह विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप करने लगे तो इसे नकारात्मक न्यायिक सक्रियता कहते है।
- निम्नलिखित प्रावधानों के कारण नकारात्मक न्यायिक सक्रियता को प्रोत्साहन मिलता है–
  - संविधान की व्याख्या करने का अधिकार उच्चतम न्यायालय के पास है
  - न्यायिक पुनरावलोकन की अवधारणा।
  - अनुच्छेद 142 के तहत उच्चतम न्यायालय के निर्देशों का प्रवर्तन

न्यायिक सक्रियता के अनेक उदाहरण हैं–

- संविधान में संशोधन विधायिका कर सकती है किन्तु न्यायालय ने संविधान में अनेक संशोधन किए हैं–
  - (i) अनुच्छेद 21 प्राण व दैहिक स्वतंत्रता को अत्यधिक व्यापक किया। 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' को 'विधि की सम्यक प्रक्रिया' कर दिया।
  - (ii) अनुच्छेद 124 में कॉलेजियम की व्यवस्था नहीं थी किन्तु न्यायालय ने कॉलेजियम जोड़ दिया।

(iii) अनुच्छेद 368 में बुनियादी ढाँचे की अवधारणा का प्रावधान नहीं था किन्तु न्यायालय द्वारा इसे जोड़ दिया गया तथा संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति को सीमित कर दिया गया आदि।

न्यायपालिका विधायिका के आंतरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करती है जैसे–

(i) विश्वास प्रस्ताव के मामले में फ्लोर टेस्ट के आदेश देना।

(ii) सदन में कैमरे द्वारा लाइव कार्यवाही को लागू करना (झारखण्ड विधानसभा)

(iii) न्यायपालिका कार्यपालिका के कार्यों को भी अपने हाथ में ले लेती है तथा कार्यपालिका को निर्देश देती है;

- उत्तरप्रदेश में लोकायुक्त की नियुक्ति करना
- सी.बी.आई. को निर्देश देना
- 2G लाइसेंस निरस्त करना
- दिल्ली में पटाखों पर प्रतिबंध

न्यायिक सक्रियता के लाभ –

1. न्यायिक सक्रियता के कारण जनहित याचिका (PIL) की अवधारणा को स्वीकार किया गया है, जिससे समाज के अशिक्षित व कमजोर वर्गों को न्याय प्राप्त करने में मदद मिलती है।
2. विधायिका और कार्यपालिका की उदासीनता के कारण उत्पन्न रिक्त स्थान को न्यायपालिका ने भरा है।
3. न्यायपालिका ने विधायिका और कार्यपालिका की निरंकुशता को नियंत्रित किया है (भारी बहुमत विधायिका दल अब मूलभूत ढाँचे की अवधारणा के कारण संविधान में मनमाना संशोधन नहीं कर सकता) –

- नागरिकों के अधिकारों की रक्षा
- संविधान के आदर्शों की रक्षा

4. न्यायपालिका की सक्रियता ने समाज के आधुनिकीकरण तथा सामाजिक सुधारों को प्रोत्साहन दिया है। (उदाहरण – धारा–377, निजता का अधिकार, तीन तलाक, धारा–497 आदि)
5. न्यायालय ने पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक प्रभावी उपाय किए है।
6. न्यायिक सक्रियता के कारण लोगों की लोकतंत्र में आस्था बढी है। (अंतिम उम्मीद)
7. चुनावों में पारदर्शिता बढी है (प्रत्याशियों को सम्पूर्ण सूचना देनी होती है)
8. न्यायपालिका की प्रक्रिया सरल हुई है (लोकतांत्रिक, भागीदारीपूर्ण)।
9. सर्वोच्च न्यायालय संविधान के रक्षक के रूप में उभरा।

न्यायिक सक्रियता की कमियाँ

1. न्यायिक सक्रियता में न्यायपालिका अधिक सक्रिय हो जाती है जो 'शक्ति पृथक्करण' (बुनियादी ढाँचा) तथा 'शक्ति संतुलन' के सिद्धान्तों के विरूद्ध है (संविधान विरूद्ध)।
2. लोकतंत्र में वास्तविक शक्ति जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के पास होनी चाहिए किन्तु न्यायिक सक्रियता से वास्तविक शक्ति न्यायपालिका के पास आ जाती है।
3. न्यायिक सक्रियता द्वारा न्यायपालिका कार्यपालिका के कार्यों में अधिक हस्तक्षेप करती है जिससे कार्यपालिका की कुशलता में कमी आती है तथा कार्यों के निष्पादन की गति मंद हो जाती है।
4. न्यायिक सक्रियता आर्थिक सुधारों को लागू करने में बाधा उत्पन्न करती है, पर्यावरण को आधार बनाकर अनेक आर्थिक परियोजनाओं पर न्यायपालिका द्वारा रोक लगाई गई है जिससे देश के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा इसके कारण बैंकों की अनर्जक परिसंपत्तियाँ बढती है।
5. जनहित याचिकाओं की अधिक संख्या के कारण न्यायालयों का कार्यभार बढ रहा है।
6. सस्ती लोकप्रियता के लिए लोग जनहित याचिका दायर कर देते है जिसमें महत्वपूर्ण मुकदमों की उपेक्षा होती है।

भाग – XVIII
आपातकाल
अनुच्छेद 352–360

आपातकाल

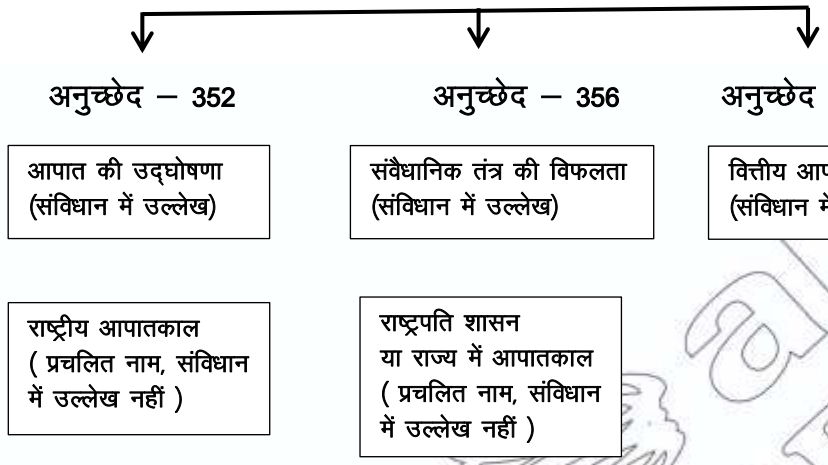

- **राष्ट्रीय आपातकाल :– अनुच्छेद–352**
- इसकी उद्घोषणा के तीन आधार है–
  (i) युद्ध (बाह्य आपात)
  (ii) बाह्य आक्रमण (बाह्य आपात)
  (iii) सशस्त्र विद्रोह ('आंतरिक अशांति'– 44वें संविधान सशोधन 1978 से पहले) {आंतरिक आपात}
- राष्ट्रपति इसकी उद्घोषणा करता है।
- **38वाँ संविधान संशोधन** – न्यायालय में चुनौती नहीं।
- **42वाँ संविधान संशोधन** – क्षेत्र विशेष में भी आपात।
- 'मंत्रिमण्डल' की 'लिखित सलाह' से ही राष्ट्रपति इसकी उद्घोषणा कर सकता है।
- 'मंत्रिमण्डल', 'लिखित सलाह' इन शब्दों का प्रयोग केवल इसी अनुच्छेद में किया गया है। इन्हें 44वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया था।
- राष्ट्रपति की उद्घोषणा के साथ ही राष्ट्रीय आपातकाल लागू हो जाता है।
- उद्घोषणा के बाद 'एक माह' के भीतर संसद के दोनों सदनों द्वारा 'विशेष बहुमत' (कुल सदस्यों का बहुमत + उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों का दो–तिहाई) से इसका अनुमोदन आवश्यक है अन्यथा एक माह के बाद यह स्वतः समाप्त हो जाता है।
- यदि लोक सभा भंग है तो केवल राज्य सभा का अनुमोदन। लोक सभा की पहली बैठक के 30 दिन के भीतर अनुमोदन।
- यदि संसद अनुमोदन करती है तो यह 6 माह तक लागू रहता है।
- 6 माह से आगे बढाने के लिए पुनः संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से अनुमोदन आवश्यक है। यदि इसी बीच लोक सभा भंग हो जाए तो नई लोक सभा की पहली बैठक के 30 दिन के भीतर अनुमोदन।
- एक बार में 6 माह के लिए आगे बढाया जा सकता है तथा इस प्रकार इस आपातकाल को अनेक बार आगे बढाया जा सकता है।

44वें संविधान संशोधन से पहले के प्रावधान–

- मंत्रिमण्डल की लिखित सलाह का प्रावधान नहीं था।
- 'सशस्त्र विद्रोह' के स्थान पर 'आंतरिक अशांति' शब्द प्रयुक्त होता था।
- संसद से आपातकाल के अनुमोदन हेतु 2 माह का समय निर्धारित था।
- संसद द्वारा साधारण बहुमत से आपातकाल के अनुमोदन का प्रावधान था।
- आपातकाल अनिश्चित काल तक लागू रह सकता था।

आपातकाल की समाप्ति–

- राष्ट्रपति आपातकाल को कभी भी समाप्त कर सकता है।
- यदि संसद इसका अनुमोदन ना करे तो एक माह बाद स्वतः समाप्त हो जाता है।
- अनुमोदन के 6 माह बाद यदि संसद इसका पुनः अनुमोदन ना करे तो यह स्वतः समाप्त हो जाता है।

44वें संविधान संशोधन द्वारा आपातकाल की समाप्ति के प्रावधान–

- लोक सभा द्वारा कभी भी साधारण बहुमत से प्रस्ताव पारित कर आपातकाल समाप्त।
- यदि लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा हो तो लोकसभा के 1/10 सदस्य राष्ट्रपति को सत्र बुलाने का आग्रह कर सकते है, तो राष्ट्रपति को 14 दिन के भीतर सत्र आहूत करना होगा।

राष्ट्रीय आपात काल के प्रभाव

1. केंद्र–राज्य संबंधों पर
   (i) कार्यपालिका संबंध
   (ii) विधायी संबंध
   (iii) वित्तीय संबंध
2. मौलिक अधिकारों पर

1. कार्यपालिका पर प्रभाव–

- संघ की कार्यपालिका राज्य की कार्यपालिका को सभी प्रकार के निर्देश दे सकती है।

2. विधायी प्रभाव–

- संसद राज्य सूची के सभी विषयों पर कानून बना सकती है। यह कानून आपातकाल की समाप्ति के बाद भी 6 माह तक लागू रहता है।
- राष्ट्रपति राज्य सूची के विषयों पर अध्यादेश जारी कर सकता है।
- जिन क्षेत्रों में आपातकाल लागू नहीं है, वहाँ के भी कार्यपालिका और विधायी संबंध प्रभावित होंगे।
- लोकसभा का कार्यकाल एक बार में एक वर्ष के लिए बढाया जा सकता है। (अनन्त काल तक)
  - 1976 – पाँचवीं लोक सभा का कार्यकाल 2 बार बढ़ाया गया। (1976–77 के दौरान)
- यदि आपातकाल समाप्त हो जाता है तो लोकसभा का बढ़ा कार्यकाल आपातकाल की समाप्ति के बाद केवल 6 माह तक ही रह सकता है।
- संसद द्वारा राज्य विधानसभा का कार्यकाल भी बढ़ाया जा सकता है। (लोक सभा के समान)

3. वित्तीय प्रभाव–

- राष्ट्रपति केन्द्रीय करों में राज्यों को दी जानेवाली हिस्सेदारी में कटौती/समाप्त कर सकता है।
- केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान में कटौती की जा सकती है।
- ये वित्तीय संशोधन उस वित्तीय वर्ष के अन्त तक लागू रहेंगे।
- राष्ट्रपति के ऐसे किसी भी आदेश का दोनों सदनों से अनुमोदन आवश्यक है।

4. **मूल अधिकारों पर प्रभाव–**

अनुच्छेद 358 – राष्ट्रीय आपातकाल के लागू होने पर अनुच्छेद–19 स्वतः निलम्बित हो जायेगा।
44वां संविधान संशोधन – अनुच्छेद 19 युद्ध व बाह्य आक्रमण के आधार पर लागू आपातकाल में ही निलम्बित होगा, सशस्त्र विद्रोह के आधार पर लागू आपातकाल में नहीं।

- **अनुच्छेद 359** – राष्ट्रपति यदि चाहे तो अन्य मूल अधिकारों को भी निलम्बित कर सकता है।
  - 44वां संविधान संशोधन – अनुच्छेद 20 तथा अनुच्छेद 21 को निलम्बित नहीं किया जा सकता।
- मूल अधिकार क्षेत्र विशेष में भी निलम्बित किए जा सकते हैं।
- मूल अधिकारों के निलम्बन का संसद से अनुमोदन आवश्यक है।
- अब तक तीन बार राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की गई है–
  (i) 1962–1967 – बाह्य आक्रमण के आधार पर (चीनी आक्रमण)
  (ii) 1971–1977 – बाह्य आक्रमण के आधार पर (पाकिस्तानी आक्रमण)
  (iii) 1975–1977 – आंतरिक अंशान्ति के आधार पर

राष्ट्रपति शासन/राज्य आपात/संवैधानिक तंत्र का विफल होना

- **अनुच्छेद 355 – 'राष्ट्रपति शासन का आधार'**
- संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह बाह्य आक्रमण तथा आंतरिक अशांति से प्रत्येक राज्य की सुरक्षा करे तथा प्रत्येक राज्य की सरकार को संविधान के उपबंधों के अनुरूप चलाया जाना सुनिश्चित करें।
- अनुच्छेद 355 केन्द्र सरकार को यह आधार प्रदान करता है कि वह अनुच्छेद 352 तथा अनुच्छेद 356 के तहत विशेष शक्तियाँ प्राप्त करता है ताकि यह राज्यों की सुरक्षा कर सके।
- **अनुच्छेद 356** – यदि राष्ट्रपति इस बात से आश्वस्त हो कि राज्य की सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुरूप कार्य नहीं कर रही है तो राज्य में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा की जा सकती है।
- **अनुच्छेद 365** – कुछ मामलों में संघ राज्यों को निर्देश दे सकता है। यदि राज्य इन निर्देशों का पालन नहीं करते है तो राज्य में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा की जा सकती है।
- राष्ट्रपति की उद्घोषणा के बाद संसद के दोनों सदनों द्वारा साधारण बहुमत से 2 माह के भीतर इसका अनुमोदन आवश्यक है।
- यदि दोनों सदन इसका अनुमोदन कर देते हैं तो यह 6 माह तक लागू रहता है। 6 माह पश्चात् दोनों सदनों द्वारा पुनः अनुमोदन से इसे आगे बढाया जा सकता है।
- इसकी अधिकतम अवधि 1 वर्ष रहती है।
- निम्नलिखित परिस्थिति में इसकी अवधि 1 वर्ष से अधिक हो सकती है–
  1. यदि राष्ट्रीय आपातकाल लागू हो।
  2. यदि निर्वाचन आयोग चुनाव कराने में असमर्थता जाहिर करे।
- किन्तु किसी भी परिस्थिति में राष्ट्रपति शासन की अवधि तीन वर्ष से अधिक नहीं हो सकती है।
- राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति शासन की घोषणा को, किसी भी समय परवर्ती घोषणा द्वारा वापस लिया जा सकता है। ऐसी घोषणा के लिए संसद की अनुमति आवश्यक नहीं होती।

राष्ट्रपति शासन के प्रभाव

- राज्य की मंत्रिपरिषद को भंग कर दिया जाता है तथा राज्य की कार्यपालिकीय शक्तियाँ राष्ट्रपति के पास आ जाती है जिन्हें वह अपने प्रतिनिधि (राज्यपाल) को सौंप देता है।
- राज्य की विधायिका को भंग किया जा सकता है। यदि भंग कर दिया जाता है तो राज्य की समस्त विधायी शक्तियाँ संसद के पास आ जाती है।
- संसद राज्य के विधेयक एवं बजट पारित करती है।

- अब तक 128 बार अनुच्छेद 356 का प्रयोग हो चुका है।
- उत्तरप्रदेश – 10 बार (सर्वाधिक)।
- बिहार – 9 बार।
- केरल, पंजाब, ओड़िशा, मणिपुर – 8 बार।
- सबसे पहले प्रयोग – पंजाब में।
- 3 वर्ष से अधिक समय तक प्रयोग – पंजाब (1987–92), जम्मू–कश्मीर (एक बार में सबसे लम्बे समय तक 1990–96, 2061 दिन)
- राजस्थान – 4 बार प्रयोग– 1967, 1977, 1980, 1992
- छत्तीसगढ़, तेलंगाना – एक बार भी नहीं।

राष्ट्रपति शासन के दुरूपयोग –

एस. आर. बोम्मई वाद, 1994

इसमें उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू करने के संबंध में निम्नलिखित निर्णय दिए–

- अनुच्छेद 356 का प्रयोग राजनीतिक दुर्भावना से नहीं किया जाना चाहिए।
- यदि राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल होता है तो ही इस अनुच्छेद का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- संवैधानिक तंत्र के विफल होने के स्पष्ट व तथ्यात्मक प्रमाण होने चाहिए जो किसी भी सामान्य व्यक्ति को समझ में आ सके।
- जब तक राष्ट्रपति शासन का अनुमोदन संसद के दोनों सदन नहीं करते हैं तब तक राज्य की विधानसभा को भंग नहीं किया जाना चाहिए।
- राष्ट्रपति शासन लागू करने के कारणों का न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकता है।
- यदि दुर्भावना से राष्ट्रपति शासन लगाया जाए तो न्यायालय राज्य की मंत्रिपरिषद तथा विधानसभा को पुनः स्थापित कर सकता है।
- यदि लोकसभा के आम चुनावों में केंद्र में किसी अन्य राजनीतिक दल की जीत होती है तो इस आधार पर राष्ट्रपति शासन नहीं लगाया जा सकता।
- न्यायालय ने माना कि 1992 में बीजेपी शासित राज्यों में जो राष्ट्रपति शासन लगाया गया था, वो उचित था क्योंकि ये सरकारें पंथनिरपेक्षता का पालन नहीं कर रही थी।

अनुच्छेद 360 – वित्तीय आपातकाल

- यदि देश में आर्थिक संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो राष्ट्रपति वित्तीय आपात की उद्घोषणा कर सकता है।
- उद्घोषणा के 2 माह के भीतर संसद के दोनों सदनों द्वारा साधारण बहुमत से इसका अनुमोदन किया जाना चाहिए।
- उद्घोषणा के अनुमोदन के बाद यह असीमित समय तक लागू रहता है जब तक कि इसे वापस ना लिया जाए।

वित्तीय आपातकाल के प्रभाव –

- केन्द्रीय करों में राज्यों को दी जाने वाली हिस्सेदारी में कटौती की जा सकती है।
- राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान में कटौती की जा सकती है।
- केन्द्र राज्यों को वित्तीय निर्देश दे सकता है।
- केन्द्र व राज्यों के कर्मचारियों के वेतन–भत्तों में कटौती की जा सकती है।
- जिनके वेतन संचित निधि पर भारित है उसमें भी कटौती की जा सकती है।
- राज्य के धन विधेयक को राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रखा जा सकता है।

संघवाद

संघात्मक व्यवस्था	एकात्मक व्यवस्था
• लिखित संविधान	• लिखित या अलिखित प्रकार का संविधान
• संविधान की सर्वोच्चता	• संविधान की सर्वोच्चता नहीं
• शक्तियों का स्रोत – संविधान	• शक्तियों का स्रोत – संविधान या केन्द्र
• कठोर संविधान	• लचीला संविधान
• अवशिष्ट शक्तियाँ – राज्य	• अवशिष्ट शक्तियाँ – केन्द्र
• न्यायिक पुनरावलोन का प्रावधान	• न्यायिक पुनरावलोन का प्रावधान नहीं
• दोहरा संविधान (केन्द्र–राज्य का पृथक)	• एकल संविधान
• दोहरी नागरिकता	• एकल नागरिकता
• द्विसदनीय विधायिका	• द्विसदनीय/एकसदनीय विधायिका
• दोहरी कार्यपालिका	• एकल कार्यपालिका
• दोहरी न्यायपालिक	• एकल न्यायपालिका
• राज्यों के पास अधिक शक्तियाँ	• केन्द्र के पास अधिक शक्तियाँ
उदाहरण – यू.एस.ए.	उदाहरण – ब्रिटेन

भारतीय संविधान की परिसंघीय विशेताएँ

- लिखित संविधान
- संविधान की सर्वोच्चता
- संविधान शक्तियों का स्रोत है अर्थात संविधान संघ एवं राज्य दोनों को शक्ति प्रदान करता है।
- केन्द्र–राज्य संबंधों में संशोधन के मामले में भारतीय संविधान कठोर है।
- न्यायिक पुनरावलोकन का प्रावधान है जिस कारण संघ मनमाना संशोधन नहीं कर सकता और ना ही मनमाना विधेयक पारित कर सकता है।
- दोहरी विधायिका संसद, राज्य विधानमंडल
- दोहरी कार्यपालिका – केन्द्र व राज्यों की अलग–अलग सरकार

भारतीय संविधान की एकात्मक विशेषताएँ

- एकल संविधान अर्थात् राज्यों के पृथक संविधान नहीं है।
- एकल नागरिकता
- केन्द्र के पास अधिक विधायी शक्तियाँ है (संघ सूची में राज्य सूची से अधिक विषय)
- अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के पास है
- समवर्ती सूची पर संघ को प्रधानता दी गई है।
- केन्द्र राज्य सूची के विषय पर अतिक्रमण कर सकता है– (अनुच्छेद–249, 250, 252, 253)
- राज्यों में राज्यपाल की नियुक्ति केन्द्र के द्वारा की जाती है।
- राज्यपाल राज्य विधानमण्डल के विधेयक को राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रख सकता है।
- अनेक मामलों में केन्द्र राज्यों को निर्देश दे सकता है (अनुच्छेद – 256, 257, 350(क), 339, 347)
- राज्यों में केन्द्रीय बलों की नियुक्ति का प्रावधान

- मुख्यमंत्री के विरूद्ध जाँच आयोग।
- वित्तीय संसाधन केन्द्र के पास अधिक है।
- निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति केन्द्र द्वारा।
- भारत के नियन्त्रक–महालेखा परीक्षक की नियुक्ति केन्द्र द्वारा की जाती है जो केन्द्र व राज्य दोनों का लेखांकन व अंकेक्षण करता है।
- एकल न्यायपालिका
- राज्यसभा में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व (अमेरिका की भाँति) नहीं दिया गया है बल्कि राज्यों को राज्यसभा में जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया है।
- तीनों प्रकार के आपातकाल (अनुच्छेद – 352, 356, 360) में भारतीय संविधान एकात्मक हो जाता है।
- अखिल भारतीय सेवाओं का प्रबंधन केन्द्र द्वारा।
- अनुच्छेद 3 के तहत संघ नए राज्य का गठन तथा राज्यों के सीमा, क्षेत्र, नाम में बदलाव कर सकता है।
- लचीला संविधान – संविधान में अनेक संशोधन साधारण बहुमत से किए जा सकते हैं तथा अधिकांश संविधान संशोधनों में राज्यों की सहमति आवश्यक नहीं है।
- उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में 'फेडरल' (संघात्मक) व 'यूनियन' (एकात्मक) दोनों की विशेषताएँ है इसलिए 'अर्द्धपरिसंघीय' कहा जाता है।
- संविधान में कहीं भी 'फेडरल' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है बल्कि सभी जगह 'यूनियन' शब्द का प्रयोग किया गया है।
- डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार शांतिकाल में भारतीय संविधान संघीय (Federal) है तथा आपातकाल के दौरान यह एकात्मक (Union) हो जाता है।
- विभिन्न आयोगों सरकारिया आयोग, पुंछी आयोग व उच्चतम न्यायालय ने भी भारतीय संविधान की मूल प्रकृति को संघीय (Federal) माना है।
- फेडरल स्ट्रक्चर (संघीय संरचना) को संविधान का बुनियादी ढाँचा माना गया है।

भारत में संघवाद (Federalism) के विकास के कारण

1. क्षेत्रीय दलों का उदय – 1967 में अनेक क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ।
2. 1977 में जनता पार्टी का उदय– इसमें क्षेत्रीय नेता अधिक प्रभावशाली थे।
3. गठबंधन की राजनीति।
4. 1991 के आर्थिक सुधार–
   (i) राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता कम हुई।
   (ii) राज्यों के वित्तीय संसाधन बढे।
5. केन्द्रीय करों में राज्यों की हिस्सेदारी अधिक होना।
6. न्यायिक सक्रियता
7. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की सक्रियता
8. नीति आयोग का गठन– नीति निर्माण में राज्यों की भूमिका बढ़ी है।

केन्द्र–राज्य संबंध

विधायी व प्रशासनिक संबंध

अनुच्छेद–245 – 'संसद के द्वारा पारित की गई विधियाँ'

- संसद के द्वारा पारित की गई विधियाँ भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र में अथवा उसके किसी क्षेत्र विशेष में लागू हो सकती है।
- राज्य विधायिका द्वारा पारित की गई विधियाँ राज्य के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र में अथवा उसके किसी क्षेत्र विशेष में लागू हो सकती है।
- संसद द्वारा पारित की गई विधियाँ भारत से बाहर रहने वाले भारतीय नागरिकों पर भी लागू हो सकती है। अनुच्छेद 245 (2)
- राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित विधि विशेष स्थिति में राज्य के बाहर भी लागू हो सकती है।
  उदाहरण– न्यास, गुजरात का लैंड सीलिंग अधिनियम, बॉम्बे स्टेट v/s आर.एम.डी.सी. 1957

अपवाद–

- अनुच्छेद 240 – राष्ट्रपति यह आदेश जारी कर सकता है कि कोई संसदीय विधि या उस विधि का कोई भाग संघ शासित प्रदेशों में लागू नहीं होगा। 4 संघ शासित प्रदेशों में (अण्डमान निकोबार, दमन–दीव और दादरा–नगर हवेली, लक्षद्वीप, लद्दाख)
- राष्ट्रपति यह आदेश जारी कर सकता है कि संसद द्वारा पारित किया गया कोई अधिनियम या उस अधिनियम का कोई भाग निम्नलिखित राज्यों के स्वायत्तशासी जिलों में निष्प्रभावी होगा–
  (i) मेघालय (ii) त्रिपुरा (iii) मिजोरम
- राज्यपाल यह निर्देश दे सकता है कि कोई संसदीय विधि या उसका कोई भाग राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों में (जो 5वीं अनुसूची में दिये गये हैं) में लागू नहीं होगा।
- असम का राज्यपाल यह निर्देश दे सकता है कि संसद द्वारा पारित किया गया कोई अधिनियम अथवा उसका कोई भाग छठी अनुसूची के जनजातीय क्षेत्रों (स्वायत्तशासी जिलों) में लागू नहीं होगा।

अनुच्छेद 246 – 'संघ व राज्यों के मध्य विषयों का विभाजन'

- संघ सूची या राज्य सूची या समवर्ती सूची के द्वारा केन्द्र व राज्यों के मध्य विषयों का विभाजन किया गया है।
- यह संविधान की सातवीं अनुसूची में उल्लेखित है।
- संघ सूची व राज्य सूची के बीच अतिव्याप्ति (Overlapping) है तो संघ सूची को प्रधानता दी जाएगी। परिसंघ की सर्वोच्चता का सिद्धान्त कहते है।

संघ सूची	राज्य सूची	समवर्ती सूची
आरम्भ में – 97 वर्तमान में – 98 रक्षा, सेना, विदेशी कार्य, युद्ध शांति, रेल, वायुमार्ग, डाक व तार, टेलीफोन, करेंसी व सिक्के, भारतीय रिजर्व बैंक, नागरिकता, परमाणु ऊर्जा, संयुक्त राष्ट्र संघ, बीमा, प्रत्यर्पण (Extradition), शेयर बाजार, राष्ट्रीय राजमार्ग, पेटेंट, बैंक, विदेशी ऋण, बाट व मापों के मानक नियत करना	आरंभ में – 66 वर्तमान में – 59 लोक व्यवस्था, पुलिस, स्थानीय शासन, कृषि, पशुधन, कारागार, नाट्यशाला, संपदा शुल्क, द्यूत, बाजार, मेले, साहूकारी, गैस, लोक स्वास्थ्य, मादक (लिकर)	आरम्भ में – 47 वर्तमान में – 52 विवाह, तलाक, वन, दिवाला, न्यास व न्यासी, विद्युत कारखाने, कीमत नियन्त्रण, जन्म, मृत्यु पंजीकरण, राष्ट्रीय जलमार्ग, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा

न्यायालय के विनिश्चय

- संघ सूची की प्रधानता
- प्रत्येक विषय को व्यापक अर्थ देना
- आनुषंगिक विषय व समानुषंगी विषय भी आते हैं; जैसे – 1. भूमि 2. कर
- समन्वयकारी निर्वचन
- सार एवं तत्व (बंगाल साहूकारी अधिनियम, मुम्बई मद्यनिषेध अधिनियम)

अनुच्छेद 247 –

- संसद अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना कर सकती है।

अनुच्छेद 248 –

- अवशिष्ट शक्तियाँ संघ को प्रदान की गई है। (संघ, राज्य तथा समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों के अतिरिक्त विषय) [ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, भारत सरकार अधिनियम 1935 (इसमें अवशिष्ट शक्तियाँ वायसराय के पास थी।)]

अनुच्छेद 249 –

- राज्य सभा दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार दे सकती है। यह कानून 1 वर्ष तक लागू रहेगा तथा राज्य सभा पुनः प्रस्ताव पारित करके इसे 1 वर्ष से अधिक समय के लिए बढ़ा सकती है।

अनुच्छेद 250 –

- राष्ट्रीय आपातकाल के समय संसद राज्य सूची के विषय पर कानून बना सकती है।
- यह कानून आपातकाल की समाप्ति के बाद भी 6 माह तक लागू रहेगा।

अनुच्छेद 252–

- यदि दो या अधिक राज्य केन्द्र से आग्रह करे तो संसद राज्य सूची के विषय पर कानून बना सकती है।
- यह कानून उन्हीं राज्यों पर लागू होगा जिन्होंने ऐसा आग्रह किया है।

उदाहरण–

- वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972
- जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974
- मानव अंग प्रत्यारोपण अधिनिमय, 1994

अनुच्छेद 253 –

- किसी अन्तर्राष्ट्रीय संधि या समझौते को लागू करने के लिए संसद राज्य सूची के विषय पर कानून बना सकती है।

उदाहरण–

- संयुक्त राष्ट्र (विशेषाधिकार एवं प्रतिरक्षा) अधिनियम, 1947
- जेनेवा कन्वेंशन अधिनियम,1960
- यान–हरण निवारण अधिनियम, 1982
- बौद्धिक संपदा एवं पर्यावरण संबंधी कानून

अनुच्छेद 251

- यदि राज्य सूची के किसी विषय पर संसद और राज्य विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों के मध्य टकराव है तो संसद द्वारा पारित अधिनियम प्रभावी होगा।

अनुच्छेद 254

- यदि समवर्ती सूची पर संसद व राज्य विधायिका दोनों कानून बनाते हैं तथा इन कानूनों में विरोधाभास है तो संसदीय कानून प्रभावी होगा।
- यदि राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई विधि संसदीय विधि के विरूद्ध थी और उसे राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रखा गया था तथा उसे सहमति दे दी गई थी तो उस राज्य में वह कानून लागू होगा लेकिन संसद नई विधि द्वारा राज्य विधि को निरस्त कर सकती है।

अनुच्छेद 255

- यदि किसी विधेयक पर राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल की पूर्वानुमति की आवश्यकता थी लेकिन पूर्वानूमति लिए बिना विधेयक को पारित कर दिया गया है तो केवल इस आधार पर वह अधिनियम अविधिमान्य नहीं होगा।
- संघ के पास विधायी शक्तियाँ अधिक है तथा अवशिष्ट शक्तियाँ भी संघ को दी गई है तथा अनेक अवसरों पर संघ राज्य की विधायी शक्तियों पर अतिक्रमण कर सकता है किन्तु राज्य विधायिका संघ सूची के विषय पर अतिक्रमण नहीं कर सकती।

अन्य मामलों में संघ की विधायी श्रेष्ठता/सर्वोच्चता–

- राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो तो संसद उस राज्य के लिए राज्य सूची के विषय पर कानून बना सकती है।
- राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियम को राज्यपाल राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रख सकता है।
- किसी संस्था को राष्ट्रीय महत्व की घोषित करके उसके लिए भी संसद विधि बना सकती है।
- राज्य सूची के कुछ विषयों पर राज्य विधान मण्डल में विधेयक पेश करने से पहले राष्ट्रपति की पूर्वानुमति आवश्यक होती है जैसे– यदि विधेयक व्यापार एवम् वाणिज्य की स्वतंत्रता पर कोई रोक लगाता है।
- वित्तीय आपातकाल के समय राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकता है कि राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित धन विधेयक व अन्य वित्त विधयेक राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रखें।
- संघ के पास विधायी शक्तियाँ अधिक है तथा अवशिष्ट शक्तियाँ भी संघ को दी गई है तथा अनेक अवसरों पर संघ राज्य की विधायी शक्तियों पर अतिक्रमण कर सकता है किन्तु राज्य विधायिका संघ सूची के विषय पर अतिक्रमण नहीं कर सकती।

प्रशासनिक संबंध

अनुच्छेद 256–263

- भारत में दोहरी कार्यपालिका है अर्थात् राज्यों की कार्यपालिका संघ की कार्यपालिका के अधीन नहीं है, बल्कि वह स्वायत्त है।
- **अनुच्छेद 73** – संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार।
- **अनुच्छेद 162** – राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार।

किन्तु निम्नलिखित मामलों में संघीय कार्यपालिका राज्यों को निर्देश दे सकती है–

- **अनुच्छेद 256** – संघ राज्यों को यह निर्देश दे सकता है कि संसद द्वारा पारित किए गए अधिनियमों को राज्य में लागू करें।
- **अनुच्छेद 257** – कुछ मामलों में संघ का राज्यों पर नियन्त्रण
  - संघ राज्यों को निर्देश दे सकता है कि राज्य अपनी कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग इस प्रकार करें कि संघ की कार्यपालिका शक्तियों के साथ टकराव ना हो।
  - संघ राज्यों में रेलमार्ग, राष्ट्रीय राजमार्ग आदि के रखरखाव व संरक्षण का निर्देश भी राज्यों को दे सकता है।
- **अनुच्छेद 262** – अन्तर्राज्यीय नदी जल विवाद (सांविधिक)
  - ऐसे विवादों के समाधान के लिए संसद अधिनियम के माध्यम से प्राधिकरण का गठन करेगी। ऐसे मामलों को सीधे उच्चतम न्यायालय में चुनौती नहीं जा सकेगी।
- **अनुच्छेद 350(क)** – केन्द्र राज्यों को यह निर्देश दे सकता है कि भाषायी अल्पसंख्यकों को उनकी आरंभिक शिक्षा मातृभाषा में दिए जाने का प्रबंध करें।
- **अनुच्छेद 347** – यदि किसी राज्य में किसी भाषा को बोलने वाले लोग पर्याप्त संख्या में रहते है तथा वे राष्ट्रपति से मांग करते हैं कि प्रशासन में उनकी भाषा का प्रयोग किया जाए। और राष्ट्रपति उनकी मांग से संतुष्ट है तो वह राज्यों को यह निर्देश दे सकता है कि उस भाषा का प्रयोग प्रशासन में किया जाए (सम्पूर्ण राज्य में अथवा उसके किसी क्षेत्र विशेष में)
- **अनुच्छेद 339** – केन्द्र राज्यों को यह निर्देश दे सकता है कि अनुसूचित जाति/ जनजाति के विकास के लिए राज्य विशेष योजनाएँ व कार्यक्रम बनाए।
- **अनुच्छेद 244** – केन्द्र राज्यों को निर्देश दे सकता है कि वह अनुसूचित व जनजातीय क्षेत्रों के विकास के लिए विशेष योजनाएँ व कार्यक्रम बनाए।
- **अनुच्छेद 275** – इसके तहत केन्द्र राज्यों को अनुदान प्रदान करता है और अनुदान के लिए वह विशेष शर्तें निर्धारित करता है, अतः ये शर्तें एक प्रकार से निर्देश ही हैं।
- **अनुच्छेद 311** – इसके तहत अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों को विशेष संरक्षण दिया गया है।
  - इनके वेतन भत्तें, सेवा शर्तें केन्द्र निर्धारित करता है।
  - यह राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर रहते है।
  - राज्य सरकार इनके विरूद्ध कार्यवाही नहीं कर सकती जबकि राज्यों का पूरा प्रशासन इनके द्वारा ही संचालित किया जाता है।
- **अनुच्छेद 356** – इसके तहत केन्द्र राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है तथा राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्तियों को अपने हाथ में ले सकता है।
- **अनुच्छेद 352** – राष्ट्रीय आपातकाल के समय केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को निर्देश दे सकती है।

- **अनुच्छेद 360** – वित्तीय आपातकाल के समय केन्द्र सरकार राज्यों को वित्तीय निर्देश दे सकती है।
- राज्यों की कार्यपालिका का प्रमुख राज्यपाल होता है और राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
- केन्द्र सरकार मुख्यमंत्री के विरूद्ध जाँच आयोग का गठन कर सकती है।
- केन्द्र सरकार राज्यों में कानून व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सशस्त्र केन्द्रीय बलों को राज्य में नियुक्त कर सकता है। (राज्यों की सहमति के बिना भी)
- **लोक सेवा आयोग के सन्दर्भ में –**
  - राज्य लोक सेवा आयोग – अध्यक्ष एवं सदस्यों को केवल राष्ट्रपति हटा सकता है।
  - संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग – दो या अधिक राज्यों के विधानमंडलों के आग्रह पर संसद द्वारा गठन किया जा सकता है।
  - संघ लोक सेवा आयोग राज्यपाल के आग्रह एवं राष्ट्रपति की अनुमति से राज्य को सेवा प्रदान कर सकता है।
  - दो या अधिक राज्यों के आग्रह पर संघ लोक सेवा आयोग संयुक्त भर्ती की योजनाओं के क्रियान्वयन आदि पर राज्यों की सहायता कर सकता है।

अनुच्छेद 263 – अन्तर्राज्यीय परिषद (अस्थायी संवैधानिक निकाय)

संघटन – राष्ट्रपति के द्वारा गठन
अध्यक्ष – प्रधानमंत्री (पदेन अध्यक्ष)
सदस्य – (i) 6 कैबिनेट मंत्री (गृहमंत्री सहित)
(ii) सभी राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश के मुख्यमंत्री
(यदि राष्ट्रपति शासन तो राज्यपाल सदस्य)
(iii) केन्द्र शासित प्रदेश के प्रशासक (जिस केन्द्र शासित प्रदेश के मुख्यमंत्री ना हो)
अभी तक कुल 12 बैठक
गठन – सरकारिया आयोग की सिफारिश पर 1990 में
उद्देश्य – सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना।
कार्य – राज्यों के मध्य अथवा केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवादों का समाधान करना और सहयोग को बढ़ावा देना।

क्षेत्रीय परिषद

- सांविधिक संस्था
- राज्य पुनर्गठन अधिनियम – 1956 के माध्यम से गठित
- देश में कुल 6 = 5+1 (पूर्वोत्तर परिषद – अक्टूबर, 1971)
- राजस्थान उत्तरी क्षेत्रीय परिषद में शामिल किया गया।

वित्तीय संबंध

- **अनुच्छेद 266** – संचित निधि, लोक लेखा
- **अनुच्छेद 267** – आकस्मिक निधि

वित्तीय संबंध

- **अनुच्छेद 268** – वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं किन्तु राज्य इन्हें वसूलते और उपयोग में लेते हैं।
  (i) स्टाम्प शुल्क
- **अनुच्छेद 269** – वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं, वसूल किए जाते हैं तथा राज्यों को दे दिए जाते हैं।
  (i) अन्तर्राज्यीय व्यापार व परिवहन पर कर।
- **अनुच्छेद 269 (क)** – IGST

अनुच्छेद 270 –

- वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए व वसूले जाते हैं तथा वित्त आयोग की अनुशंसा के आधार पर संघ और राज्यों में बांट दिए जाते हैं।
- अनुच्छेद 268, 269, 271 में दिए गए करों के अतिरिक्त शेष सभी कर इसके अंतर्गत आते हैं; जैसे– जीएसटी, आयकर, सीमा शुल्क आदि।
- **80वां संविधान संशोधन, 2000** – निगम कर तथा सीमा शुल्क को अनुच्छेद 272 से हटा कर अनुच्छेद 270 के अन्तर्गत रखा गया अर्थात इन्हें राज्यों से साझा किया गया।
- **अनुच्छेद 271** – संघ के प्रयोजन के लिए करों (अनुच्छेद 269 व 270 में शामिल कर) पर अधिभार लगाना।
- **अनुच्छेद 275** – केन्द्र के द्वारा राज्यों को दिया जाने वाला अनुदान।
  (i) सामान्य अनुदान
  (ii) विशेष अनुदान
- **अनुच्छेद 282** – विवेकाधीन अनुदान
- **अनुच्छेद 279ए** – जीएसटी परिषद

अनुच्छेद–280 – 'वित्त आयोग'

- गठन – राष्ट्रपति द्वारा प्रति 5 वर्ष पश्चात।
- संघटन – 1 अध्यक्ष व 4 सदस्य।
- संसद द्वारा योग्यता का निर्धारणः
  - अध्यक्ष – सार्वजनिक मामलों का जानकार।

  सदस्य –
  (i) आर्थिक मामलों का अनुभवी
  (ii) विधिक मामलों का अनुभवी (उच्च न्यायालय न्यायाधीश की योग्यताएँ)
  (iii) नागरिक सेवा का अनुभवी (प्रशासन व वित्तीय विशेषज्ञ)
  (iv) सरकारी लेखा सेवा का अनुभवी

कार्य–

(i) अनुच्छेद 270 के तहत आने वाले करों में राज्यों की हिस्सेदारी तय करना।
(ii) राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान के बारे में अनुशंसा करना।
(iii) राष्ट्रपति द्वारा दिया गया कोई अन्य कार्य।

❖ **15वाँ वित्त आयोग –** (2021–22 से 2025–26)

- अध्यक्ष– एन. के. सिंह
- सदस्य– अजय नारायण झा, प्रो. अनूप सिंह, डॉ. अशोक लाहिरी, डॉ. रमेश चन्द

केन्द्र व राज्य के मध्य विवादित मुद्दे

- अनुच्छेद 356 का दुरूपयोग
- राज्यपाल की नियुक्ति एवं हटाना
- राज्यपाल का भेदभावपूर्ण व्यवहार
- अखिल भारतीय सेवाओं का प्रबंधन
- वित्तीय संसाधनों का भेदभावपूर्ण वितरण
- राज्य सूची के विषयों पर संघ का अतिक्रमण
- राज्यों की सहमति के बिना राज्यों में केन्द्रीय बलों को तैनात करना।
- मुख्यमंत्री के विरूद्ध जाँच आयोग
- अनुच्छेद 3 का प्रयोग (राज्यों का पुनर्गठन करना)
- संघ के पास अधिक विधायी शक्तियाँ
- दूरसंचार के साधनों पर केन्द्र का अधिकार
- राज्यपाल द्वारा राज्य के विधेयक को राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रखना।

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग

- इसका गठन 1966 में किया गया।
- इसके प्रथम अध्यक्ष मोरारजी देसाई थे जिनके त्याग पत्र के पश्चात् के. हनुमंतैया दूसरे अध्यक्ष बने।
- इसने 1969 में अपनी सिफ़ारिशें दी।
- केन्द्र–राज्य संबंधों में सुधार हेतु इसने 22 सिफारिशें की थी–
  - अनुच्छेद 263 के तहत अन्तरराज्यीय परिषद् का गठन किया जाए।
  - निष्पक्ष व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त किया जाए।
  - राज्यों को अधिक शक्तियाँ दी जानी चाहिए।
  - केन्द्र पर निर्भरता कम करने हेतु राज्यों को अधिक वित्तीय संसाधन दिए जाने चाहिए।
  - राज्यों में केन्द्रीय बलों की तैनात करने की संघ की शक्ति यथावत् बनी रहनी चाहिए।
- इस आयोग की सिफारिशों पर केन्द्र सरकार द्वारा कोई कदम नहीं उठाया गया।

सरकारिया आयोग – रनजीत सिंह सरकारिया

- इसका गठन 1983 में किया गया।
- इसने 1987 में सिफारिशें दी।
- इसके द्वारा कुल 247 सिफारिशें दी गई।
- **राज्यपाल की नियुक्ति के समय मुख्यमंत्री से परामर्श किया जाना चाहिए तथा यह प्रावधान संविधान में जोड़ा जाना चाहिए।**
  - प्रतिष्ठित व्यक्ति हो।
  - सत्ताधारी दल का न हो।
  - राज्य से बाहर का हो।
  - सक्रिय राजनीति में नहीं, यदि राजनीति में हो तो कूलिंग ऑफ पीरियड
  - राज्य की राजनीति में नहीं।
  - अल्पसंख्यक को अवसर।
  - उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष से परामर्श
- **राज्यपाल को बिना किसी ठोस कारण के कार्यकाल (5 वर्ष) की समाप्ति से पूर्व नहीं हटाया जाना चाहिए। और, यदि हटाया जाए तो–**
  - हटाने का कारण बताना।
  - दोनों सदनों में अपना पक्ष रखने का अवसर देना।
- **यदि त्रिशंकु विधानसभा हो... चार विकल्प**
  (i) चुनाव पूर्व गठबंधन
  (ii) यदि सबसे बड़ा दल दावा करे।
  (iii)चुनाव बाद का गठबंधन(सरकार में शामिल)
  (iv) चुनाव पश्चात गठबंधन (बाहर से समर्थन)
- **अनुच्छेद 356 का प्रयोग अंतिम विकल्प के रूप में ही किया जाना चाहिए तथा इसका दुरूपयोग ना किया जाए।**
  - राज्यपाल की रिपोर्ट के बाद ही घोषणा की जानी चाहिए।
  - रिपोर्ट संक्षिप्त, स्पष्ट, सभी तथ्य व आधार उल्लिखित।
  - रिपोर्ट – मीडिया
  - कार्यकारी सरकार को मौका देना।
  - संसद द्वारा राष्ट्रपति शासन के अनुमोदन के बाद ही विधान सभा को भंग करना।
- अनुच्छेद 263 के तहत स्थाई अन्तर्राज्यीय परिषद् का गठन किया जाए।
- अखिल भारतीय सेवाओं को अधिक मजबूत बनाया जाए तथा ऐसी कुछ और अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन किया जाए।
- राष्ट्रीय विकास परिषद् का नाम बदलकर 'राष्ट्रीय विकास एवं आर्थिक परिषद्' किया जाए।
- क्षेत्रीय परिषदों को और अधिक सक्रिय किया जाना चाहिए।
- विधान परिषद् के लिए प्रस्ताव पारित होता है तो निश्चित समय में संसद के समक्ष रखना।
- अनुच्छेद 163 के तहत् दी गई विवेकाधीन शक्तियाँ।

- राज्यों में केन्द्रीय बलों को तैनात करने की केन्द्र की शक्ति यथावत् रहनी चाहिए (अर्थात् राज्यों की सहमति के बिना भी)।
- निगम कर में राज्यों को हिस्सेदारी दी जानी चाहिए।
- समवर्ती सूची के किसी विषय पर राष्ट्रहित में एकरूप कानून बनाने से पहले राज्यों के साथ अन्तर्राज्यीय परिषद् में परामर्श करना चाहिए।
- राज्यसभा की भूमिका यथावत् रहनी चाहिए।
- संसद के अनुमोदन के बाद ही मुख्यमंत्री के विरूद्ध जाँच आयोग नियुक्त किया जाना चाहिए।
- अनुच्छेद 3 यथावत् रहे (राज्य के पुनर्गठन की संघ की शक्ति)
- त्रिभाषा फॉर्मूला समान रूप से लागू करने की दिशा में कदम उठाने चाहिए।
- भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए आयोग का गठन किया जाए।
- आकाशवाणी, दूरदर्शन, दूरसंचार के मामलों में राज्यों को स्वायत्तता नहीं दी जाए।
- अनुच्छेद 200 (राज्यपाल द्वारा विधेयक आरक्षित करना)
  - यदि राज्य विधेयक राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रखा जाता है तो चार माह में निर्णय।
  - विधेयक पुनर्विचार के लिए लौटाने का निर्णय दो माह में।
  - राष्ट्रपति यदि राज्य के किसी विधेयक को अस्वीकार करता है तो इसका कारण बताया जाना चाहिए।
  - राज्य के अध्यादेश को आरक्षित रखने पर राष्ट्रपति द्वारा 15 दिन में निर्णय।
- राज्य सरकार अध्यादेश एक बार से अधिक पुनःप्रख्यापित नहीं कर सकती है।
- कराधान से संबंधित अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के पास हो तथा शेष अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों के पास हो।
- शिक्षा मानक केन्द्र (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) द्वारा निर्धारित किन्तु क्रियान्वयन राज्यों द्वारा।
- उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का स्थानान्तरण उसी की इच्छा से होना चाहिए।
- सामान्य जनता के कार्य उनकी ही भाषा में
- खनिज, प्राकृतिक गैस आदि – 2 वर्ष

Springboard ACADEMY

पुंछी आयोग

- इसका गठन 2007 में सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश मदन मोहन पुंछी की अध्यक्षता में किया गया।
- इसने 2010 में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की।
- समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों पर कानून बनाने से पहले संघ को राज्यों के साथ व्यापक समझौता करना चाहिए।
- केवल संसदीय सर्वोच्चता सिद्ध करने के लिए संघ को समवर्ती सूची के विषयों पर कानून नहीं बनाना चाहिए।
- यदि राष्ट्रहित में कानून की एकरूपता आवश्यक हो तो ही संघ को समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाना चाहिए।
- समवर्ती सूची पर कानून बनाते समय अन्तर्राज्यीय परिषद् को अंकेक्षण का अधिकार दिया जाना चाहिए।
- यदि राज्यपाल राज्य के विधेयक को राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रखता है तो राष्ट्रपति को 6 माह के भीतर अवश्य कोई निर्णय लेना चाहिए (अनुच्छेद 200)
- राज्यपाल की नियुक्ति के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए–
  - ✓ प्रतिष्ठित व्यक्ति राज्यपाल बने।
  - ✓ वह राज्य से बाहर का व्यक्ति हो।
  - ✓ राज्य की स्थानीय राजनीति में सक्रिय भूमिका ना रही हो।
  - ✓ पिछले कुछ समय से राजनीति में सक्रिय ना रहा हो।
- राज्यपाल को बिना किसी ठोस कारण के 5 साल के कार्यकाल से पूर्व नहीं हटाया जाना चाहिए।
- राष्ट्रपति की भाँति राज्यपाल को हटाने के लिए भी महाभियोग की प्रक्रिया का प्रावधान हो तथा इसे संविधान में जोड़ा जाए।
- अनुच्छेद 163 के तहत् राज्यपाल को विवेकाधीन शक्ति नहीं दी गई है अतः राज्यपाल को मंत्रीपरिषद् की सलाह से कार्य करना चाहिए।
- विधानसभा द्वारा पारित किए गए किसी विधेयक पर राज्यपाल को 6 माह के भीतर निर्णय लेना होगा।
- यदि विधानसभा के आम–चुनावों मे किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता है तो चुनाव पूर्व के सबसे बड़े गठबंधन अथवा राजनीतिक दल को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना चाहिए। (चुनाव पूर्व के गठबंधन को एक राजनीतिक दल ही माना जाना चाहिए)
- सरकार बनाने हेतु आमंत्रित करते समय निम्नलिखित क्रम का ध्यान रखा जाना चाहिए–
  1. चुनाव पूर्व गठबंधन वाले दलों का समूह जिसके पास सबसे बड़ी संख्या हो।
  2. सबसे बड़ा राजनीतिक दल जो दूसरों के समर्थन से सरकार बनाने का दावा पेश करे।
  3. चुनाव बाद का सबसे बड़ा गठबंधन जिसमें सभी दल सरकार में शामिल होना चाहते है।
  4. चुनाव बाद का गठबंधन जिसमें सभी दल सरकार में शामिल ना हो रहे हो। कुछ दल शामिल हो और कुछ बाहर से समर्थन दे।
- मुख्यमंत्री को हटाने से पूर्व उसे फ्लोर टेस्ट का अवसर दिया जाना चाहिए।
- राज्यपाल से सभी गैर–संवैधानिक दायित्त्व ले लिए जाने चाहिए जैसे– विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति का दायित्त्व।

- अनुच्छेद 352 व 356 के तहत आपातकाल की उद्घोषणा अंतिम विकल्प के रूप में ही की जानी चाहिए। इनकी शर्तें कठिन बनाई जाए।
- एस.आर. बोम्मई वाद, 1994 में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों को संविधान में जोड़ा जाए।
- अनुच्छेद 356 के तहत मंत्रिपरिषद् व राज्य की विधानसभा को भंग करने की बजाय स्थानीय आपातकाल का विकल्प रखा जाना चाहिए।
- अनुच्छेद 263 के तहत गठित अन्तरर्राज्यीय परिषद् अधिक विश्वसनीय, शक्तिशाली तथा निष्पक्ष होनी चाहिए। इसकी भूमिका को अधिक प्रभावी बनाया जाना चाहिए।
- क्षेत्रीय परिषदों को अधिक सक्रिय किया जाना चाहिए तथा वर्ष में कम से कम दो बैठक अनिवार्य की जानी चाहिए।
- राज्यों के वित्तमंत्रियों की एम्पावर्ड कमेटी की भाँति राज्यों के मुख्यमंत्रियों की एम्पावर्ड कमेटी का भी गठन होना चाहिए।
- नई अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन किया जाना चाहिए–
  1. स्वास्थ्य 2. शिक्षा 3. इंजीनियरिंग 4. न्यायिक।
- संघीय ढाँचे को सशक्त करने के लिए राज्यसभा की शक्तियों को बढ़ाया जाना चाहिए ताकि इसकी भूमिका अधिक प्रभावी हो तथा राज्यसभा में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।
- स्थानीय निकायों को संविधान के तहत शक्तियाँ प्रदान कर अधिक सशक्त व प्रभावी किया जाना चाहिए।
- खनिजों के लिए रॉयल्टी का पुनःनिर्धारण– प्रति 3 वर्ष पश्चात।
- केन्द्रीय कर संग्रह में उपकर व अधिभार की हिस्सेदारी को सीमित किया जाए।
- वित्त आयोग जो वर्तमान में वित्त मंत्रालय के अधीन विभाग के रूप में कार्य करता है, इसे अलग किया जाए तथा इसका पृथक सचिवालय हो।

Springboard ACADEMY

भाग – XX
संविधान का संशोधन
अनुच्छेद 368

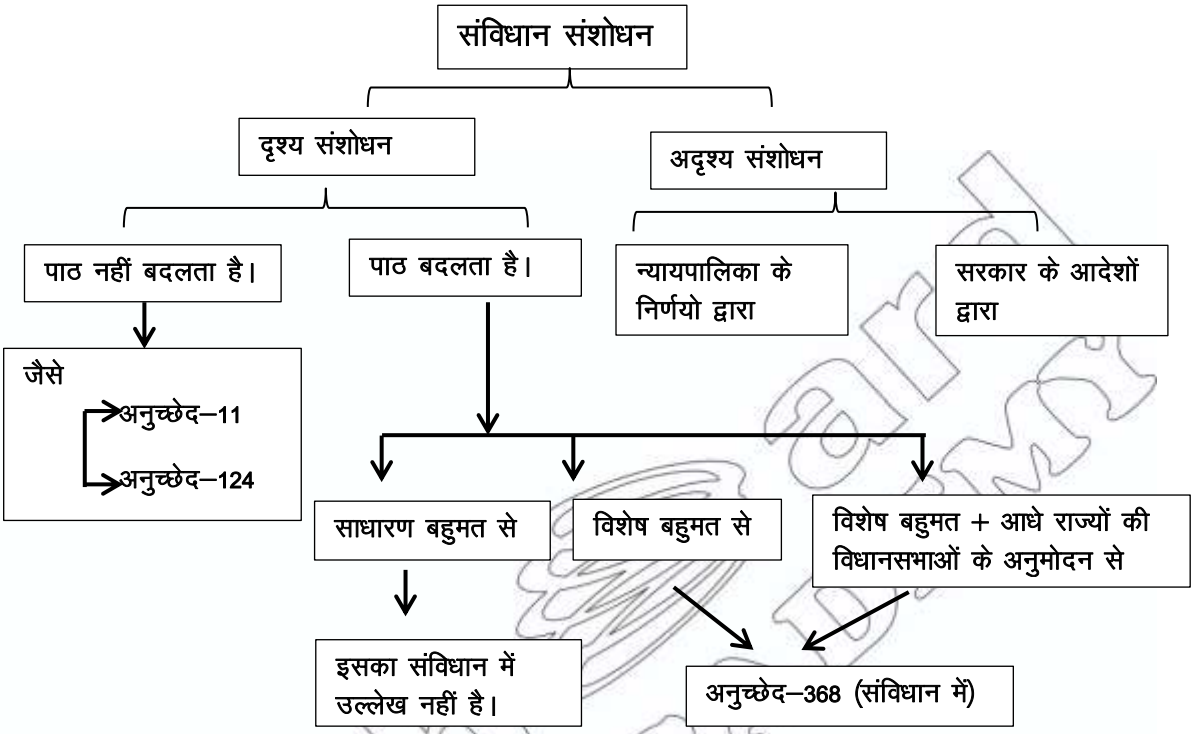

अदृश्य संशोधन–

- प्रायः न्यायपालिका के निर्णयों से तथा सरकार के आदेशों से संविधान में बदलाव आ जाते हैं लेकिन वे संविधान में प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर नहीं होते। ये अदृश्य संशोधनों की श्रेणी में आते हैं।

  जैसे–

- मेनका गाँधी वाद से अनुच्छेद 21 में बदलाव
- अनुच्छेद 124 में कॉलेजियम व्यवस्था जोडना
- अनुच्छेद 368 में बुनियादी ढाँचे की अवधारणा
- अनुच्छेद 35(क)
- वे संविधान संशोधन जिनमें पाठ नहीं बदलता :–

  जैसे :–

  - अनुच्छेद 11 के तहत नागरिकता से संबंधित कानून संसद बना सकती है।
  - अनुच्छेद 124 में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या 1+7 का उल्लेख किया गया। किन्तु साथ ही संसद को न्यायाधीशों की संख्या बढाने का अधिकार दिया गया है।
  - अनुच्छेद 102
  - दूसरी, पांचवीं व छठी अनुसूची

संविधान में संशोधनों के प्रकार

1. **संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन –**

- पहली, चौथी अनुसूचियों में बदलाव आदि

2. **संसद के विशेष बहुमत व आधे राज्यों की विधानसभाओं के अनुमोदन द्वारा संशोधन जैसे :–**
   - केन्द्र–राज्यों के विधायी संबंध
   - केन्द्र–राज्यों के कार्यपालिका संबंध
   - केन्द्र–राज्यों के वित्तीय संबंध
   - उच्चतम व उच्च न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र
   - राष्ट्रपति का निर्वाचन
   - अनुच्छेद 368 में संशोधन
   - संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व
3. **संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन – जैसे –**
   - मूल अधिकार
   - राज्य के नीति निदेशक तत्त्व
   - वे सभी उपबंध जो उपर्युक्त दोनों श्रेणियों से संबद्ध नहीं है।

संविधान संशोधन विधेयक की प्रक्रिया (अनुच्छेद 368)

- संविधान संशोधन विधेयक को राष्ट्रपति की पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं होती है।
- इसे संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।
- इसे सरकारी बिल या गैर सरकारी बिल दोनों के माध्यम से पेश किया जा सकता है।
- दोनों सदनों द्वारा इसे विशेष बहुमत से पारित किया जाता है।
- विधेयक पर दोनों सदनों में गतिरोध होने पर संयुक्त बैठक नहीं बुलाई जा सकती है।
- यदि केन्द्र–राज्य संबंध प्रभावित होते हो तो विधेयक से संबंधित संकल्प राज्यों की विधानसभाओं द्वारा भी पारित होना चाहिए।
- राज्यों की विधानसभा इसे स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है किन्तु संशोधन का प्रस्ताव नहीं रख सकती है।
- विधानसभा द्वारा यह विधेयक साधारण बहुमत से पारित किया जाता है। विधेयक आधे राज्यों की विधानसभाओं में पारित होना आवश्यक है। विधेयक हेतु विधान परिषद की अनुमति नहीं ली जाती है। इसके लिए समय सीमा निर्धारित नहीं है।
- इसके पश्चात विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। राष्ट्रपति विधेयक पर सहमति देने के लिए बाध्य है (यह 24वें संविधान संशोधन द्वारा जोडा गया) राष्ट्रपति इस विधेयक को ना तो अपने पास रख सकते है ना ही पुनर्विचार हेतु संसद के पास वापस भेज सकते है।

अतः उपर्युक्त विवरण स्पष्ट करता है कि संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है किन्तु वह संविधान के बुनियादी ढाँचे के साथ छेडछाड नहीं कर सकती अर्थात् संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति असीमित नहीं है वरन् वह मूल ढाँचे की अवधारणा द्वारा सीमित कर दी गई है।

महत्वपूर्ण संविधान संशोधन

- 1st CA, 1951 - अनुच्छेद 31 (क), 31(ख) एवं 9वीं अनुसूची जोड़ी गई।
- 5th CA, 1955 - अनुच्छेद 3 (राष्ट्रपति समय सीमा निर्धारित करेगा।)
- 7th CA, 1956 - A,B,C,D, वर्गीकरण रद्द
- 8th CA, 1960 - अनु. 334 में संशोधन
- 9th CA, 1960 - बेरूबारी केस
- 10th CA, 1961 - दादरा एवं नगर हवेली को भारत में शामिल कर केन्द्रशासित प्रदेश
- 12th CA (20 Dec.1961) - गोवा, दमन और दीव को केन्द्रशासित प्रदेश के रूप में शामिल
- 14th CA, 1962 - पुदुचेरी – केन्द्रशासित प्रदेश
- 15th CA, 1963 - उच्च न्यायालय के जज की सेवानिवृति की आयु 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष
- 21th CA, 1967 - सिंधी भाषा को 8वीं अनुसूची में 15वीं भाषा के रूप में शामिल
- 22th CA, 1969 - असम में स्वायत्त राज्य – असम से अलग करके मेघालय नया राज्य
- 24th CA, 1971 - संसद को मौलिक अधिकारों को कम करने में सक्षम बनाना।
- 25th CA, 1971 - केशवानंद भारती केस
- 26th CA, 1991 - प्रिवी पर्स की समाप्ति
- 31th CA, 1973 - लोकसभा सदस्यों की संख्या 525 से बढ़ाकर 545
- 35th CA, 1975 - भारत के संघ में सिक्किम के समावेश के लिए नियम एवं शर्ते
- 36th CA, 1975 - सिक्किम को भारत का 22वाँ राज्य
- 41th CA, 1976 - राज्य लोक सेवा आयोग एवं संयुक्त लोक सेवा आयोग के अध्यक्षों और सदस्यों की सेवानिवृति आयु सीमा 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष
- 42th CA, 1976 - संविधान की प्रस्तावना में समाजवादी, पंथनिरपेक्ष एवं एकता और अखण्डता शब्द एवं दस मौलिक कर्त्तव्यों को अनुच्छेद 51(क) (भाग–iv (क)) के अन्तर्गत जोड़ा गया।
- 43th CA, 1978 - 'स्वतंत्रता–विरोधी' संशोधनों को निरस्त
- 44th CA, 1978 - सम्पति के अधिकार को मौलिक अधिकारों से हटाकर विधिक (कानूनी) अधिकारों को श्रेणी में अनुच्छेद की श्रेणी में अनुच्छेद 300 (क) में
- 52th CA, 1985 - दल–बदल विरोधी सम्बन्धी प्रावधानों को 10वीं अनुसूची में
- 61th CA, 1989 - अनु. 326 (मताधिकार के लिए उम्र 21वर्ष से घटाकर 18 वर्ष)
- 69th CA, 1992 - दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र के लिए विधानसभा और मंत्रिपरिषद का उपबन्ध
- 71th CA, 1992 - 8 वीं अनुसूची में कोकणी, मणिपुरी और नेपाली भाषा को शामिल
- 73th CA, 1992 - पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता अनुच्छेद 243 से 243(ण) तक तथा 11वीं अनुसूची जोड़ी गई।
- 74th CA, 1993 - शहरी संस्थाओं (नगरपालिका) को सांविधानिक मान्यता तथा 12वीं अनुसूची जोड़ी गयी।
- 77th CA, 1995 - अनुच्छेद 16 में नई धारा 4(A) जोड़ी गई।
- 80th CA, 2000 - अनुच्छेद 270 में निगम कर
- 81th CA, 2000 - अनुच्छेद 16 में नई धारा 4(b) जोड़ी गई।
- 84th CA, 2002 - परिसीमन आयोग

- 86th CA, 2002 - 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा
- 89th CA, 2003 - अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग (NCST)
- 91th CA, 2003 - मंत्रिपरिषद के आकार की सीमित
- 92th CA, 2003 - बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली भाषाओं को 8वीं अनुसूची में शामिल
- 93th CA, 2006 - सरकारी और निजी शैक्षणिक संस्थाओं में OBC के लिए 27% आरक्षण
- 96th CA, 2011 - 8 वीं अनुसूची में उड़िया भाषा को 'ओडिया'
- 97th CA, 2012 - सहकारी संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता
- 99th CA, 2015 - राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) का गठन
- 100th CA, 2015 - भारत–बांग्लादेश के बीच भूमि समझौता (LBA)
- 101th CA, 2016 - वस्तु एवं सेवा कर शामिल
- 102th CA, 2018 - पिछड़ा वर्ग के लिए राष्ट्रीय आयोग (NCBC) (अनुच्छेद 338–ख)
- 103th CA, 2019 - आर्थिक कमजोर वर्ग को 10% आरक्षण
- 104th CA, 2020 - लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में एंग्लो–इंडियन के लिए सीटो का आरक्षण समाप्त और अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए बढ़ा दिया। (अनुच्छेद 331)
- 105th CA, 2021 - राज्य सूचियों और पिछड़े वर्गो की पहचान करने और उन्हें अधिसूचित करने की राज्यों की शक्ति को संरक्षित किया।

Springboard ACADEMY

वरीयता क्रम

1. राष्ट्रपति
2. उपराष्ट्रपति
3. प्रधानमंत्री
4. राज्यपाल (स्वयं के राज्य का)
5. भूतपूर्व राष्ट्रपति

5-(क) उपप्रधानमंत्री

6. भारत का मुख्य न्यायधीश (CJI)
   लोकसभा अध्यक्ष
7. संघ का केबिनेट मंत्री
   मुख्यमंत्री (स्वयं के राज्य का)
   नीति आयोग का उपाध्यक्ष
   भूतपूर्व प्रधानमंत्री
   राज्यसभा एवं लोकसभा में विपक्ष का नेता

7(क) भारत रत्न से सम्मानित व्यक्ति

8. राजदूत व उच्चायुक्त
   मुख्यमंत्री (स्वयं के राज्य से बाहर)
   राज्यपाल (स्वयं के राज्य से बाहर)
9. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश

9(क) संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष
   मुख्य निर्वाचन आयुक्त
   भारत का नियंत्र

10. राज्यसभा उपसभापति
    लोकसभा उपाध्यक्ष
    राज्य का उपमुख्यमंत्री
    नीति आयोग सदस्य
    केन्द्र का राज्यमंत्री
11. महान्यायवादी
    केबिनेट सचिव
    केन्द्र शासित प्रदेश का उपराज्यपाल
12. सेनाध्यक्ष
13. विदेशी दूत
14. विधानपरिषद का सभापति, विधानसभा अध्यक्ष
    उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश
15. राज्य के केबिनेट मंत्री
    केन्द्र शासित प्रदेश का मुख्यमंत्री
    केन्द्र का उपमंत्री

Springboard ACADEMY

भारत का नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक

महालेखाकार का कार्यालय
- वर्ष 1858 में
- सर एडवर्ड ड्रमंड–1st ऑडिटर जनरल
- कार्यकाल– ब्रिटिश सम्राट के प्रसादपर्यन्त

→ 1884 में पद का नाम नियत्रंक एवं महालेखापरीक्षक

→ 1935 अधिनियम
- नियुक्ति–सम्राट
- प्रान्तों में भी महालेखाध्यक्ष नियुक्ति

↓ भारतीय संविधान में नाम बदलकर (1950) – CAG

❖ एक सदस्यीय आयोग

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक

- **अनुच्छेद 148**
  - **अनुच्छेद 148 (1)**
    - नियुक्ति – राष्ट्रपति द्वारा
    - पदमुक्ति – SC के जज के समान
    - कार्यकाल – 6 वर्ष/65 वर्ष आयु
    - त्यागपत्र – राष्ट्रपति को
  - **अनुच्छेद 148 (2)**
    - शपथ
    - राष्ट्रपति द्वारा तीसरी अनुसूची अनुसार
  - **अनुच्छेद 148 (3)**
    - वेतन एवं सेवा शर्ते
      - संसद निर्धारित करती
      - अन्यथा दूसरी अनुसूची अनुसार
- **अनुच्छेद 149** शक्तियाँ
- **अनुच्छेद 150** लेखों का प्रारूप
- **अनुच्छेद 151** रिपोर्ट

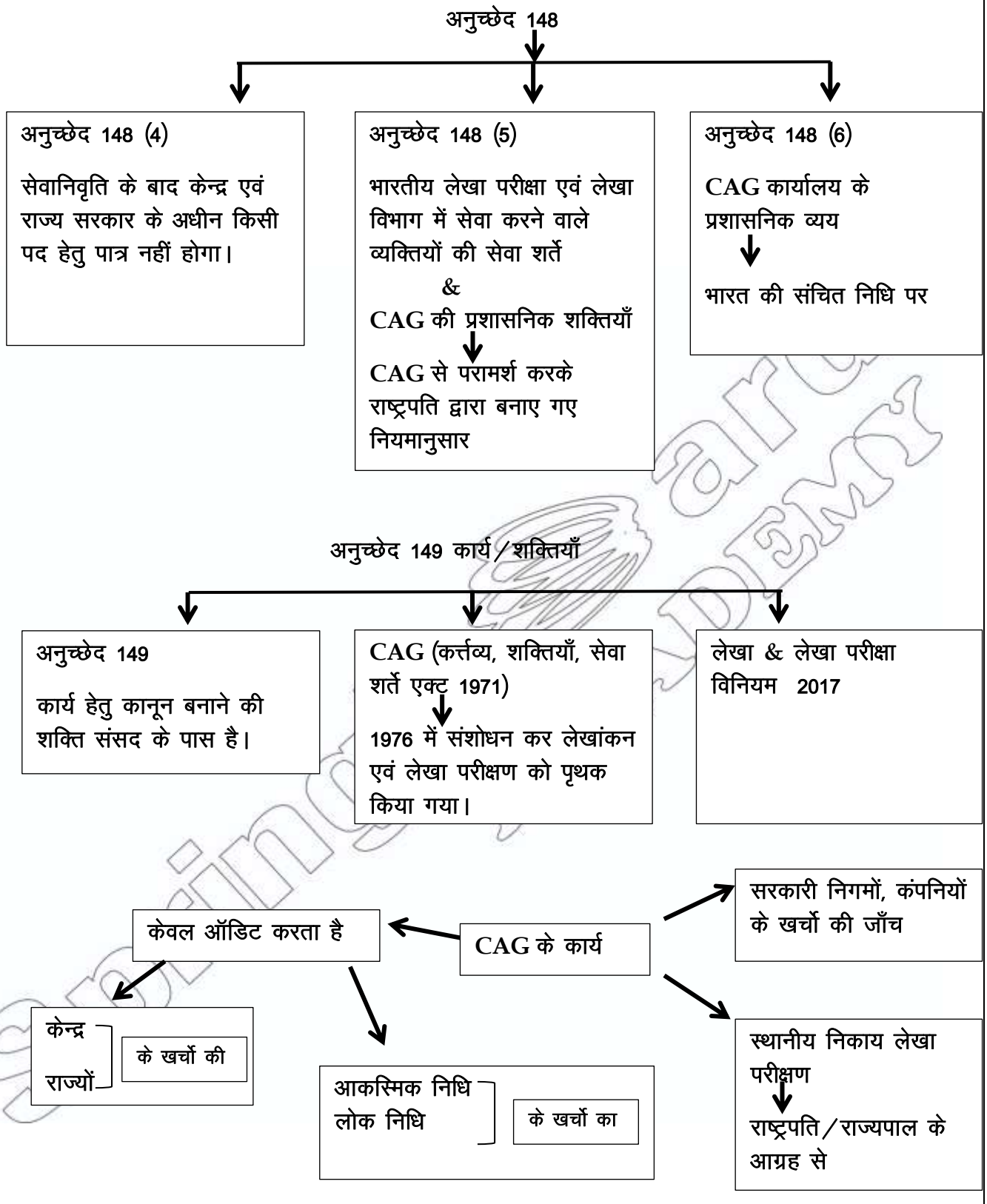
अनुच्छेद 148
अनुच्छेद 148 (4)
सेवानिवृति के बाद केन्द्र एवं राज्य सरकार के अधीन किसी पद हेतु पात्र नहीं होगा।
अनुच्छेद 148 (5)
भारतीय लेखा परीक्षा एवं लेखा विभाग में सेवा करने वाले व्यक्तियों की सेवा शर्ते
&
CAG की प्रशासनिक शक्तियाँ
CAG से परामर्श करके राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए नियमानुसार
अनुच्छेद 148 (6)
CAG कार्यालय के प्रशासनिक व्यय
भारत की संचित निधि पर
अनुच्छेद 149 कार्य / शक्तियाँ
अनुच्छेद 149
कार्य हेतु कानून बनाने की शक्ति संसद के पास है।
CAG (कर्त्तव्य, शक्तियाँ, सेवा शर्ते एक्ट 1971)
1976 में संशोधन कर लेखांकन एवं लेखा परीक्षण को पृथक किया गया।
लेखा & लेखा परीक्षा विनियम 2017
CAG के कार्य
केवल ऑडिट करता है
केन्द्र
राज्यों
के खर्चो की
आकस्मिक निधि
लोक निधि
के खर्चो का
सरकारी निगमों, कंपनियों के खर्चो की जाँच
स्थानीय निकाय लेखा परीक्षण
राष्ट्रपति / राज्यपाल के आग्रह से

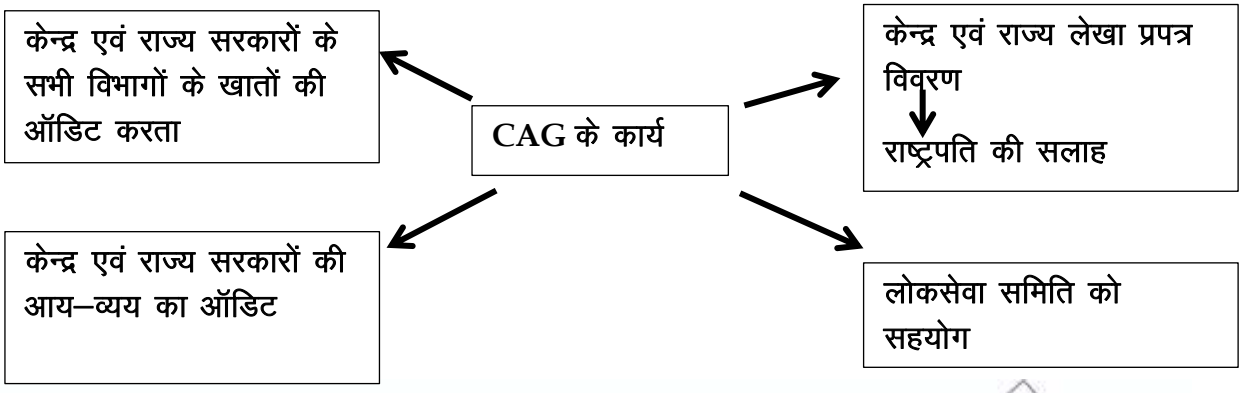

अनुच्छेद 151 – CAG की रिपोर्ट

केन्द्र – राष्ट्रपति – संसद

राज्य – राज्यपाल – विधानमण्डल

❖ सार्वजनिक वित का सजग प्रहरी (Watchdog) कहा जाता है।

तथ्य :–

	नाम	अवधि
प्रथम CAG	वी. नरहरि राव	1948–54
वर्तमान CAG	गिरीश चन्द्र मुर्मू	

Springboard ACADEMY

केन्द्रीय सतर्कता आयोग (C.V.C)

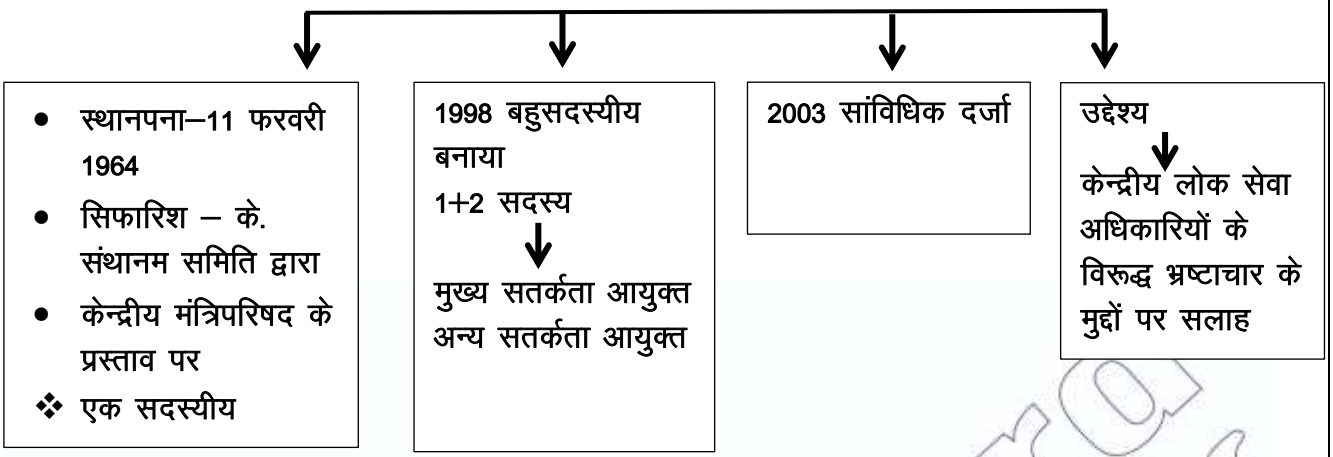

C.V.C

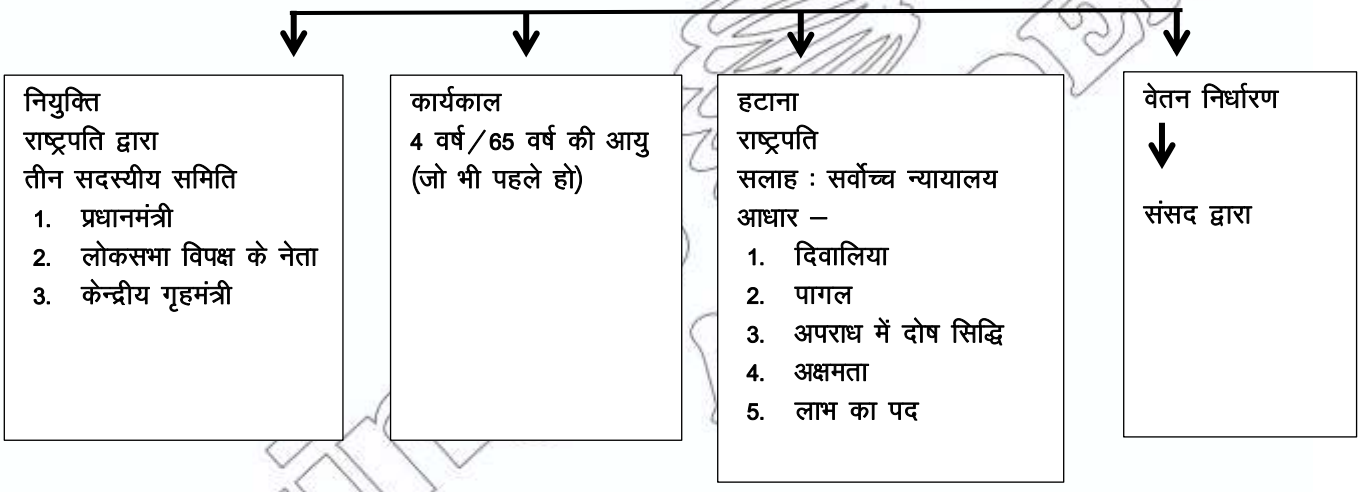

Note :- कदाचार व अक्षमता के आधार पर SC के जज द्वारा जाँच के बाद राष्ट्रपति द्वारा हटाया जायेगा।
वेतन भत्ते व सेवा शर्ते – लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के बराबर
सेवानिवृत्ति – केन्द्र/राज्य सरकार के अधीन किसी पद का पात्र नहीं।

कार्य :–

1. केन्द सरकार द्वारा भेजे गए किसी मामले की जाँच
2. CBI की जाँच प्रगति पुनरीक्षण करना।
3. आयोग के पास भेजे गए मामलों के संबंध में केन्द्र सरकार या अनेक संगठनों को सलाह।
4. भ्रष्टाचार के तहत अपराधों की जाँच के संबंध में CBI के कार्यो का अधीक्षण करना।
5. केन्द्र सरकार, मंत्रालय, विभाग आदि के सतर्कता एवं प्रशासन पर नजर।
6. केन्द्र सरकार को सलाह : केन्द्रीय अखिल भारतीय सेवाओं से संबंधित सकर्तता एवं अनुशासनिक मामलों में कानून बनाते समय
7. सूचना प्राप्ति का विशेषाधिकार – मनी लॉड्रिंग प्रिवेंशन अधिनियम 2002 के तहत
8. 2013 के लोकपाल एवं लोकायुक्त एक्ट के कार्य

9. केन्द्र सरकार को अभियोजन निदेशक की नियुक्ति में सलाह।
10. लोकपाल द्वारा भेजी गई शिकायतों की प्राथमिक जाँच।
11. CBI में पुलिस अधीक्षक/इससे ऊपर रैंक के अधिकारी की नियुक्ति समिति द्वारा→जिसका अध्यक्ष : मुख्य सतर्कता आयुक्त

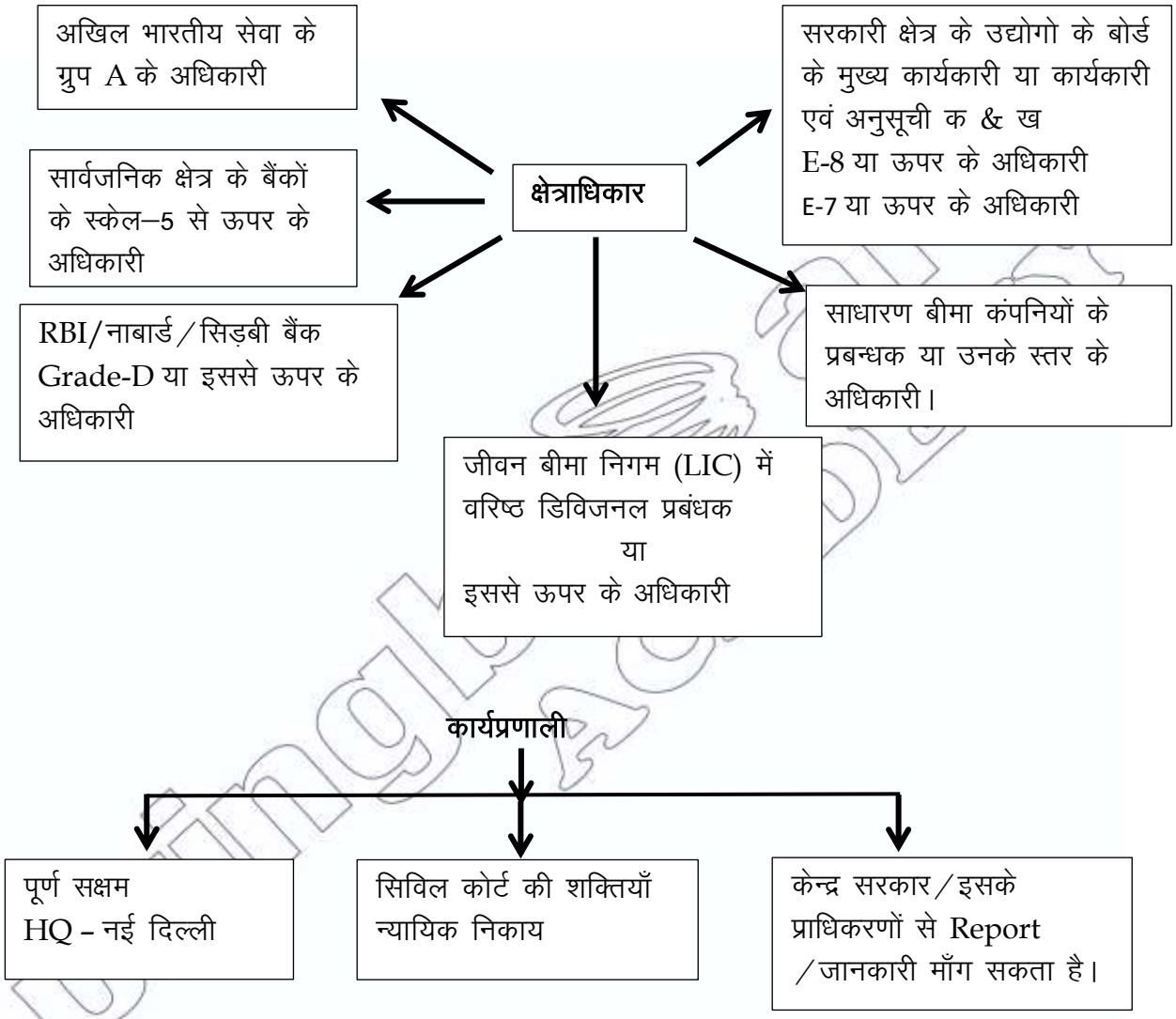

वार्षिक प्रतिवेदन → राष्ट्रपति → दोनों सदनों में

प्रथम मुख्य सतर्कता आयुक्त – निट्टूर श्रीनिवास राऊ/राव

वर्तमान मुख्य सतर्कता आयुक्त – पी. के. श्रीवास्तव

नीति आयोग (NITI AAYOG)

स्थापना– 15 मार्च 1950
केन्द्रीय मंत्रिपरिषद द्वारा

सिफारिश :- K.C. नियोगी समिति द्वारा (1946)

योजना आयोग

गैर संवैधानिक

संरचना : अध्यक्ष–प्रधानमंत्री
1 उपाध्यक्ष
3 पूर्णकालिक
+
3 अंशकालिक
सदस्य

समाप्ति 13 अगस्त 2014

उद्देश्य
- राष्ट्र के संसाधनों का कुशलतम उपयोग
- रोजगार उपलब्ध करवाना

अन्य नाम :–
- सुपर केबिनेट
- आर्थिक मंत्रिमण्डल
- समानांतर मंत्रिमण्डल

❖ परामर्शदात्री निकाय
❖ केन्द्रीकृत निकाय

स्थापना–6 अगस्त 1952

राष्ट्रीय विकास परिषद

उद्देश्य
1. राष्ट्रीय योजना समीक्षा
2. संतुलित विकास
3. परामर्श
4. समन्वय

संरचना
अध्यक्ष–प्रधानमंत्री
सभी राज्यों के मुख्यमंत्री + सभी केन्द्रशासित प्रदेश के पदाधिकारी
योजना आयोग सदस्य + केन्द्रीय मंत्रिमण्डल सदस्य

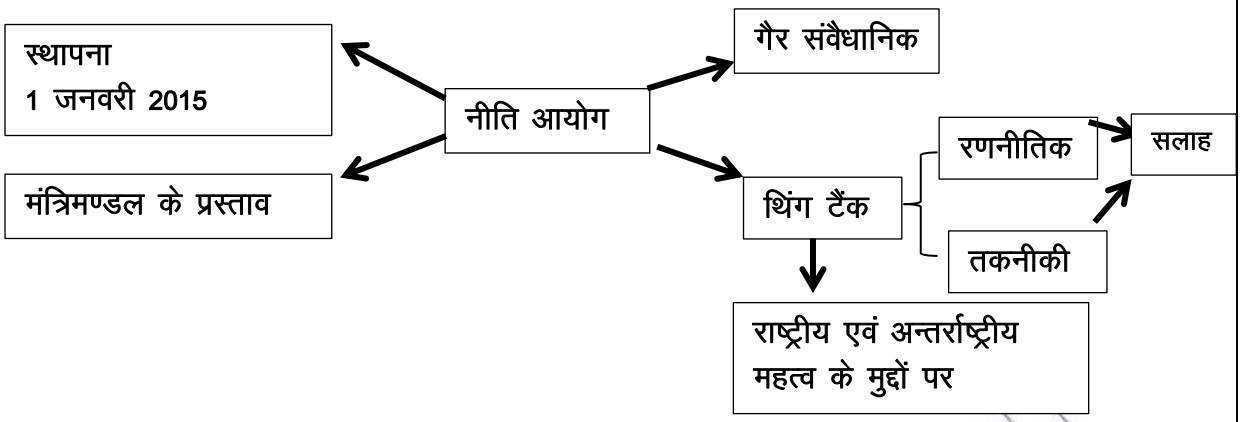

संरचना – 5 स्तर पर

A. अध्यक्ष – प्रधानमंत्री

B. शासकीय परिषद – सभी राज्यों के मुख्यमंत्री एवं केन्द्रशासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री या पदाधिकारी

C. क्षेत्रीय परिषद

(i) राज्यों के मुख्यमंत्री + केन्द्रशासित प्रदेशों के उपराज्यपाल

(ii) अध्यक्ष – प्रधानमंत्री

(iii) कार्य – एक से अधिक राज्यो से सम्बन्धित मुद्दों के समाधान हेतु।

D. विशिष्ट आमंत्रण –

- विशेषज्ञ, सुविज्ञ, अभ्यासी
- प्रधानमंत्री द्वारा नामित किये जाते है।

E. पूर्णकालिक सांगठनिक ढाँचा :–

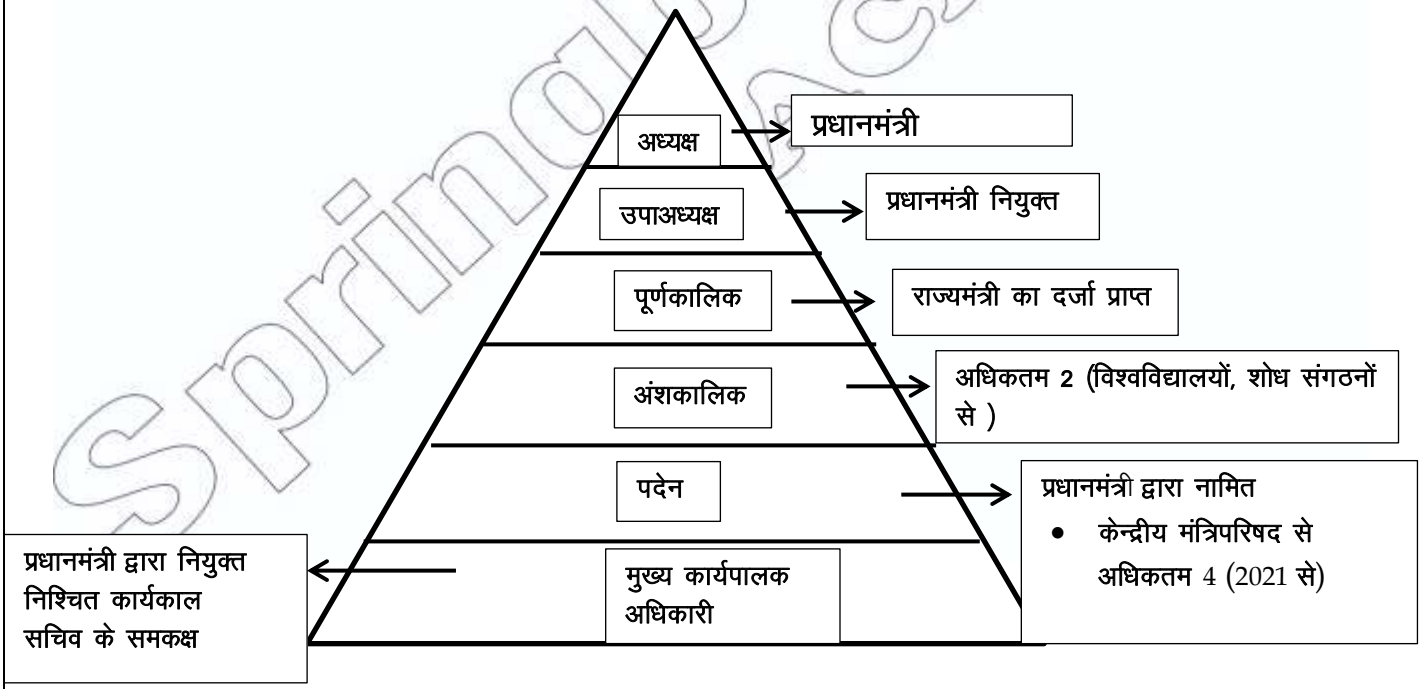

विशेषज्ञता प्राप्त शाखाएँ :–

1. शोध शाखा :– विषय विशेषज्ञों एवं विद्वानों को समर्पित थिंक टैंक
2. परामर्शदात्री शाखा – विशेषज्ञों का पैनल [केन्द्र सरकार, राज्य सरकार] → **परामर्श**
3. टीम इंडिया शाखा [प्रत्येक राज्य एवं मंत्रालय के प्रतिनिधि] राष्ट्रीय सहयोग एवं सहकार के एक स्थायी मंच के रूप में कार्य।

तथ्य :–

अध्यक्ष – प्रधानमंत्री

प्रथम CEO - सिंधु श्री खुल्लर

द्वितीय CEO - अमिताभ कांत

वर्तमान CEO - बी. वी. आर. सुब्रमणयम (फरवरी 2023)

प्रथम उपाध्यक्ष – अरविन्द पनगढ़िया

द्वितीय उपाध्यक्ष – डॉ. राजीव कुमार

वर्तमान उपाध्यक्ष – सुमन बेरी

Springboard ACADEMY

लोकपाल

- **1809**
  स्वीडन से शुरूआत
  ओम्बुडसमेन
  ↓
  किसी का प्रतिनिधि

- **1963**
  भारत में राजस्थान
  प्रशासनिक सुधार
  समिति (हरिशचन्द्र
  माथुर समिति सुझाव)

- **1966**
  1st प्रशासनिक सुधार
  आयोग सिफारिश
  - लोकपाल
  - लोकायुक्त

- **1968**
  1st बिल
  प्रधानमंत्री – इंदिरा गाँधी
  - पारित नहीं हुआ

लोकपाल

- **1970**
  उड़ीसा
  1st Act पारित

- **1971**
  महाराष्ट्र
  प्रथमतः लोकपाल
  स्थापना

- **3 Feb. 1973**
  राज. में
  लोकायुक्त

- **2007**
  II प्रशासनिक सुधार
  आयोग सिफारिश
  (विरप्पा मोइली)
  - राष्ट्रीय लोकायुक्त
  - राज्य लोकायुक्त

- **2011**
  10वीं बार बिल
  संसद में रखा गया

- **2013**
  राज्यसभा–17.12.2013
  लोकसभा–18.12.2013
  राष्ट्रपति हस्ताक्षर
  ↓ ↓
  31.12.2013
  प्रभावी
  16.01.2014

Springboard

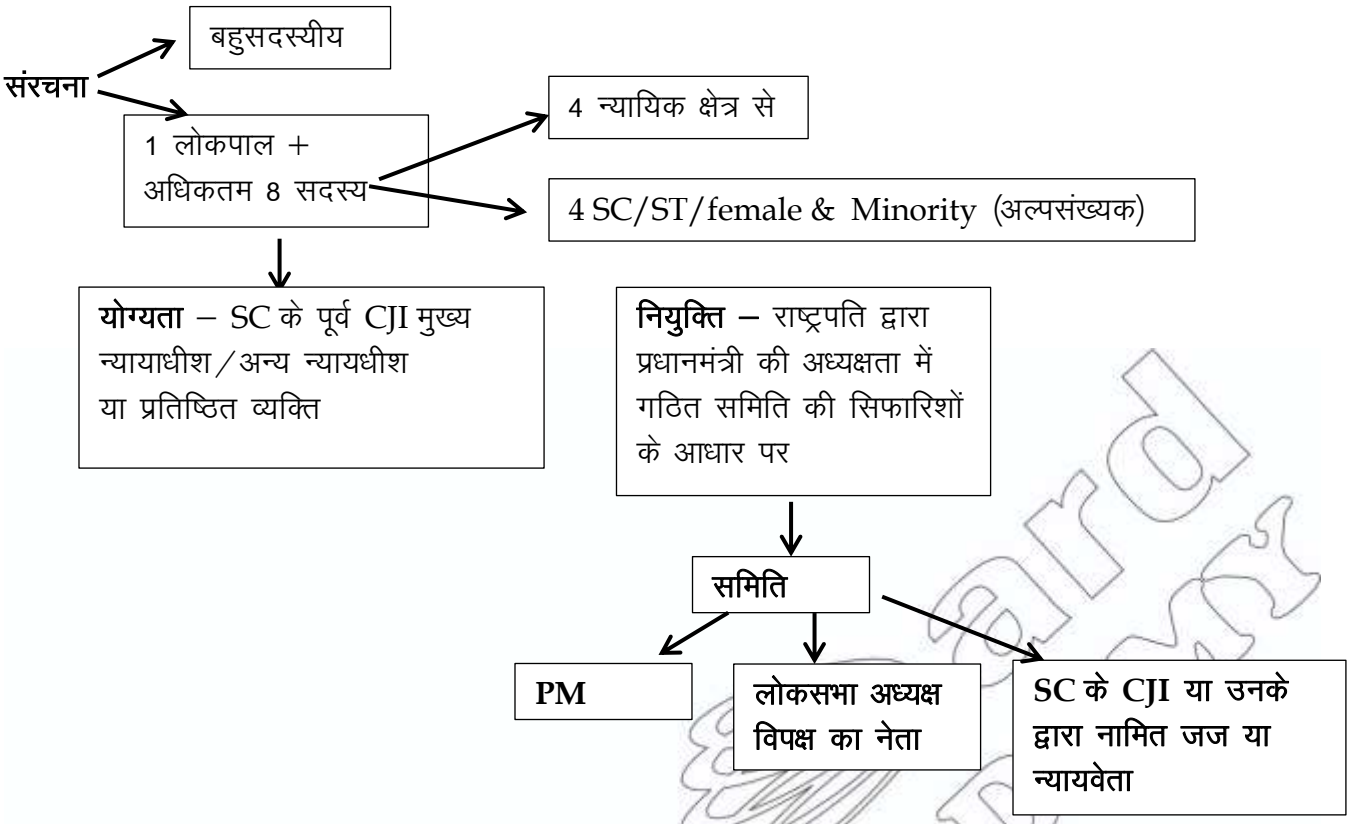

कार्यकाल – 5 वर्ष (70 वर्ष की आयु) (जो भी पहले हो)

लोकपाल नही बन सकते – यदि
- आयु 45 वर्ष से कम हो।
- अपराध का दोषी
- विधायक/सांसद हो।

क्षेत्राधिकार

1. प्रधानमंत्री (प्रतिबंध एवं शर्तो के अधीन)
   - (i) विदेश संबंध
   - (ii) अन्तर्राष्ट्रीय संबध
   - (iii) आन्तरिक/बाह्य सुरक्षा
   - (iv) परमाणु ऊर्जा
   - (v) अन्तरिक्ष

   लोकपाल के न्यूनतम 2/3 सदस्यों की अनुमति मिलने पर जाँच
2. समस्त पूर्व एवं वर्तमान मंत्री, सांसद
3. भारत सरकार के अधिकारी, कर्मचारी
4. लोक उपक्रमों के लोकसेवक
5. NGO जो 10 लाख/इससे अधिक विदेशी अनुदान प्राप्त करते है।

- सिविल कोर्ट की शक्तियाँ

- लोकपाल CBI को भी विषय सौंप सकता है, जिसके अधीक्षण, पर्यवेक्षण, नियंत्रण का अंतिम अधिकार लोकपाल के पास।
- चल एवं अचल सम्पति/दस्तावेज जब्त/कुर्की/नीलामी अधिकार। (भ्रष्टाचार द्वारा अर्जन पर)

सेवानिवृति के बाद

- पुनर्नियुक्ति नहीं
- चुनाव नहीं लड़ सकता
- लाभ का पद प्राप्त नहीं कर सकता
- कूटनीतिज्ञ पद प्राप्त नहीं कर सकता

हटाना

- त्याग पत्र – राष्ट्रपति को
- राष्ट्रपति द्वारा हटाना

  यदि

  1. दिवालिया
  2. लाभ का पद
  3. मानसिक/शारीरिक अक्षमता
  4. पागल
  5. न्यायालय द्वारा अपराध सिद्धि

Note – दुर्व्यवहार या अक्षमता की स्थिति में न्यूनतम 100 सांसदों द्वारा हस्ताक्षरित एक याचिका राष्ट्रपति को प्रस्तुत होगी।

↓

जाँच – सर्वोच्च न्यायालय द्वारा

↓

दोषी होने पर राष्ट्रपति हटायेंगे।

जाँच :– सामान्य प्रकृति – 3 माह
गंभीर प्रकृति – 6 माह
अभियोजन प्रकृति की – 1 वर्ष

गलत शिकायत पर दण्ड के प्रावधान

तथ्य :–

प्रथम लोकपाल – पिनाकी चंद्र घोष
वर्तमान लोकपाल – प्रदीप कुमार मोहंती

निर्वाचन आयोग

- अनुच्छेद 324 से 329 तक भाग–(15)
- स्थापना – 25 जनवरी 1950
- संवैधानिक, स्थायी, स्वतंत्र, अखिल भारतीय निकाय
- संरचना – पूर्व में एक सदस्यीय
  16 अक्टूबर 1989 से 1990 तक 3 सदस्य
  1 अक्टूबर 1993 से
  स्थायी रूप से बहुसदस्यीय
  1 मुख्य निर्वाचन आयुक्त
  +
  2. अन्य आयुक्त
- नियुक्ति – राष्ट्रपति
- कार्यकाल – 6/65 वर्ष
- त्यागपत्र – राष्ट्रपति को
- वेतन – उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान (2.5 लाख वर्तमान में, निर्वाचन आयुक्त सेवा शर्ते कार्य संचालन एक्ट 1991)
  हटाना – राष्ट्रपति द्वारा
  आधार – 1. अक्षमता 2. कदाचार

स्वतंत्रताएँ

1. कार्यकाल निश्चित
2. अलाभकारी परिवर्तन नहीं
3. संवैधानिक पद

दोष –

1. योग्यता उल्लेख नहीं
2. सदस्य संख्या भी संविधान में नहीं
3. वेतन संचित निधि पर नहीं एवं पुनर्नियुक्ति संभव
4. कार्यकाल का उल्लेख नहीं एवं सेवानिवृति के बाद अन्य सरकारी नियुक्ति पर रोक नहीं।

कार्य/शक्तियाँ –

जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950–51 द्वारा शक्तियाँ विस्तारित की गई।

1. प्रशासकीय
2. सलाहकारी
3. अर्द्धन्यायिक
4. चुनाव –
   - राष्ट्रपति
   - उपराष्ट्रपति
   - संसद
   - राज्य विधानमण्डल
5. चुनाव कार्यक्रम घोषणा
6. मतदाता सूची तैयार करना

7. चुनाव चिह्न एवं आचार संहिता विनियमन
8. संसद के परिसीमन एक्ट के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र निर्धारण
   राष्ट्रपति (अनुच्छेद 103) एवं राज्यपाल (अनुच्छेद 192) को सलाह – चुनाव संबंधी सदस्यों की अयोग्यता के सन्दर्भ में

अनुच्छेद 325 – जाति, मूलवंश, धर्म, लिंग के आधार पर
(A) किसी व्यक्ति का नाम जोड़ने से इंकार नही।
(B) न ही कोई विशेष मतदाता सूची में नाम सम्मिलित करने हेतु दावा कर सकता है।

अनुच्छेद 326 – वयस्क मताधिकार – 61वें संविधान संशोधन से 1989 में आयु 18 वर्ष वर्ष की।
❖ अनिवासी भारतीय एवं मानसिक पागल, कैदी को मतदान अधिकार से वंचित किया जा सकता है।

अनुच्छेद 327 – निर्वाचन के संबंध में उपबंध करने की संसद की शक्ति।

अनुच्छेद 328 – राज्य विधानमण्डल की शक्ति

अनुच्छेद 329 – निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप के संबंध में।

निर्वाचन आयोग से संबंधित समितियाँ

1. वी.एन. तारकुंडे समिति, 1974
2. दिनेश गोस्वामी समिति, 1990
3. इन्द्रजीत गुप्ता समिति, 1998
4. संथानम समिति 1963

तथ्य :–

- प्रथम मुख्य निर्वाचन आयुक्त (CEC) – सुकुमार सेन (1950–1958)
- सबसे लंबा कार्यकाल – के. वी. के. सुन्दरम (1958–1967)
- वर्तमान मुख्य निर्वाचन आयुक्त – राजीव कुमार

Springboard ACADEMY

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

- सांविधिक / कानूनी निकाय (NHRC अधिनियम, 1993)
- स्थापना – 12 अक्टूबर 1993
- अधिनियम की धारा–2(1)ए में मानवाधिकारों को परिभाषित किया गया।

संरचना

अध्यक्ष	सदस्य	सदस्य	3 अन्य सदस्य – मानवाधिकारों के ज्ञाता (1 इनमें से महिला होगी)
SC का सेवानिवृत मुख्य न्यायाधीश या न्यायाधीश	SC में कार्यरत या सेवानिवृत न्यायाधीश	HC में कार्यरत या सेवानिवृत मुख्य न्यायाधीश	

पदेन → राष्ट्रपति अध्यक्ष →
- एससी आयोग
- एसटी आयोग
- महिला आयोग
- पिछड़ा वर्ग आयोग
- अल्पसंख्यक आयोग
- बाल अधिकार संरक्षण आयोग
- दिव्यांग आयोग

के आयुक्त

नियुक्ति → राष्ट्रपति

परामर्श समिति (6 सदस्यीय)
- प्रधानमंत्री (अध्यक्ष)
- लोकसभा स्पीकर
- राज्यसभा उपसभापति
- विपक्ष के नेता (दोनों सदनों के)
- केन्द्रीय गृह मंत्री

कार्यकाल – 3 वर्ष / 70 वर्ष आयु

पुनर्नियुक्ति – आयोग अध्यक्ष एवं सदस्य के रूप में अनुमत (पुनर्नियुक्ति हेतु पात्र)
केन्द्र एवं राज्य सरकार के अधीन पद धारण नहीं।

हटाना – राष्ट्रपति द्वारा

1. कदाचार या अक्षमता → उच्चतम न्यायालय की जाँच → राष्ट्रपति हटा देता है।
2. 5 आधार पर बिना जाँच →
   (i) दिवालिया
   (ii) कार्यक्षेत्र से बाहर रोजगार
   (iii) मानसिक या शारीरिक अक्षम
   (iv) पागल
   (v) न्यायालय द्वारा अपराधी सिद्ध

वेतन एवं भत्ते :– केन्द्र सरकार द्वारा – परन्तु नियुक्ति के उपरांत अलाभकारी परिवर्तन नहीं

कार्य :–

1. 1 वर्ष के भीतर घटित घटाना की जाँच
2. मानवाधिकार उल्लंघन की जाँच (स्वप्रेरणा व न्यायालय के आदेश से)
3. मानवाधिकार हेतु शोध
4. सिविल न्यायालय की शक्तियाँ
5. NGO को प्रोत्साहन
6. मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता
7. जेलों व बन्दीगृहों में मानवाधिकारो के उल्लंघन का निरीक्षण

❖ केवल सलाहकारी निकाय – दण्ड/क्षतिपूर्ति/कार्यवाही प्रारम्भ करने हेतु केवल सलाह

प्रतिवेदन – केन्द्र सरकार को एवं संबंधित राज्य सरकारों को भेजता है।
प्रथम अध्यक्ष – न्यायमूर्ति श्री रंगनाथ मिश्रा
वर्तमान अध्यक्ष – अरूण कुमार मिश्रा

Springboard ACADEMY

केन्द्रीय सूचना आयोग

- सांविधिक निकाय
- उच्च सतायुक्त स्वतंत्र निकाय
- सूचना का अधिकार (RTI) अधिनियम 2005 के अन्तर्गत धारा 12(1)
- **स्थापना :–** 12 अक्टूबर, 2005
- केन्द्र एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के अधीन कार्यालयों, वित्तीय संस्थानों, सार्वजनिक उपक्रमों की शिकायतों एवं अपीलों की सुनवाई

संरचना धारा 12(2)

↓

1 अध्यक्ष + 10 सदस्य – नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा 3 सदस्यीय समिति के परामर्श से

1. प्रधानमंत्री
2. लोकसभा में विपक्ष का नेता
3. केन्द्रीय मंत्रिमण्डल से प्रधानमंत्री द्वारा निर्दिष्ट एक सदस्य (कैबिनेट मंत्री)

शपथ → राष्ट्रपति द्वारा

2019 में संशोधन

- कार्यकाल
  - पहले 5/65 वर्ष
  - अब–केन्द्र सरकार तय करती है।
- वेतन भत्ते → अब केन्द्र सरकार तय

योग्यता :– धारा–12(5)

- विधि, विज्ञान, प्रौद्योगिकी समाजसेवा, प्रबंध, पत्रकारिता, जनसंपर्क, शासन एवं प्रशासन का विशिष्ट अनुभवी हो।
- संसद सदस्य (MP)
- विधानमण्डल सदस्य (MLA)

} **अयोग्य**

- लाभ का पद प्राप्त

पद से हटाना – धारा –14 राष्ट्रपति द्वारा

सिद्ध कदाचार
अक्षमता

} के आधार पर उच्चतम न्यायालय की जाँच के उपरांत

अन्य आधार (बिना जाँच) – 5

1. दिवालिया घोषित हो
2. अपराध में दोषसिद्धि जो राष्ट्रपति की नजर में नैतिक अक्षमता हो।
3. कर्त्तव्य से परे अन्य लाभ का पद प्राप्त करना।
4. शारीरिक/मानसिक अक्षम
5. ऐसा लाभ का पद जिससे कार्य या निष्पक्षता प्रभावित हो।

पुनर्नियुक्ति→ नहीं

कार्य –

1. किसी व्यक्ति से शिकायत प्राप्ति एवं जाँच (RTI) से संबंधित
2. ठोस आधार पर स्वः प्रेरणा से जाँच
3. सिविल कोर्ट की शक्तियाँ प्रयोग
   a. समन जारी करना
   b. शपथ पत्र के रूप में साक्ष्य
   c. दस्तावेज मांगना एवं जाँच करना।

प्रतिवेदन – केन्द्र सरकार को वार्षिक रिपोर्ट

कार्यालय – दिल्ली

❖ आयोग केन्द्र सरकार की अनुमति से अन्य जगह स्थापित कर सकता।

अन्य तथ्य –

- 1766– स्वीडन प्रथम देश सूचना का अधिकार अपनाने वाला
- RTI मांग – किसान मजदूर संघ द्वारा अरूणा रॉय के नेतृत्व में आंदोलन (6 अप्रैल 1995)
- 2005 से पूर्व – 7 राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश RTI अपना चुके थे।
- राजस्थान में RTI सन् 2000 में
- भारत के मुख्य न्यायाधीश का कार्यालय भी इसके दायरे में शामिल।

Springboard ACADEMY

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

- भारत शासन अधिनियम 1919 के अधीन 1926 में संघ लोक सेवा आयोग का गठन (ली आयोग की सिफारिश पर)
- भारत शासन अधिनियम 1935 में
  - संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)
  - राज्य लोक सेवा आयोग (SPSC)
  - संयुक्त लोक सेवा आयोग (JPSC)
- भाग–14, अनुच्छेद 315 से 323 तक

	UPSC	SPSC	JPSC
गठन	राष्ट्रपति	राज्यपाल	संसद (विधानमण्डलों की स्वीकृति)
अध्यक्ष एवं सदस्य नियुक्ति	राष्ट्रपति	राज्यपाल	राष्ट्रपति
कार्यकाल	6/65 वर्ष	6/62 वर्ष	6/62 वर्ष
त्यागपत्र	राष्ट्रपति	राज्यपाल	राष्ट्रपति
योग्यता	संविधान में उल्लेख नहीं	संविधान में उल्लेख नहीं	संविधान में उल्लेख नहीं
	कम से कम आधे सदस्य जिनको 10 वर्ष संघ/राज्य सेवा का अनुभव हो।		
प्रतिवेदन	राष्ट्रपति	राज्यपाल	संबंधित राज्यपाल
कार्यों का निर्धारण	संसद	विधानमण्डल	संसद
निलम्बित	राष्ट्रपति	राज्यपाल	राष्ट्रपति
हटाया जाना (अनु. 317)	राष्ट्रपति	राष्ट्रपति	राष्ट्रपति

- उच्चतम न्यायालय की सिफारिश पर → केवल कदाचार के आधार पर → उच्चतम न्यायालय की जाँच (बाध्यकारी सिफारिश)
- दिवालिया, कर्त्तव्य से बाहर वेतन, मानसिक/शारीरिक अक्षम पर बिना जाँच।

कार्य

1. सिविल सेवा/अन्य उच्च (A/B वर्ग) पदो हेतु भर्ती
2. लोकसेवकों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही
3. लोकसेवक क्षतिपूर्ति के दावे
4. एक सेवा से दूसरी सेवा में स्थानान्तरण

- केवल केन्द्रीय भर्ती अधिकरण है।
- सेवा में वर्गीकरण, वेतन, कैडर, प्रशिक्षण की अनुमति नहीं।
  - कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग द्वारा।

तथ्य :–

1. संघ लोक सेवा आयोग के प्रथम अध्यक्ष – सर रॉस बार्कर (1926–1932)
2. स्वतंत्रता उपरांत प्रथम अध्यक्ष – एच.के.कृपलानी (1947–1949)
3. प्रथम महिला अध्यक्ष – श्रीमती आर.एम. बैथ्यू (1992–1996)
   वर्तमान अध्यक्ष – मनोज सोनी

अनुच्छेद 338 :– राष्ट्रपति संविधान में वर्णित SC/ST के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा उपायों की जाँच हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति करेगा।

1990 – 65वें संविधान संशोधन द्वारा SC/ST आयोग की स्थापना

2003 – 89वें संविधान संशोधन से भिन्न–भिन्न आयोग।

	SC आयोग	**ST आयोग**	**OBC आयोग (102 वाँ संविधान संशोधन)**
अनुच्छेद	338	338(क)	338(ख)
सदस्य	1 + 4 ↘ SC का अध्यक्ष	1 + 4 ↘ ST का अध्यक्ष	1 + 4 ↘ OBC का अध्यक्ष
नियुक्ति	राष्ट्रपति	राष्ट्रपति	राष्ट्रपति द्वारा हस्तान्तरित / मुहरबन्द आदेश द्वारा
प्रतिवेदन	राष्ट्रपति → संसद में	राष्ट्रपति → संसद में	राष्ट्रपति → संसद में
कार्य	1. सलाहकारी 2. जाँच, शिकायते सुनना	1. सलाहकारी 2. जाँच, शिकायते सुनना	1. सलाहकारी 2. जाँच, शिकायते सुनना
शक्तियाँ	सिविल न्यायालय की	सिविल न्यायालय की	सिविल न्यायालय की
पुनर्नियुक्ति	1 बार संभव	1 बार संभव	1 बार संभव
सेवा शर्ते एवं कार्यकाल	3 वर्ष कार्यकाल, राष्ट्रपति के नियमानुसार	3 वर्ष कार्यकाल, राष्ट्रपति के नियमानुसार	3 वर्ष कार्यकाल, राष्ट्रपति के नियमानुसार
	संवैधानिक	संवैधानिक	पूर्व में कानूनी / सांविधिक अब–संवैधानिक

Springboard ACADEMY

राजनीतिक गत्यात्मकताएँ (मुख्य परीक्षा के लिए)

1. भारतीय राजनीति में – जाति, धर्म, वर्ग, नृजातीयता, भाषा, लिंग की भूमिका
2. राजनीतिक दल एवं मतदान व्यवहार
3. नागरिक समाज एवं राजनीतिक आन्दोलन
4. राष्ट्रीय अखंडता एवं सुरक्षा से जुड़े मुद्दे
5. सामाजिक – राजनीतिक संघर्ष के संभावित क्षेत्र

Springboard ACADEMY

भारतीय राजनीति में जाति –

जाति – जाति से आशय एक ऐसे समूह से है, जिसकी सदस्यता जन्म आधारित होती है तथा जिसकी कुछ विशिष्ट 'सामाजिक–आर्थिक' विशेषताएँ होती है। जैसे– रोटी–बेटी संबंध, स्तरीकरण (ऊंच–नीच), अन्तः विवाही समूह, व्यावसायिक प्राथमिकताएँ आदि।

जाति व जातिवाद में अन्तर

जाति	जातिवाद
सामाजिक अवधारणा	आर्थिक–राजनीतिक अवधारणा
विशेषताएँ – • जातिगत पेशा • छुआछूत में विश्वास • सजातीय विवाह	**विशेषताएँ –** • व्यक्ति की इच्छा कि संसाधनों व सत्ता में उसकी जाति के लोगों की भागीदारी बढ़े।

जाति का राजनीतिकरण–

- रजनी कोठारी ने इस मान्यता को पूर्णतः अस्वीकार किया कि भारतीय राजनीति में जातिवाद है। इनके अनुसार जिसे हम जातिवाद कहते हैं वह वास्तविक रूप में ''जातियों का राजनीतिकरण'' है।
- जातियों के राजनीतिकरण से तात्पर्य है कि राजनेताओं द्वारा सत्ता प्राप्ति हेतु 'जातिगत पहचान' को उभारकर अधिकाधिक वोट बटोरने का प्रयास करना।

कारण –

- 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' (अग्रेता ही विजेता) व्यवस्था
- बड़ा जातिगत वोटबैंक (जातिगत पहचान आधारित मत)
- ऐतिहासिक जाति आधारित दलित शोषण

उपर्युक्त कारणों ने धीरे–धीरे सत्ता पर जाति का निर्णायक प्रभाव स्थापित किया।

भारत में राजनीति–जाति संबंधों का इतिहास

- **वैचारिक पृष्ठभूमि** – समाज के बहुत बड़े वर्ग का शोषण जाति आधारित किया गया है, अतः इन जातियों द्वारा संगठित होकर राजनीति में भाग लेने से ही इनकी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

  उदाहरण –
  - भारतीय रिपब्लिकन पार्टी (1957)⇒ दलित हित (उत्पत्ति 'आल इंडिया शेड्यूल्ड फैडरेशन–1942' – अंबेडकर से)
  - दलित पेंथर्स (1972) ⇒ नामदेव ढसाल व जेवी पवार
  - अजगर फॉर्मूला (AJGR) ⇒ अहीर, जाट, गुर्जर, राजपूत
- 1 जनवरी, 1979 को जनता पार्टी सरकार ने मंडल आयोग का निर्माण किया जिसका मूल उद्देश्य भारत में सामाजिक–शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की पहचान करना था। इसने पिछड़ी जातियों को 52% आरक्षण देने की सिफारिश की। (आधार – 1931 जनगणना)
- मंडल आयोग ने भारतीय राजनीति में जाति का महत्व और बढ़ा दिया। जिसे कुछ राजनीतिक विश्लेषक 'कमंडल v/s मंडल' की राजनीति भी कहते है।

उत्तर मंडल (वर्तमान) काल –

- वर्तमान दौर में भी भारतीय लोकतंत्र में जातियों का महत्व बना हुआ है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से चुनावों में विकासवादी मुद्दों का महत्व बढ़ा है परन्तु निकट भविष्य में जाति के भारत के राजनीतिक पटल से पूर्णतः समाप्त होने की संभावना कम है।

जातिगत राजनीति का प्रभाव –

नकारात्मक –

- प्रस्तावना में निहित 'राजनैतिक न्याय' की अवधारणा के अनुकूल नहीं।
- राजनीति प्रदूषित होती है तथा सार्थक मुद्दे हाशिए पर चले जाते है।
- समाज में आंतरिक गतिरोध की स्थिति उत्पन्न कर जातिगत हिंसात्मक घटनाओं को बढ़ावा दिया जाता है।
- अल्पसंख्यक जातियों के हित प्रभावित होते है।
- योग्यता आधारित निर्वाचन का जातिगत वाक्पटुता द्वारा आरोपण।

सकारात्मक प्रभावः–

- रजनी कोठारी एवं रूडाल्फ के अनुसार, 'जाति के द्वारा भारतीय लोकतंत्र और गहरा हुआ है तथा भारतीय लोकतंत्र का विकास हुआ है। अतः इन्होंने जाति को लोकतांत्रीकरण के लिए सकारात्मक माना है।
- रजनी कोठारी के अनुसार लोकतंत्र के आगमन के बाद जातियों ने दबाव समूह के रूप में कार्य कर सरकारों पर जनहित से सम्बन्धित दायित्वों की पूर्ति हेतु सकारात्मक दबाव बनाया है। इस प्रकार सत्ता का स्थानान्तरण पिछड़े वर्गों की ओर होता है और यही असली लोकतंत्र है।

रजनी कोठारी के अनुसार जातियों के राजनीतिकरण के तीन पक्ष है।

1. पंथनिरपेक्ष आयाम
2. एकात्मक आयाम
3. चेतना का आयाम

राजनीति में जाति के दुरूपयोग रोकने के उपाय –

- जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 123(3) का प्रभावी क्रियान्वयन।
- इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा हाल ही में दिया गया निर्णय प्रासंगिक है कि इस धारा में लिखित 'उसकी' (His) शब्द से आशय उम्मीदवार, उसके एजेंट, मतदाता आदि सभी की जाति से है।
- न्यायिक सक्रियता इस मामले में दिखनी चाहिए।
- आरक्षण जैसे संवैधानिक प्रावधानों को जातिगत राजनीति का मुद्दा बनने से रोका जाए।
- सरकारों द्वारा जातीय तुष्टीकरण नहीं अपनाना चाहिए।
- पिछड़ी जातियों को मुख्यधारा में लाकर इसे रोका जाए।
- राजनीतिक दलों को जातिवादी उम्मीदवारों को टिकट देने से बचना चाहिए।

राजनीति का जातिकरण

- जब राजनीतिक दलों द्वारा महत्वपूर्ण पदों का आवंटन जातिगत पहचान के आधार पर जातीय तुष्टीकरण के उद्देश्य से किया जाए तो इसे राजनीति का जातिकरण कहते है।
  उदाहरण – महत्वपूर्ण संवैधानिक संस्थाओं (राजस्थान लोक सेवा आयोग) में पद आवंटन में किसी जाति विशेष को वरीयता।

नकारात्मक प्रभाव	सकारात्मक प्रभाव
• योग्यता आधारित चयन प्रक्रिया की अवहेलना	• समाज के सभी पक्षों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होता है।
• विशेषज्ञता का अभाव	• सामाजिक न्याय की अवधारणा सुनिश्चित।
• संगठनात्मक दक्षता व प्रभावशीलता का ह्रास	

राजनीति का जातिकरण कम करने हेतु उपाय –

- पद आवंटन हेतु ''मेरिट आधारित चयन'' प्रक्रिया
- विशेषज्ञता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। उदाहरण – लेटरल एन्ट्री

निष्कर्ष – यद्यपि जातियों के आंतरिक विभाजन से जातियों का महत्व कम हुआ है तथा विकास का मुद्दा प्रभावी हुआ है परन्तु निकट भविष्य में भारतीय राजनीति में इसका महत्व बना रहेगा।

भारतीय राजनीति में धर्म –

- राजनीति में धर्म की भूमिका से तात्पर्य है पंथ/मजहब/संप्रदाय की सामूहिक पहचान का राजनीतिक लाभों हेतु प्रयोग करना।
- यहाँ 'धर्म' का अर्थ नैतिक कर्तव्यों से न होकर किसी एक धार्मिक मत को मानने वाले लोगों के समूह से है।
- किसी धर्म को मानना या धार्मिक व्यवस्था का अनुसरण करना बुरा नहीं है किंतु धार्मिक हितों को राष्ट्रीय हितों से सर्वोपरि मानना तथा अपने धार्मिक हितों को अन्यों के धार्मिक हितों की कीमत पर प्रोत्साहन देना पूरे देश में समस्या खड़ी करता है।

धर्म के राजनीतिकरण के कारण –

(1) मुस्लिमों का आर्थिक पिछड़ापन –

- आज भी शैक्षणिक, स्वास्थ्य एवं अन्य व्यावसायिक संस्थानो में मुस्लिमों की संख्या उनकी जनसंख्या की तुलना में बहुत कम है अतः वे आर्थिक व शैक्षणिक रूप से हिन्दुओं से बहुत पिछड़े हुए है।
- यह असमानता निरन्तर बढ़ती जा रही है तथा गलतफहमियाँ बढ़ा रही है।

(2) साम्प्रदायिक दल एवं संस्थाएँ –

- भारतीय संविधान पंथनिरपेक्ष है, परन्तु अनेक राजनीतिक दलों का निर्माण धार्मिक आधार पर हुआ है तथा चुनाव में भी धर्म का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण – हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, अकाली दल आदि।
- अन्य अराजनैतिक संस्थाएँ जैसे – बजरंग दल, विश्व हिन्दू परिषद, इस्लामिक सेवक संघ आदि स्वयं यह घोषित करती है कि उनका कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं है परन्तु ये संप्रदाय आधारित दलों द्वारा समर्थित होती है।
- ये अर्द्धशिक्षित तथा धार्मिक संवेदनशील तत्वों को धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक झगड़ों में लिप्त होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

(3) कांग्रेस पार्टी की तुष्टीकरण की नीति –

- कांग्रेस की मुस्लिमोन्मुख नीतियों ने उसे मुस्लिमों के एकमुश्त मत दिलाए तथा भारतीय राजनीति में धर्म के प्रभाव को बढ़ाया।
- इस नीति ने कांग्रेस विरोधियों में मुस्लिम विरोधी भावना को और सशक्त किया।

(4) छद्म पंथनिरपेक्षता –

- भारत में राजनीतिक दल एव उनके नेता पंथनिरपेक्ष होने का दिखावा करते हैं। जबकि वास्तविक रूप से राजनीतिक लाभ के लिए धर्म का प्रभावी प्रयोग करते हैं।

(5) चुनावी राजनीति –

- भारत में चुनावों में 'अग्रेता ही विजेता' प्रणाली अपनायी गई है। अतः प्रत्येक दल का साध्य यही होता है कि उस दल के उम्मीदवार को सर्वाधिक मत प्राप्त हो। इस हेतु धर्म का प्रयोग उनके द्वारा वोट बैंक के रूप में किया जाता है।

(6) साम्प्रदायिक मीडिया, साहित्य व पुस्तके –

- विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे गए साम्प्रदायिक साहित्य ने वर्तमान समाज में धार्मिक पहलू को उभारा है तथा वर्तमान के मीडिया जगत ने साम्प्रदायिक खबरों के माध्यम से आग में घी डालने का काम किया है।

(7) हिन्दू अंध राष्ट्रीयता –

- बंटवारे के पश्चात् कई लोगों को यह लग गया कि मुस्लिमों को पृथक राष्ट्र मिल गया तथा अब भारत केवल हिन्दुओं का है। इसने नए संगठनात्मक उद्देश्यों वाले संगठनों की स्थापना को प्रेरित किया।

उदाहरण–

- हिन्दू महासभा – अखण्ड भारत बनाने हेतु प्रतिबद्ध
- जनसंघ (1951) – हिन्दू पुनरूद्धार
- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ – साम्प्रदायिक दंगो हेतु मुस्लिमों पर आरोप

(8) अवसरवादी राजनीति

- अपनी पंथनिरपेक्ष प्रतिबद्धताओं के बावजूद दलों ने अपनी आवश्यकतानुसार धर्म का समय–समय पर अपने अवसर पूरे करने हेतु प्रयोग किया।

उदाहरण–

- महाराष्ट्र में कांग्रेस–शिवसेना गठबंधन।
- जम्मू–कश्मीर में भाजपा–पी.डी.पी. गठबंधन

धर्म के राजनीतिकरण के नकारात्मक प्रभाव –

- सबसे बड़ा प्रभाव देश की एकता पर पड़ता है तथा यह हमारी बहुधार्मिक बंधुता में सहअस्तित्व के प्रतिरूप को बाधित करता है जिससे साम्प्रदायिक संघर्ष बढ़ते हैं एवं जन–धन की भी हानि होती है।
- यह भारत की राष्ट्रवादी पहचान के खिलाफ है तथा हमारी उभरती पंथनिरपेक्ष संस्कृति के लिए झटका है।
- इससे विकासात्मक मुद्दे पीछे छूट जाते है तथा राजनीति का स्तर गिर जाता है।
- अलगाववाद व उग्रवाद की प्रकृति बढ़ती है।
- 'पंथनिरपेक्षता' जैसे संवैधानिक मूल्य महज औपचारिकता बनकर रह जाते है।
- धार्मिक मुद्दो पर चुनाव जीतकर आने वाले नेता धार्मिक तुष्टीकरण की नीति अपनाते हैं, इससे अन्य धर्मों के लोगों के मन में वंचना का भाव आता है।

धर्म के राजनीतिकरण के सकारात्मक प्रभाव –

- उचित मुद्दों को लेकर की गई धर्म आधारित राजनीति विभिन्न धार्मिक समुदायों को उनके राजनीतिक अधिकार दिलाने में मदद करती है।

राजनीति में धर्म के नकारात्मक प्रभाव रोकने के उपाय–

- जनप्रतिनिधित्व अधिनियम–1951 की धारा 123(3) का प्रभावी क्रियान्वयन व इस संबंध में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिया गया निर्णय।
- साम्प्रदायिक सभाओं पर प्रतिबंध तथा दंगा प्रभावित क्षेत्रों में सामुदायिक जुर्माना इसका महत्वपूर्ण उपाय हो सकता है।
- जिन क्षेत्रों में दंगे, लूट एवं हथियार मिलना आम हो वहाँ पिछले ट्रेंड का अध्ययन करके बचाव के उपाय अपनाने चाहिए ताकि समूह आधारित तनाव कम हो।
- सकारात्मक उपाय जैसे– ''शिक्षा तथा ऐसे प्रयास जिनसे लोगों में अन्य धर्मों के प्रति भी सम्मान व सहिष्णुता पनपे'' किए जाने चाहिए।
- तीव्र समावेशी आर्थिक विकास, क्योंकि पिछड़ेपन को आधार बनाकर धार्मिक वोटबैंक मजबूत करना आसान होता है। इस हेतु सरकार द्वारा चलाई गई उस्ताद, नई रोशनी, नई मंजिल आदि योजनाएँ सराहनीय है।
- टी.वी. व मीडिया में ऐसी खबरे प्रकाशित न हो जो धार्मिक पूर्वाग्रहों व घृणा को बढ़ाती हो।
- प्रो. अचिन विनायक का मानना है कि साम्प्रदायिकता को समाप्त करने का सबसे बेहतर तरीका समाज का पंथनिरपेक्षीकरण है। उनके अनुसार, पंथनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप समाज में धर्म का महत्व कम हो जाएगा और वैज्ञानिक प्रवृत्तियों का विकास होगा।

भारतीय राजनीति में वर्ग –

- वर्ग लोगों का ऐसा समूह है, जिसमें साझी विशेषताएँ पाई जाती है तथा उन विशेषताओं के आधार पर उनमें 'एकत्व' की भावना पाई जाती है। यह भावना जितनी मजबूत होती है, 'वर्ग' द्वारा एक संगठित वोट बैंक के रूप में काम करने की संभावना उतनी ही अधिक होती है।
- वर्ग कई प्रकार के हो सकते है–
  - मार्क्स (आधार–आर्थिक) – शोषक (बुर्जुआ), शोषित (सर्वहारा)
  - वेबर (जीवन शैली) – संपत्ति वाला वर्ग, गैर संपत्ति वाला वर्ग, उच्च पद वाला वर्ग, छोटे व्यापारियों वाला वर्ग।
  - दीपांकर गुप्ता (उपभोग) – उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग, निम्न वर्ग।

वर्ग एवं जाति में अंतर –

वर्ग	जाति
• सदस्यता – योग्यता आधारित	• जन्म आधारित
• खुली व्यवस्था	• बंद व्यवस्था
• शहरी समाज में प्रचुरता	• ग्रामीण समाज में प्रचुरता
• आपसी प्रतिस्पर्धा ज्यादा	• आपसी प्रतिस्पर्धा कम

राजनीति में भूमिका –

(1) **राजनीतिक दलों का निर्माण** – भारतीय राजनीति में वर्ग की कम महत्ता होने के बाद भी बहुत से राजनीतिक दलों का निर्माण वर्गीय आधार पर हुआ।
उदाहरण– साम्यवादी दल मार्क्सवादी विचारधारा और सर्वहारा वर्ग का समर्थन करते है।

(2) **प्रत्याशियों का चयन** – चुनाव हेतु प्रत्याशियों के चयन में भी राजनीतिक दलों द्वारा वर्गीय दृष्टिकोण रखा जाता है। साम्यवादी पार्टियों को छोड़कर अन्य पार्टियाँ अधिकतर प्रत्याशी बुर्जुआ वर्ग से बनाती है।

(3) **मत व्यवहार** – जब भारत में मत व्यवहार के उत्तरदायी कारकों का अवलोकन करते हैं तो पाते है कि एक कारक के रूप में वर्ग भी रहा है। पश्चिम बंगाल और केरल में स्पष्ट रूप से वर्ग के आधार पर ही मत का व्यवहार होता है ऐसे ही आन्ध्रप्रदेश, बिहार एवं झारखंड के कुछ भागों में मत व्यवहार का आधार वर्ग रहा है।

(4) **सरकारी निर्णय** – सरकार विभिन्न वर्गों की आकांक्षाओं के आधार पर ही अपने निर्णय लेती है।

उदाहरण–

मध्यम वर्ग –

- कर में छूट
- आसान प्रशासनिक नियम
- उपभोग पर बाधाएँ कम
- सब्सिडी इत्यादि।

निम्न वर्ग –

- सामाजिक कल्याणकारी योजनाएँ
- गरीबी निवारण
- निःशुल्क शिक्षा एवं स्वास्थ्य इत्यादि।

उच्च वर्ग –

- आयात कर कम
- विलासी वस्तुओं का उत्पादन
- स्वच्छता संबंधी कदम
- लाइसेंसराज में कमी

(5) **राजनीतिक पद आवंटन** – इस दौरान वर्ग विशेष अवधारणा को प्राथमिक कारक के रूप में स्वीकार किया गया है।

उपर्युक्त बिंदुओं के आधार पर हम भारतीय राजनीति में वर्ग की भूमिका को समझ सकते है लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्य साम्यवादी या पूंजीवादी देशों की अपेक्षा भारतीय राजनीति में वर्ग की भूमिका तुलनात्मक रूप से कम है।

भारतीय राजनीति में वर्ग की भूमिका की कमी के कारण –

- भारतीय समाज का विभिन्न संप्रदायों व जाति में बंटा होना।
- वर्ग के लोगों में ही प्रतिस्पर्धा के कारण परस्पर फूट।
- सही रूप में मार्क्सवादी विचारधारा वाले राजनीतिक दलों का विकास नहीं हो पाना।
- सोवियत संघ के पतन के बाद वर्ग अवधारणा हतोत्साहित हुई।
- 1990 के दशक के बाद निरन्तर अन्य मुद्दो की प्रभावशीलता में वृद्धि हुई। जैसे– बाजार, हिन्दुत्व आदि।

भारतीय राजनीति में नृजातीयता –

- नृजातीय समूह से अभिप्राय– ''एक क्षेत्र में रहने वाले लोगों के उस समूह से है जो कि अपनी जाति, नस्ल, रंग, रक्त संबंध, संस्कृति और क्षेत्र के आधार पर एक दूसरे से संबंधित होते है। वे अपने आसपास के वातावरण से अपने आपको व अपने जनसमुदाय को पृथक बनाए रखते है और अपनी स्वायत्तता की रक्षा करते है।
- यह नृजातीयता की प्रवृति कई मौकों पर प्राकृतिक (उत्तर–पूर्व की जातियाँ, दक्षिण भारत–उत्तर भारत के बीच विभेद) तो कई मौकों पर मानव निर्मित (विविधताओं को बढ़ाकर बताने की प्रवृति) होती हैं।

नृजातीयता के आधार–

(1) भाषा – उत्तर–दक्षिण संघर्ष, द्रविड़ आन्दोलन, त्रिभाषा–फॉर्मूला संबंधी विवाद, राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को चुनौती।
(2) नस्ल – पूर्वोत्तर जनजातीय क्षेत्रों में अलगाववाद की प्रवृति (नागा–मिजो), पंजाब–हरियाणा क्षेत्र में खालसा एवं खलिस्तानी मांग।
(3) धर्म – सम्प्रदाय का रूप, पाकिस्तान का निर्माण, द्विराष्ट्र सिद्धान्त।
(4) क्षेत्र – जम्मू–कश्मीर स्वायत्तता संघर्ष, उत्तर पूर्व का संघर्ष, भूमिपुत्र अवधारणा।
(5) जाति – आरक्षण की मांग, जातीय संघर्ष, चुनाव का महत्वपूर्ण मुद्दा।

नृजातीय समूहों का भारतीय राजनीति पर प्रभाव–

- आज विश्व के लगभग सभी देशों में नृजातीय समूह पाए जाते हैं। नृजातीय समूहों में पारंपरिक वैमनस्य के कारण हिंसा, आतंक, भय का वातावरण विकसित हुआ है जिसके कारण यह समूह कई तरह की समस्याएँ पैदा कर देते हैं। इन नृजातीय समूहों में पाई जाने वाली हिंसा और पारम्परिक वैमनस्य की भावना भारत जैसे देश की राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए चुनौती बन गए हैं।

(1) **साम्प्रदायिकता** – भारत में धार्मिक आधार पर हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि नृजातीय समूह है इन समूहों ने उग्र रूप धारण करके साम्प्रदायिकता की समस्या को विकसित किया है। भारत में राजनीति को साम्प्रदायिकता का आधार देकर राष्ट्र में अराजकता की स्थिति पैदा करने की कोशिश की जा रही है।

(2) **जातिवाद** – जातिवाद को भी कुछ विद्वानों ने नृजातीय समूह में शामिल किया है। भारतीय राजनीति में जाति एक महत्वपूर्ण तथा निर्णायक तत्व रहा है और आज भी है। भारतीय राजनीति व मतदान व्यवहार को जाति बहुत प्रभावित करती है।

(3) **क्षेत्रवाद** – एक नृजातीय समूह अपने एक क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रहता है वे उसी क्षेत्र विशेष को अपना राज्य मानते हैं अतः नृजातीय समूह क्षेत्रवाद की भावना से प्रेरित होते हैं और इसी परिणामस्वरूप वे अलगाववाद व नए राज्यों की मांग को बढ़ावा देते है।

भूमिपुत्र → Son of the soil, धरती के लाल

- यह सिद्धान्त यह बताता है कि एक सीमित भौगोलिक क्षेत्र के समस्त संसाधनों पर सिर्फ और सिर्फ उन्हीं लोगों का अधिकार होना चाहिए जिनका जन्म उस क्षेत्र में हुआ है और जिनका जन्म उस क्षेत्र से बाहर हुआ हो, उनका, उस क्षेत्र में कोई अधिकार नहीं है।
- यह क्षेत्रीय नृजातीयता का उदाहरण है।
  उदाहरण – महाराष्ट्र केवल मराठी लोगों के लिए है। (शिवसेना)
- कई बार इस अवधारणा ने हिंसक रूप धारण कर लिए। जैसे– 2004 में रेलवे भर्ती के दौरान बिहार के लोगों के साथ मुंबई व असम में हुई हिंसक घटनाएँ।

(4) क्षेत्रीय दलों का गठन – नृजातीय समूह अपने अधिकारों व संस्कृति की रक्षा हेतु क्षेत्रवाद की भावना से ओतप्रोत होकर क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का गठन करते हैं। जैसे– पीपुल्स पार्टी ऑफ अरूणाचल, कुकी नेशनल असेंबली, मणिपुर पीपुल्स पार्टी आदि।

(5) उग्रवादी संगठनों का उदय – नृजातीय समूह की उग्र भावनाएँ उग्रवादी संगठनों को जन्म देती है। जैसे– खलिस्तान लिबरेशन फोर्स (पंजाब), कश्मीर लिबरेशन फोर्स (जम्मू–कश्मीर), यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम, नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालैण्ड आदि।

(6) छात्र संगठनों का निर्माण – नृजातीय समूह की भावना से प्रेरित होकर भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में कई छात्र संगठनों का निर्माण किया गया है। जैसे– ऑल असम स्टूडेंट्स यूनियन, अरूणाचल प्रदेश छात्र यूनियन आदि।

- वर्तमान में बोड़ो छात्र परिषद् बोडोलैण्ड की मांग के लिए संघर्ष कर रही है।

(7) राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति की मांग – क्षेत्रवाद की भावना से प्रेरित होकर नृजातीय समूह राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति की मांग करते हैं। ये राजनीतिक मांगे कई तरह की होती हैं। जैसे– पृथक राज्य की मांग, पूर्ण राज्य की मांग, अंतर्राज्यीय विवाद, राज्यों के लोगों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन आदि।

(8) हिंसक आन्दोलन – नृजातीय समूह अपनी मांगो, अधिकारों आदि की प्राप्ति के लिए हिंसक आन्दोलन का सहारा भी लेते हैं। जैसे– मिजो नेशनल फ्रंट ने लालडेंगा के नेतृत्व में स्वतंत्र मिजोरम के लिए अपनी आतंकवादी गतिविधियाँ जारी रखी जो कि जून, 1986 तक जारी रही।

- असम के नागा पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने स्वतंत्र राज्य की मांग की, नागाओं ने अपनी मांगे पूरी करवाने के लिए हिंसक तथा अराजक कार्यवाही की जिससे वहां सेना को बुलाना पड़ा।

(9) भारतीय अखंडता के समक्ष चुनौती के रूप में –

- नृजातीय समूह भारत की आंतरिक सुरक्षा एवं अखंडता के समक्ष एक चुनौती पेश करते हैं। इन समूहों के कई संगठन अपनी मांगों को लेकर उग्र तरीके अपनाते है। खास तौर पर पूर्वोत्तर राज्यों में कार्यरत अनेक संगठन जैसे–नागा, बोडो संगठन आदि।
- इन समूहों ने राष्ट्रीय हितों को गौण कर राष्ट्रीयता की भावना को अनदेखा किया है।

समाधान –

(1) राष्ट्रीय भावना का विकास किया जाना चाहिए। जैसे– घर–घर तिरंगा आदि।
(2) शिक्षा व जागरूकता में वृद्धि हो।
(3) नैतिक मूल्यों का विकास हो।
(4) सभी समूहों को राष्ट्रीय विकास में भागीदारी मिले।
(5) सरकार व क्षेत्रीय संगठन सम्मिलित होकर कार्य करें आदि।

भारतीय राजनीति में भाषा –

- प्रो. मॉरिस जोन्स के अनुसार क्षेत्रवाद और भाषा के सवाल भारतीय राजनीति के इतने ज्वलंत प्रश्न रहे हैं कि राजनीति इतिहास की घटनाओं के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है। अक्सर ऐसा लगता है कि यह राष्ट्रीय एकता की सम्पूर्ण समस्या है।
- संघ की भाषा – संविधान के अनुच्छेद–343, 344 के अनुसार संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी तथा 15 वर्ष तक अंग्रेजी को भी साथ में जारी रखा जाएगा। उसके बाद से अंग्रेजी भी हिन्दी के साथ राजभाषा के रूप में है।

- भारतीय राजनीति के अनेक निर्धारक तत्वों में से एक भाषा भी है। भारत एक बहुभाषी देश है। यहाँ अनेक भाषाएँ एवं बोलियाँ बोली जाती है। प्रारम्भ में हमारे संविधान की अनुसूची–VIII में 14 भाषाएँ थी परन्तु वर्तमान में 22 भाषाएँ सम्मिलित है।
- भाषा की विविधता भारतीय समाज की अनूठी विरासत है किंतु यही विशेषता तब संकट बन जाती है जब यहाँ पर बोली तथा लिखी जाने वाली अनेक भाषाओं के कारण लोगों के मध्य द्वेष उत्पन्न होता है। ध्यातव्य है कि 1950 से 1960 के मध्य राजनीति का प्रमुख मुद्दा भाषा ही था।

भाषा की भूमिका –

(1) भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन –

- स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात ही भाषा के आधार पर राज्यों के निर्माण की मांग जोर पकड़ने लगी। 1952 ई. में तेलगू नेता पोट्टी श्री रामल्लु की अनशन में मृत्यु के पश्चात यह मांग जोर पकड़ गई।
- राज्य पुनर्गठन आयोग के आधार पर 1960 ई. में मुंबई से गुजरात व महाराष्ट्र बने। 1966 में पंजाब से हरियाणा पृथक हुआ तथा पंजाब आज भी हरियाणा व राजस्थान में स्थित पंजाबी भाषी क्षेत्रों का विलय कर विस्तार चाहता है।

(2) हिन्दी विरोधी राजनीति –

- दक्षिण भारतीय राज्यों ने प्रारंभ से ही हिन्दी विरोध की राजनीति अपनाई है। वहाँ पर तो भाषाई आधार पर क्षेत्रीय राजनीतिक दल जनाधार जुटाने में सफल होते हैं। डी.एम.के. का मुख्य ध्येय हिन्दी विरोध होता है।
- भाषा आयोग के बांग्ला व तमिल सदस्यों (डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी और डॉ. पी. सुब्बा नारायण) ने अपना मत इन शब्दों में व्यक्त किया – अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को प्रतिस्थापित करने में जल्दी का परिणाम अहिन्दी भाषी जनता पर हिन्दी थोपना है। फलस्वरूप जन जीवन अस्त–व्यस्त हो जाएगा।

(3) भाषाई राज्यों में विवाद –

- भाषा के आधार पर राज्य पुनर्गठन से ही ''चण्डीगढ़ के स्वामित्व की समस्या'' अस्तित्व में आई। भाषायी आधार पर ही कर्नाटक व महाराष्ट्र में बेलगाँव को लेकर विवाद है। 1961 की जनगणना के अनुसार यहाँ 51.2% मराठी है। अतः महाराष्ट्र अपना दावा करता है। असम में भी बंगाली व असमी को लेकर विवाद है।

(4) भाषा के आधार पर उत्तर बनाम दक्षिण –

उत्तर भारत (सभी हिन्दी भाषी) – उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, जम्मू–कश्मीर, हरियाणा, उत्तराखण्ड हिमाचल प्रदेश

दक्षिण भारत (गैर हिन्दी) – केरल (मलयालम), कर्नाटक(कन्नड), तमिलनाडु(तमिल), आन्ध्रप्रदेश (तेलुगु), महासाष्ट्र (मराठी), तेलगांना (तेलुगु)

- इस काल्पनिक भाषागत विभाजन ने भारत को दो विरोधी भागों में बांट दिया है। जो भारत के एकीकरण व अखण्डता में विराट समस्या व खतरे की तरह सदैव से उपस्थित रहा है।

(5) भाषागत दबाव गुट –

- भारतीय राजनीति में भाषागत दबाव गुटों का उदय हुआ है। उदाहरणार्थ भाषा के आधार पर मराठियों और गुजरातियों के अपने संगठन 'संयुक्त महाराष्ट्र समिति' व महागुजरात परिषद् ने दबाव समूहों की भूमिका निभाई।

(6) भाषा की मान्यता का प्रश्न –

- 8वीं अनुसूची में 14 से 22 भाषाएँ हो गयी है। अब भी समय–समय पर क्षेत्रीय भाषाओं को मान्यता का विवाद उठता रहता है। राजस्थानी, ब्रज, छत्तीसगढ़ी आदि भाषाएँ अपना–अपना दावा पेश करती रहती है।

(7) भाषाई अल्पसंख्यकों की समस्या –

- भाषा के आधार पर राज्य पुनर्गठन के बाद भी उन राज्यों में भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्या बनी हुई है। जैसे–कर्नाटक में मराठी भाषी, पंजाब में हिन्दी भाषी वहाँ भाषायी अल्पसंख्यक है। कर्नाटक में बसे मलयालियों व तमिलों में अब असुरक्षा का भाव आ गया है।

(8) भाषा व शिक्षा –

- स्वतंत्रता के 70 वर्षों बाद भी हम भाषाई समस्या के कारण सर्वमान्य शिक्षा नीति नहीं बना पाए है। जब कोई सर्वमान्य सा फॉर्मूला आता है तो वह भी भाषाई समस्या को लेकर असफल रहता है।
- उत्तरी राज्यों ने तृतीय भाषा के रूप में दक्षिण की भाषाओं के स्थान पर संस्कृत को अपनाया जबकि दक्षिण में हिन्दी की उपेक्षा की गई।

(9) भाषाई आन्दोलन –

- समय–समय पर भाषा विरोधी आन्दोलन चलते रहे है। उत्तर भारत में अंग्रेजी विरोधी तो दक्षिण भारत में डी.एम.के. के नेतृत्व में विद्यार्थियों ने मद्रास में हिन्दी विरोधी आन्दोलन चलाए।

(10) उर्दू और चुनावी राजनीति –

- उर्दू को लेकर राजनीतिक दल समय–समय पर चुनावों में लाभ लेने का प्रयास करते रहे हैं। 1980 ई. में कांग्रेस–1 ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में उर्दू को सम्मानजनक स्थान देने की बात कर मुस्लिम अल्पसंख्यक वोट बैंक को रिझाने का प्रयास किया।
- जनवरी 1980 ई. चुनावों से पूर्व लोकदल सरकार ने उत्तरप्रदेश में उर्दू को तीसरी भाषा के रूप में स्कूलों में अध्ययन की अनिवार्य भाषा बना दिया। नवम्बर–1989 के लोकसभा चुनावों में उर्दू को राज्य की दूसरी राजभाषा बनाए जाने के फैसले पर बदायुँ में दंगों में 2 दर्जन से अधिक लोगों की जाने गई।

(11) स्थानीयता की संकीर्ण भावना का उदय –

- भाषागत राजनीति के परिणामस्वरूप ''धरतीपुत्र अवधारणा'' का उदय हुआ है अर्थात् प्रादेशिक भाषा बोलने वाले उस क्षेत्र विशेष में सरकारी व गैर–सरकारी नौकरियों में नियुक्त किए जाए। महाराष्ट्र में शिवसेना ने इसी आधार पर दक्षिण भारतीयों एवं बिहारियों को परेशान किया।

समाधान हेतु सुझाव

- हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के लिए अहिन्दी भाषियों को इस ओर सकारात्मक सोच तैयार करने के लिए प्रेरित किया जाए।
- भाषागत उग्रता से बचते हुए अहिन्दी भाषियों की कठिनाई की ओर भी हिन्दी–भाषियों को ध्यान देना चाहिए।
- प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा बनाया जाए। इस हेतु प्रादेशिक भाषा को बढ़ावा दिया जाए। उदा.– नई शिक्षा नीति–2020 में मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान।
- वर्तमान वैश्वीकरण की जरूरतों के मुताबिक अंग्रेजी भाषा को भी पढ़ाया जाना चाहिए।
- त्रिभाषा सूत्र को निष्ठा के साथ लागू किया जाए।
  - हिन्दी क्षेत्र के लिए – 1. हिन्दी 2. अंग्रेजी 3. अन्य भारतीय भाषा (दक्षिण भारतीय भाषा)
  - गैर हिन्दी क्षेत्र के लिए – 1. मातृभाषा 2. अंग्रेजी 3. एक उत्तर भारतीय भाषा (हिन्दी)

- भाषा को राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का माध्यम बनाने से रोका जाए।
- हिन्दी को राष्ट्रभाषा की बजाए सम्पर्क भाषा के रूप में ही स्वीकारा जाए।
- शैक्षणिक भ्रमण, व्याख्यान सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से भारतीय भाषाओं में निकटता स्थापित की जाए।

निष्कर्ष – भाषा विषयक तनावों से भारतीय एकता को खतरा पहुँचा है। आज भाषा का राजनीतिक प्रयोग अल्पसंख्यक तुष्टीकरण हेतु व भाषाई कटुता ने भारतीय अखण्डता के समक्ष चुनौती खड़ी कर दी। अतः हमें इन विकारों को मिटाकर राजभाषा के प्रश्न को सुलझाना होगा। विविध राजनीतिक दलों, भाषाओं और क्षेत्रों के प्रतिनिधियों का व्यापक आधार पर एक गोलमेज सम्मेलन बुलाकर शांत वातावरण में भाषा की समस्या का समाधान खोजा जाए। इस संबंध में निर्णय बहुमत के स्थान पर सर्वसम्मति से हो। भारत की एकता, अखण्डता तथा शिक्षा व्यवस्था के हितों के लिए भाषा की समस्या को राजनीति से पृथक करना ही होगा।

भारतीय राजनीति में लिंग –

यद्यपि भारत में लैंगिक पहचान (विशेषकर महिलाओं से संबंधित) राजनीति के मैदान में अपना मजबूत अस्तित्व नहीं रखती और परिवार, जाति, धर्म, वर्ग, क्षेत्र आदि पहचाने इस पर भारी पड़ जाती है। परन्तु विगत कुछ समय से लैंगिक मुद्दों का राजनीति से जुड़ाव उत्तरोत्तर रूप से मजबूत होता दिख रहा है।

- वर्तमान में कई नारीवादी संगठन व नेता सरकार पर दबाव समूह के रूप में उन्हें प्रेरित करते हैं कि वे महिलाओं के हित में कदम उठाए। हाल ही के समय में निम्न रूपों में लिंग–राजनीति संबंध देखने को मिले है –
  - संसद में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण देने संबंधी विधेयक।
  - तीन तलाक व समान नागरिक संहिता से 'महिला समानता' का मुद्दा भी जुड़ा है।
  - मंदिर–मस्जिद प्रवेश को लेकर आंदोलन (शनि शिंगणापुर मंदिर व हाजी अली दरगाह में महिलाओं को प्रवेश दे दिया गया।)
  - कई राज्यों में महिलाओं द्वारा सरकार से शराबबंदी की मांग।

किन्नरों को तृतीय लिंग का दर्जा –

- सुप्रीम कोर्ट ने तृतीय लिंग का दर्जा किन्नरों को देते हुए सरकार से उन्हें नीतिगत व संवैधानिक संरक्षण देने को कहा है, ताकि ये वर्ग उपेक्षित व हेय जीवन जीने हेतु मजबूर न हो।

लैंगिक भेदभाव व महिला अधिकार का मुद्दा –

- आधुनिक भारत में स्त्रियों की स्थिति का प्रश्न 19वीं सदी के मध्य वर्गीय समाज सुधार आंदोलन के एक हिस्से के रूप में उदित हुआ। इन आंदोलनों को मध्य वर्गीय सुधार आंदोलनों की संज्ञा दी जाती है क्योंकि यह सुधारक वर्ग नए उभरते–पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीय मध्यम वर्ग से था। वे अक्सर आधुनिक पश्चिम के लोकतांत्रिक आदर्शों द्वारा और अपने स्वयं के अतीत की लोकतांत्रिक परम्पराओं पर गौरव महसूस करते हुए इन सुधारों से प्रेरित हुए थे।

  उदाहरण–
  - राजा राम मोहन राय ने सत्ती प्रथा विरोधी अभियान का नेतृत्व किया।
  - रानाडे ने विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए आंदोलन चलाया।
  - ज्योतिबा फूले एवं सावित्री बाई फुले ने जातीय एवं लैंगिक अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाई।
  - सर सैयद अहमद खान ने इस्लाम में सामाजिक सुधारों की आवाज को बुलंद किया।

- इन सुधारकों के विचारों में पाश्चात्य तर्क संगति और भारतीय पारंपरिकता का सुंदर मिश्रण था।
- इनके द्वारा महिला अधिकारों की बात मानवतावादी तथा नैसर्गिक अधिकारों (मानव होने के नाते) के सिद्धांतों एवं हिन्दू शास्त्रों के आधार पर की गई।
- महिला शिक्षा हेतु दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद आदि ने विशेष जोर दिया ताकि महिलाएँ घर की चारदिवारी से बाहर निकलकर नए मूल्यों विचारों एवं स्वयं के अधिकारों से रूबरू हो सके तथा अपने अधिकारों की लड़ाई स्वयं लड़ सके।
- पुरूषों एवं स्त्रियों के बीच जैविक और शारीरिक स्पष्ट अंतरों के कारण अक्सर यही समझा जाता है कि लैंगिक असमानता प्रकृति की देन है किंतु इस बाहरी दिखावट के बावजूद विद्वानों ने यह भी दर्शा दिया है कि पुरूषों एवं स्त्रियों के बीच असमानताएँ प्राकृतिक नहीं बल्कि सामाजिक है।
- इस संबंध में प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका ''सिमोन दी बुआवर'' का कथन ''स्त्री पैदा नहीं होती, बना दी जाती है'' महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे समाज की पितृसत्तात्मक सोच स्त्रियों को समान नजर से देखती ही नहीं है तथा स्त्री को दोयम दर्जे का मानव मानकर उसी अनुरूप व्यवहार करता है लेकिन कई समाज में मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था (मेघालय का खासी समाज), देश के महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति एवं निर्वाचन (इंदिरा गांधी, प्रतिभा पाटिल), समाज सुधार आंदोलन (मेघा पाटेकर, अरूणा रॉय), अंतरिक्ष, विदेश नीति आदि क्षेत्रों में महिलाओं की प्रभावी भूमिका ने पुरूष प्रधान सोच को चुनौती दी है।
- महिला अधिकारों लैंगिक समानता सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक न्याय के लिए संघर्ष को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

आजादी से पूर्व (1947 से पहले)

- स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी जी के आगमन के पश्चात् महिलाओं की भागीदारी में आमूलचूल परिवर्तन आया क्योंकि गांधी जी के संघर्ष के साधनों की प्रकृति जैसे–अहिंसा, असहयोग शांतिपूर्ण धरनों जैसे तौर तरीको ने महिलाओं की भागीदारी के लिए सहज माध्यम प्रदान किया।
- 1931 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कराची अधिवेशन में नागरिकों के मूल अधिकारों के संबंध में की गई घोषणा के तहत विधि के समक्ष समानता सार्वजनिक वयस्क मताधिकार व विभिन्न सार्वजनिक पदों हेतु निर्वाचन में महिलाओं के समान के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई।

आजादी के पश्चात्

- 1947 के पश्चात अधिकारों के लिए संघर्ष को मूर्त रूप देने के लिए कानूनी एवं संवैधानिक माध्यम को अपनाया जिसके तहत हिंदु विवाह अधिनियम, दहेज विरोधी अधिनियम एवं संपत्ति व उत्तराधिकार में समान भागीदारी के लिए प्रावधानों को वैधानिक दर्जा दिया गया।
- भारतीय संविधान के विभिन्न अधिनियम जैसे– 14, 16, 19, 23 (मानव दूर्व्यापार, नीति निदेशक तत्व व मूल कर्त्तव्यों में महिलाओं की गरीमा एवं समानता हेतु विभिन्न प्रावधान किए जिनमें समान कार्य हेतु समान वेतन, मातृत्व लाभ, 73वाँ व 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा महिलाओं हेतु पंचायती राज संस्थाओं में एक तिहाई आरक्षण जैसे प्रावधान मुख्य है। इनके साथ ही संविधान की प्रस्तावना में उल्लेखित सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय की परिकल्पना भी महिलाओं से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी है। नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद–44 समान नागरिक संहिता भी महिला के अधिकारों से संबंधित है। क्योंकि अधिकांश कानून व प्रथाएँ महिला विरोधी अथवा भेदभावकारी प्रतीत होती है।
- सामाजिक संदर्भ में महिलाओं के अधिकारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए विभिन्न कानूनी प्रावधान किए गए जैसे– उत्तराधिकार में समान भागीदारी, संपत्ति में सम्मान हिस्सेदारी के लिए कानून (1956), यौन उत्पीड़न से सुरक्षा हेतु अधिनियम (2013), घरेलू हिंसा से बचाव हेतु अधिनियम (2005) दहेज प्रथा पर रोक हेतु अधिनियम (1961)

- इस संदर्भ में भारत की न्यायपालिका ने भी न्यायिक सक्रियता द्वारा कई अधिकारों को मान्यता दी जिसमें विशाखा गाईडलाइन (1997) जो कार्यस्थल पर महिलाओं हेतु सहज व सम्मानजनक परिस्थितियों के निर्माण हेतु महत्त्वपूर्ण है साथ ही हाल में आए निजता के अधिकार से संबंधित निर्णय ने महिलाओं को नए अधिकार दिए है कि वे अपना निर्णय अपने अनुसार ले सके। मंदिर प्रवेश को लेकर हाल ही में चले आंदोलनों व उसके पश्चात् में मिले प्रवेश के अधिकार ने समानता के अधिकार को पुनः महसूस करवाया है।
- मातृत्व अवकाश को बढ़ाकर 26 सप्ताह करने संबंधित अधिनियम का उल्लेख करना लाजमी है जो महिला स्वास्थ्य, पोषण व समान भागीदारी को बढ़ावा देने में सहायक है। राजनीतिक पक्ष को देखा जाए तो सार्वभौमिक वयस्कता मताधिकार, पंचायती राज संस्थानों में एक तिहाई आरक्षण तथा किसी भी सार्वजनिक पद पर नियुक्त व निर्वाचित होने के अधिकार ने महिलाओं को अपनी बात मुख्य रूप से राष्ट्रीय पटल पर रखने में सक्षम बनाया है। संसद व राज्य विधान मंडलों में आरक्षण का मुद्दा भी समय–समय पर विभिन्न मंचों से उठाया जाता रहा है। जिसकी अनुपूर्ति के पश्चात ही महिलाओं की राजनीति में भागीदारी और अधिक बढ़ सकेगी।
- सुषमा स्वराज, निर्मला सीतारमण जैसी महिला व्यक्तित्व ने विदेश एवं रक्षा जैसे मंत्रालयों को सुशोभित किया है जो महिलाओं की सर्वोच्च स्तर पर अभिव्यक्ति का उदाहरण है।
- डॉ. अम्बेडकर का कथन ''किसी भी समुदाय को राजनीतिक रूप से स्वतंत्रता तथा समाज में बंधुत्व व बराबरी का दर्जा दिलाने हेतु आवश्यक है कि उसे पहले आर्थिक रूप से समानता दी जाए'' यह दर्शाता है कि महिलाओं को आर्थिक रूप से सबल बनाने के अभाव में अन्य राजनीतिक एवं सामाजिक अधिकार बेइमानी साबित होते है।
- इसी संदर्भ में भारत सरकार द्वारा भी कई प्रावधान किए जिनका विस्तार हमारी न्यायपालिका द्वारा भी किया गया। जैसे समान कार्य हेतु समान वेतन, महिला सशक्तिकरण हेतु चलाई गई विभिन्न योजनाएँ, स्वयं सहायता समूहों को दिए जाने वाले प्रोत्साहनकारी उपाय, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संबंधित विशाखा गाइडलाइन, राष्ट्रीय महिला आयोग को वैधानिक दर्जा, गर्भवती महिलाओं को 26 सप्ताह का सवैतनिक अवकाश, स्टैंड अप इंडिया, महिला हाट, बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओं जैसी योजनाएँ महत्त्वपूर्ण है।

महिलाओं के समक्ष विभिन्न चुनौतियाँ –

राजनीतिक क्षेत्र में –

- विभिन्न प्रतिनिधि संस्थानों में भागीदारी जनसंख्या के अनुरूप नहीं।
- सरपंच पति की अवधारणा – सभी स्तरों पर।
- सार्वजनिक मंचों से महिला नेताओं की आवाज बुलंद नहीं।
- वोट देने, प्रत्याशी के तौर पर खड़ा होने के निर्णय का अधिकार नहीं।
- महिला अधिकारों से संबंधित मुद्दों पर केवल जुबानी खर्च।
- महिला आरक्षण पर आम सहमति का अभाव – विधेयक लंबित।

सामाजिक क्षेत्र में –

- पितृसत्तात्मक व पुरूष प्रधान सोच या मानसिकता।
- विभिन्न कानूनों के तहत मिले अधिकारों की अनुपालना समुचित रूप से नहीं होना।
- शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण के मानकों पर पुरूषों से भारी पिछड़ापन।
- दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, शिशु/कन्या वध की कुप्रथा, तेजाब हमला।
- मूल्यों, आदर्शों, संस्कारों व संस्कृति के संरक्षण की जिम्मेदारी का भार महिलाओं के कंधो पर।

- बाजारीकरण, पश्चिमीकरण के संक्रमण के दौर में नैतिकता, पारिवारिक मूल्यों, पहनावें आदि के संबंध में चयन के अधिकार पर रोक।

आर्थिक क्षेत्र में –

- समान कार्य हेतु समान वेतन का आदर्श कागजी पन्नों तक सीमित/औपचारिक व गैर संगठनात्मक आर्थिक क्षेत्रों में अनिश्चित भविष्य/दमनीय सुरक्षा व्यवस्था।
- कम वेतन, औपचारिक क्षेत्र में अत्यंत कम भागीदारी।
- कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, भेदभाव।
- सम्पत्ति व उत्तराधिकार के अधिकारों की अनदेखी।
- निर्णय निर्माण के उच्च स्तर पर महिलाओं की भागीदारी की स्थिति अत्यंत गंभीर।
- वित्तीय समावेशन, ऋण तक पहुंच, बैंक खातों की अनुपलब्धता आदि।
- गृह युद्धों, सांप्रदायिक दंगों व संघर्ष के अन्य दौरों में महिलाओं को विशेष समस्याएं (शरणार्थी, प्रवासन आदि)।
- सार्वजनिक मंचों से नेताओं (जन प्रतिनिधियों) द्वारा की जाने वाली महिला विरोधी टिप्पणियों का असर आमजन पर।
- इंटरनेट तक सहज पहुंच ने पोर्नोग्राफी, यौन हिंसा, अभद्र टिप्पणियों, महिला गरिमा विरोधी सोच के प्रसार को बढ़ावा।
- महिला वर्ग से संबंधित मुद्दों पर पुलिस, परिवार, समाज मीडिया का असंवेदनशील रवैया।

लैंगिक समानता को व्यवहार में लाने हेतु आवश्यक कदम व जिम्मेदार संस्थाएँ

- विधायिका – कानून निर्माण (सुरक्षा, आरक्षण, समानता आदि हेतु)।
- कार्यपालिका – कानूनों, नियमों का जमीनी स्तर पर अनुपालन सुनिश्चित करें (प्रशासन+पुलिस)
- न्यायपालिका –
  - सरकार व समाज एवं प्रशासन की जवाबदेहिता सुनिश्चित करें।
  - न्यायिक सक्रियता का साधन अपनाएँ।
  - न्याय प्रणाली को सहज, सरल, सुगम्य एवं त्वरित करें।
- समाज – महिला संवेदनशील सोच को बढ़ावा, प्रगतिशील मानसिकता आधुनिक मूल्यों को अपनाने के प्रति सहजता
- मीडिया –
  - जागरूकता का प्रचार–प्रसार।
  - महिला गरिमा विरोधी सामग्री पर रोक।
  - अधिकारों के लिए बहस का मंच बने।
- स्वयं सहायता समूह व गैर सरकारी संगठन–
  - महिला सशक्तिकरण के मुद्दों को आवाज दें।
  - सामूहिक भागीदारी की प्रवृति विकसित करें।
- शिक्षा –
  - नैतिक मूल्यों पर आधारित।
  - लैंगिक रूप से संवेदनशील।
  - सार्वभौमिक शिक्षा (महिला साक्षरता पर जोर)

- स्वयं महिला द्वारा –
  - अधिकारों की मांग पुरजोर तरीके से।
  - सांगठनिक आंदोलन
- वैधानिक प्रावधान –
  - महिला उत्थान हेतु राष्ट्रीय नीति – 2001
  - मातृत्व अवकाश लाभ अधिनियम – 1961
  - बाल विवाह निषेध अधिनियम – 2006
  - पी सी पी एन डी टी – 1994
  - कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से बचाव हेतु अधिनियम – 2013
- अंतरराष्ट्रीय सहभागिता –
  - महिला विरोधी सभी भेदभावों की समाधान हेतु कन्वेशन – 1993
  - मैक्सिको कार्य योजना – 1975
  - बीजिंग घोषणा पत्र – 1995

❖ तीन तलाक

- मुस्लिम महिला अधिकारों का मुद्दा शाहबानो केस (1985) – उच्चतम न्यायालय ने तलाकशुदा महिला को भत्ता देने का आदेश दिया।
- उच्चतम न्यायालय के निर्णय को पलटने के लिए सरकार द्वारा नया कानून ''मुस्लिम महिला तलाक संबंधित अधिकार अधिनियम–1986'' लाया गया जिसके अन्तर्गत केवल 3 माह हेतु भत्ता देय होगा।
- तलाक–ए–बिद्दत बहुविवाह निकाह हलाला चुनौती – शायरा बानो केस (2017) – तत्काल तीन तलाक पर प्रतिबंध लगाया गया।

ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड (AIMPLB) तथा महिला अधिकार समर्थकों के मत–

AIMPLB	महिला अधिकार समर्थक
सैकड़ो वर्षों पुरानी प्रथा राज्य का प्रतीक है।	परम्परा की प्राचीनता किसी कुप्रथा को सही ठहराने का साधन नहीं
दीवानी मामलों में हस्तक्षेप का राज्य को अधिकार नहीं।	नीति निदेशक तत्व को लागू करने + भेदभाव को समाप्त करने हेतु राज्य हस्तक्षेप कर सकता है।
स्वयं मुस्लिम समुदाय सुधारों हेतु प्रयासरत है।	इन सालों में कोई सुधार नहीं देखा गया है।
प्रत्येक सुधार केवल बहुसंख्यकों की संस्कृति को थोपने का प्रयास है।	अनुच्छेद 14 व 19 का उल्लंघन है।
धार्मिक मुद्दों पर हस्तक्षेप तलवार की धार पर चलने के समान है।	धर्म का अभिन्न हिस्सा नहीं इसलिए चुनौती दी जा सकती है।
प्रत्येक परम्परा को तर्क व विवेचना के आधार पर आंका जाए।	अनेक मुस्लिम देशों में प्रतिबंध कर नए विकल्प को अपनाया गया।
सुधारों की शुरूआत स्वयं अल्पसंख्यक वर्ग के बुद्धिजीवी, उलेमा एवं महिला वर्ग द्वारा की जाए।	समान नागरिक संहिता (अनुच्छेद–44) की ओर बढ़ता कदम प्रस्तावना के सामाजिक न्याय के आदर्श को पूरा करने में सहायक।

राजनीतिक दल व मतदान व्यवहार

राजनीतिक दल – समान राजनीतिक विचार रखने वाले लोगों द्वारा बनाए गए ऐसे संगठन होते हैं जिनके द्वारा वे लोग संवैधानिक तरीकों से सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

भूमिका –

- लोकतांत्रिक देशों में चुनाव राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किए उम्मीदवारों के बीच लड़ा जाता है।
- दल अलग–अलग नीतियों और कार्यक्रमों को मतदाताओं के समक्ष रखते है तथा मतदाता अपनी पसंद की नीतियाँ व कार्यक्रम चुनते है।
- पार्टियाँ देश के कानून निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती है। (विधायिका में औपचारिक बहस के माध्यम से)
- दलों द्वारा ही सरकार व विपक्ष की भूमिका निभाई जाती है।

आवश्यकता क्यों?

- यदि दल नहीं होंगे तो उम्मीदवार स्वतंत्र व निर्दलीय चुनाव लड़ेंगे जिससे उनका उत्तरदायित्व क्षेत्र विशेष के प्रति होगा ना कि समूचे देश के प्रति।
- सरकार निर्माण हो जाएगा परन्तु उसकी उपयोगिता संदिग्ध होगी।
- बड़े एवं जटिल समाज में भिन्न–भिन्न विचारों को समेटने और सरकार की नजर में लाने के लिए किसी माध्यम/एजेंसी की आवश्यकता होती है जो राजनीतिक दल के रूप में प्राप्त होती है। अतः राजनीतिक दल लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त है।

भारत में दलीय प्रणाली का विकास –

प्रथम चरण (1950–1967) –

- रजनी कोठारी ने इस चरण को कांग्रेस व्यवस्था की संज्ञा दी।
- इनके अनुसार कांग्रेस की भूमिका पक्ष व विपक्ष दोनों में थी।
- विचारकों के अनुसार, कांग्रेस भारतीय बहुलवादी, विविधतामूलक संघात्मक समाज का प्रतिरूप था।
- कांग्रेस को सहमति वाला दल भी कहा गया, जिसे सामूहिक नेतृत्व प्रधान था।
- विचारकों ने कांग्रेस को इन्द्रधनुषी दल की संज्ञा दी, जिसमें सभी प्रकार की क्षेत्रीय विषमताओं और वैचारिक असहमतियों को स्थान प्रदान किया गया।

द्वितीय चरण (1967–77)

- इस चरण में भारत में प्रतिस्पर्धी दलीय प्रणाली का आगमन हुआ।
- विपक्षी दलों ने इस बिन्दु पर बल दिया कि कांग्रेस को मतों का बहुमत प्राप्त नहीं होता, इसलिए कांग्रेस के जीतने का मूल कारण विपक्षी दलों में एकता का अभाव है।
- 1967 चुनाव – कांग्रेस को 2/3 बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। 9 राज्यों में गैर–कांग्रेसी सरकारों का निर्माण।

❖ रजनी कोठारी ने भारतीय दलीय प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए कहा कि, 'कांग्रेस पहले एक आन्दोलन था, बाद में यह दल के रूप में विकसित हुआ तथा कालांतर में यह गुट के रूप में परिवर्तित हुआ।

तृतीय चरण (1977–1989)

- वर्ष 1977 में कुछ विचारकों ने भारतीय दलीय प्रणाली में द्विदलीय प्रणाली के आगमन का संकेत माना।
- 1977 में भारतीय लोकदल, जनसंघ और समाजवादी पार्टी ने मिलकर नए दल (जनता पार्टी) का निर्माण किया तथा केन्द्र में पहली बार गैर कांग्रेसी शासन का निर्माण हुआ।
- पॉल ब्रॉस ने सत्य कहा है कि 'भारतीय दलीय व्यवस्था में दलों के मध्य कोई मूलभूत वैचारिक अंतर नहीं पाया जाता, फिर भी विभिन्न दल वैचारिक अन्तर दिखाने का प्रयत्न करते है।
- अन्य लोगों के मतों के अनुसार, जनता पार्टी दल के रूप में एक अनौपचारिक गठबंधन था, जिसमें अनेक दल सम्मिलित थे और इनकी विचारधाराएँ और सामाजिक आधार भी अलग–अलग थे।

उदाहरण– जनसंघ (हिन्दूवादी नीतिया), समाजवादी पार्टी (समाजवादी नीतियाँ)

- परन्तु जनता पार्टी द्वारा कांग्रेस का विकल्प रखने के साथ ही पिछड़ी जातियों को भी लामबंद किया परन्तु आंतरिक विरोधों के कारण जनता पार्टी कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी।
- 1980 – कांग्रेस सरकार (नीति परिवर्तन कर समाजवादी की बजाय आर्थिक वृद्धि व व्यक्तिगत करिश्मा का प्रयोग)
- 1983 – आन्ध्र प्रदेश व कर्नाटक में – तेलगूदेशम्, जनता पार्टी
- 1983 – क्षेत्रीय दल प्रभावी व हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी गैर–कांग्रेसी दलों ने प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया।

चतुर्थ चरण (1989 – वर्तमान तक)

- बहुदलीय/गठबंधनात्मक दलीय/संघात्मक दलीय प्रणाली
- इस चरण में बहुमत से अल्पमत का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ।
- वर्ष 1989 में लोकसभा चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला तथा जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार का निर्माण हुआ।
- भारतीय जनता पार्टी व साम्यवादी दलों ने बाहर से समर्थन प्रदान किया।
- इस दौर में "3M" (मंदिर – बीजेपी, मंडल–जनता पार्टी, मार्केट– कांग्रेस) की दलीय राजनीति में विस्तार हुआ।
- 1991 में कांग्रेस की सरकार बनी तथा नेतृत्व नेहरू गांधी परिवार के पास नहीं था। कांग्रेस की विचारधारा में बड़ा परिवर्तन देखा गया कि वह अब मध्यममार्गी से दक्षिणपंथी झुकाव की ओर बढ़ी।
- वर्ष 1996 में भारतीय दलीय प्रणाली में एक निर्णायक परिवर्तन हुआ, जिसमें भारतीय जनता पार्टी का उभार एक बड़े दल के रूप में हुआ। इसलिए अब भारतीय दलीय प्रणाली कांग्रेस की व्यवस्था नहीं रही।
- 1996–2014 तक सरकार निर्माण में क्षेत्रीय दलों की भूमिका निरन्तर बढ़ी।
- 2014 के बाद भारतीय जनता पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ परन्तु उसने गठबन्धन का साथ नहीं छोड़ा।

भारत में राजनीतिक दल –

- भारत में ''वयस्क मताधिकार'' प्रदान किया है अतः नागरिकों को चुनावी राजनीति में अपने हिसाब से भाग लेने की छूट दी गई है। अतः भारतीय लोकतंत्र में बहुदलीय व्यवस्था प्रचलित रही, यद्यपि धीरे–धीरे बहुदलीय की बजाय द्विदलीय व्यवस्था मजबूत होती दिख रही है।

विशेषताएँ–

- अनेक दलों की उपस्थिति – चुनाव आयोग के नवीनतम प्रकाशन (15 मई 2023) के अनुसार देश में 3097 पंजीकृत दल है जिनमें से 6 राष्ट्रीय तथा 72 राज्य स्तरीय दल है।
  कारण – देश का बड़ा आकार, धार्मिक, भाषायी, जातिगत व सांस्कृतिक विभिन्नताओं तथा आर्थिक असमानताओं के कारण देश में अत्यधिक दल है।
- व्यक्ति केन्द्रित दल – कई सारे राजनीतिक दल एक ही व्यक्ति/परिवार पर टिके है।
  उदाहरण– समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल आदि।
- विचारधारा आधारित दलों की अल्पता – भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी (दोनों साम्यवादी विचारधारा), भारतीय जनता पार्टी (सांस्कृतिक राष्ट्रवाद) आदि कुछ पार्टियों को छोड़कर अन्य पार्टियों की कोई निश्चित राजनीतिक विचारधारा नहीं है। अतः इस सन्दर्भ में पॉल ब्रॉस का कथन प्रासंगिक सिद्ध होता है।
- क्षेत्रीय दलों का प्रभुत्व – लगभग 95% दल ऐसे है जिनका जनाधार एक राज्य विशेष की सीमाओं के भीतर ही है।
  - अखिल भारतीय मुद्दों आधारित क्षेत्रीय दल – आम आदमी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, एआईएमआईएम इत्यादि।
  - क्षेत्र विशेष मुद्दों आधारित क्षेत्रीय दल – महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना, असम गणपरिषद्, हरियाणा जनहित कांग्रेस इत्यादि।
- परम्परागत कारकों पर आधारित राजनीतिक दल – दलों द्वारा आधुनिकीकरण एवं विकासात्मक मुद्दों की बजाय अभी भी जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र जैसे परम्परागत कारकों का प्रभाव अधिक रहता है।
- दलों के टूटने की लंबी परम्परा – पार्टी विभाजन का भारत में लंबा इतिहास रहा है।
  उदाहरण –
  कांग्रेस – स्वतंत्र पार्टी (1959), कांग्रेस (R, O, I)
  जनता पार्टी – जनता दल सेक्यूलर, जनता दल यूनाईटेड, राष्ट्रीय जनता दल।
  शिवसेना – मनसे

राष्ट्रीय दल –

शर्तें –

1. लोकसभा के चुनावों में कुल डाले गए वोटों के कम से कम 6% वोट चार या अधिक राज्यों में मिले हो, तथा लोकसभा की न्यूनतम 4 सीटे 3 अलग–अलग राज्यों से हो।
2. लोकसभा की कुल सीटों की कम से कम 2% सीटे (11) जीती हो (कम से कम 3 अलग–अलग राज्यों से)
3. पार्टी को कम से कम 4 राज्यों में राज्यस्तरीय पार्टी का दर्जा प्राप्त हो।

❖ वर्तमान में 6 दलों को राष्ट्रीय दल का दर्जा प्राप्त है–

1. भारतीय जनता पार्टी
2. कांग्रेस
3. बहुजन समाज पार्टी
4. मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी
5. नेशनल पीपुल्स पार्टी
6. आम आदमी पार्टी

राष्ट्रीय दल होने के लाभ –

- पूरे देश हेतु एक राजनीतिक चिह्न (चुनाव चिह्न)।
- दूरदर्शन/आकाशवाणी पर चुनावों के समय प्रचार हेतु समय मिलता है।
- इन पार्टियों के उम्मीदवारो को नामांकन हेतु केवल 1 प्रस्तावक की ही जरूरत होती है। (निर्दलीय व बिना पहचान वाले दलों हेतु 10 प्रस्तावक जरूरी)
- इलेक्टोरल रोल की दो निःशुल्क प्रतियाँ चुनाव आयोग द्वारा दी जाती है।
- 40 स्टार प्रचारक चुनाव में इस्तेमाल करने की छूट होती है जिनका यात्रा संबंधी खर्चा (गैर पहचान वाले दलों को 20 स्टार प्रचारक का ही प्रयोग)

राज्य स्तरीय दल –

शर्ते –

1. विधानसभा चुनाव में वैध मतों का 6% तथा 2 सीटे जीती हो।
2. विधानसभा चुनाव में उस राज्य की कुल सीटों की तीन प्रतिशत अथवा 3 सीटें जीती हो (इनमें से जो भी ज्यादा हो)।
3. लोकसभा चुनावों में उस राज्य में डाले गए कुल वैध मतों का 6% तथा न्यूनतम 1 सीट प्राप्त की हो।
4. लोकसभा/विधानसभा आम चुनावों में कुल वैध मतों का 8% प्राप्त किए हो। (2011 में जोड़ी गई)
5. यदि प्रत्येक 25 सीटों में से उस दल ने लोकसभा की कम से कम 1 सीट जीती हो या लोकसभा के चुनाव में उस संबंधित राज्य में उसे विभाजन में कम–से–कम इतनी सीटे प्राप्त की हो।

नोट –

- भारत में किसी राज्य की पहली गैर–कांग्रेसी सरकार 1957 में केरल में सी.पी.एम की बनी। (मुख्यमंत्री–नम्बुदिरीपाद)।
- केन्द्र में पहली गैर कांग्रेसी सरकार 1977 में जनता पार्टी की बनी (प्रधानमंत्री– मोरारजी देसाई)।

वर्तमान में भारत के प्रमुख राजनीतिक गठबंधन –

1. राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA - 1998) – 37 पार्टियाँ (बीजेपी, एआईएडीएमके, एलजेपी, एनपीपी इत्यादि)
2. आई.एन.डी.आई.ए.(INDIA - 2023) – 26 पार्टियाँ (काँग्रेस, समाजवादी पार्टी, एनसीपी, आम आदमी पार्टी इत्यादि)

भारत में राजनीतिक दलों के समक्ष चुनौतियाँ –

- दलबदल की प्रवृतियों का बढ़ना।
- पार्टी के भीतर आंतरिक लोकतंत्र का न होना।
- वंशवाद अथवा भाई–भतीजावाद (नेपोटिज्म) की चुनौती।
- राजनीतिक दलों में पैसा और आपराधिक तत्वों की बढ़ती घुसपैठ।
- पार्टियों के बीच विकल्पहीनता की स्थिति अर्थात् उनकी नीतियों व कार्यक्रमों के प्रति मतों में वैचारिक अंतर निरंतर कम हो रहा है।

सुधारात्मक उपाय

- दलबदल विरोधी कानून का प्रभावी क्रियान्वयन (52वाँ संविधान संशोधन 1985 – 10वीं अनुसूची)
- सुप्रीम कोर्ट द्वारा संपत्ति ब्यौरा व आपराधिक मामलों का ब्यौरा शपथपत्र के माध्यम से देना अनिवार्य कर दिया गया है।
- निर्वाचन आयोग ने एक आदेश के जरिए सभी दलों के लिए सांगठनिक चुनाव कराना तथा आयकर रिटर्न भरना जरूरी बना दिया है।
- राजनीतिक दलों के आंतरिक कामकाज को व्यवस्थित करने के लिए कानून बनाया जाना चाहिए।
- निर्वाचन आयोग द्वारा राजनीतिक दलों हेतु बनाई गई आचार–संहिता का पालन कठोरता एवं बिना किसी अपवाद के करवाया जाना चाहिए।
- राजनीतिक दल महिलाओं को एक विशिष्ट न्यूनतम अनुपात में (करीब 1/3) जरूर टिकट दें।
- चुनाव का खर्च सरकार उठाए। सरकार पिछले मतों के अनुपात में पेट्रोल, कागज, फोन वगैरह हेतु नकद धन दे सकती है। (NCERT)

मतदान व्यवहार

- प्लानो एवं रिग्स के अनुसार, ''सार्वजनिक चुनाव में लोग किस प्रकार वोट देते हैं, इससे संबंधित अध्ययन क्षेत्र ही मतदान व्यवहार है और इसमें वे कारण भी शामिल हैं कि लोग मतदान उसी प्रकार क्यों करते हैं।''

मतदान व्यवहार का अध्ययन महत्वपूर्ण क्यों?

- यह राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया को समझने में सहायक होता है।
- यह अभिजात्य के साथ–साथ आमजनों में भी लोकतंत्र के अंतर्स्थिकरण (स्वरूप) को जांचने में सहायक है।
- यह क्रांतिकारी मतपेटी के वास्तविक प्रभाव का महत्व बताता है।
- यह इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि चुनावी राजनीति किस हद तक अतीत से जुड़ी है या विच्छेदित है।
- यह राजनीतिक विकास के सन्दर्भ में आधुनिकता अथवा प्राचीनता को मापने में सहायक है।

मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक –

(1) **पार्टी का घोषणा पत्र** – प्रत्येक दल द्वारा सत्ता में आने पर किए जाने वाले कार्यों का एक घोषणापत्र तैयार किया जाता है जो लोगों के मत को प्रभावित करता है। उदाहरण– ऋण माफी, भ्रष्टाचार, कालाधन वापसी आदि।

(2) **तात्कालिक परिस्थितियाँ** – यह भी मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारण है। उदाहरण– 1977 में कांग्रेस की आपातकाल पृष्ठभूमि के कारण जनता पार्टी को मत। 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या के कारण राजीव गांधी को प्रचंड बहुमत आदि।

(3) **मीडिया की भूमिका** – चुनाव से ठीक पहले मीडिया किस प्रकार की खबरे प्रमुखता से दिखाता है इससे भी जनता की चुनावी अभिवृत्ति प्रभावित होती है।

(4) **जाति** – कई रूढ़िवादी लोग जातीय मनोवृत्ति को प्राथमिकता प्रदान कर अपनी जाति के उम्मीदवार को अथवा उस पार्टी को मत देते हैं जिसने उसकी जाति के अधिक उम्मीदवारों को टिकट दी है।

(5) **धर्म** – सम्प्रदाय के आधार पर लोग किसी पार्टी विशेष को अथवा किसी पार्टी विशेष के विरूद्ध वोट देते हैं।

(6) **शिक्षक** – विद्यालय की पृष्ठभूमि व शिक्षकों के निजी राजनीतिक विचारों का प्रभाव दीर्घकालिक रूप में व्यक्ति के मन पर पड़ता है।

(7) **पारिवारिक पृष्ठभूमि** – प्रायः लोग अपने बड़ो, वरिष्ठों की देखादेखी में ही मतदान करते है।

(8) **वर्ग** – निम्न, मध्यम व उच्च वर्ग अपने पक्ष में निर्णय लेने वाले उम्मीदवारों को मत देते है।

- विशेषकर मध्यमवर्ग का मतदान व्यवहार सत्ता प्राप्ति हेतु सबसे महत्वपूर्ण होता है।

(9) **लिंग** – यद्यपि लैंगिक पहचान चुनावों में अभी इतनी प्रभावी नहीं हुई है पर महिला जागरूकता बढ़ने के साथ–साथ यह कारक महत्वपूर्ण हो रहा है। उदाहरण – बिहार विधानसभा चुनाव में शराबबंदी के कारण महिलाओं के एकतरफा वोटों ने जनता दल यूनाईटेड एवं भारतीय जनता पार्टी के चुनाव पूर्व गठबंधन को लाभान्वित किया।

(10) **व्यक्तित्व** – करिश्माई नेतृत्व का व्यक्तित्व भी जनता के मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है।
उदाहरण – इंदिरा गांधी का व्यक्तित्व, 2014 में ''मोदी लहर''

(11) **भाषा** – चुनाव के दौरान राजनीतिक दल लोगों की भाषायी भावनाएँ उभारकर उनके निर्णय को प्रभावित करते है।
उदाहरण – तमिलनाडु में डीएमके एवं आन्ध्रप्रदेश में टीडीपी जैसे दलों का उदय निश्चित रूप से भाषावाद के आधार पर हुआ है।

(12) **क्षेत्र** – क्षेत्रीय दल क्षेत्रीय अस्मिताओं तथा भावनाओं के आधार पर मतदाताओं से मत की अपील करते है।

(13) **धन** – 'वोट के बदले नोट' का खुलेआम प्रचलन मतदाता के व्यवहार को प्रभावित करता है। हालांकि धन मतदाता के निर्णय को सामान्य परिस्थितियों में ही प्रभावित कर पाता है, चुनाव ज्वार की स्थिति में नहीं।

Springboard ACADEMY

मुख्य परीक्षा में पूछे गए प्रश्न

2013

Q. राजस्थान में स्वयं सहायता समूह किस सीमा तक सफल रहे है? (2M)

Q. ''आतंकवाद की समस्या का समाधान केवल बहु–आयामीय रणनीति से ही संभव है।'' भारत में आतंकवाद को रोकने के लिए विभिन्न उपायों की विवेचना करें। (5M)

2016

Q. राजस्थान में 'स्वतंत्र पार्टी' के सामाजिक–आर्थिक आधार को स्पष्ट कीजिए। (2M)

Q. राजस्थान में पंचायतीराज संस्थाओं में महिला–आरक्षण के प्रभाव की विवेचना कीजिए। (5M)

Q. राजस्थान में 'जातियों के राजनीतिकरण' की परिघटना को समझाइए। (2M)

Q. किसी राजनीतिक दल को राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान करने हेतु क्या मापदण्ड है? (5M)

Q. 1998 से राजस्थान की राजनीति में स्थिर हो रही 'द्विदलीय प्रणाली' की परिघटना की विवेचना कीजिए। (10M)

2018

Q. राजस्थान की राजनीतिक जनांकिकी का वर्णन कीजिए। (5M)

Q. राजस्थान में किसी प्रभावशाली राजनीतिक दल के अभाव की परिघटना का विश्लेषण कीजिए। (10M)

2021

Q. स्वतंत्रता पश्चात्, राजस्थान में प्रथम विधानसभा चुनाव की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (5M)

Q. राजस्थान में ग्रामसभा की प्रभावी कार्यप्रणाली के लिए सुझाव दीजिए। (10M)

Springboard ACADEMY

नागरिक समाज

- नागरिक समाज का तात्पर्य सरकार तथा व्यावसायिक संगठनों से इतर ऐसे सामाजिक संगठनों से है जो स्वेच्छा तथा सामाजिक कल्याण की भावना से जनता की सेवा करते है। इनका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं होता है।

  उदाहरण– गैर सरकारी संगठन (NGO), पर्यावरणीय समूह, उपभोक्ता संगठन आदि।

भूमिका –

1. नागरिक समाज का प्रथम कार्य राज्य की शक्तियों पर नियंत्रण बनाए रखना है। यह नियंत्रण राजनीतिक नेतृत्व व नौकरशाही दोनों पर रखा जाता है जिससे लोकतांत्रिक व्यवस्था अधिक सुदृढ़ हो।
2. राजनीतिक सहभागिता के प्रति जनता को जागरूक करते हैं।
   उदाहरण – गैर सरकारी संगठन लोगों को उनके अधिकार, कर्त्तव्य, जिम्मेदारी के बारे में शिक्षित कर उन्हें लोकतांत्रिक नागरिक बनाते है।
3. नागरिक समाज लोकतंत्र एवं मानवाधिकार संरक्षण से भी काफी गहरे रूप से जुडा है।
4. नागरिक समाज एक ऐसी जगह है जहाँ अलग–अलग हितों को एक साथ जोड़कर सामूहिक हित में बदला जाता है। यह समाज अपने सदस्यों जैसे महिला, विद्यार्थी, कृषक, पर्यावरणविद्, ट्रेड यूनियन, वकील डॉक्टर आदि की चिंताओं एवं आवश्यकताओं या जरूरतों के लिए लॉबिंग करता है।
5. नागरिक समाज भविष्य के राजनीतिक नेताओं के लिए प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में कार्य करता है।
6. नागरिक समाज लोगों को महत्त्वपूर्ण लोक मुद्दों में सूचना प्रदान करता है। यह कार्य केवल मीडिया का न होकर ऐसे सामाजिक संगठनों का भी है।
7. इन संगठनों द्वारा विवाद खत्म करने में मध्यस्थता करके एवं अन्य तरह से सहायता देकर मदद कर सकता है।
8. नागरिक समाज की भूमिका वहाँ और भी प्रासंगिक जान पड़ती है जहाँ तक सरकारी तंत्र की पहुँच नहीं होती है।
9. नागरिक समाज लोगों को जागरूक बनाकर बाजार को भी सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों के प्रति आदर करने के लिए बाध्य करता है।
10. नागरिक समाज वैसे हितों जो कि या तो प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं या फिर जिसकी अनदेखी की गयी है, के लिए एक उत्प्रेरक एवं वकालत करने का काम करता है।

सुशासन हेतु नागरिक समाज की भूमिका –

- लोकनीति एवं निर्णय निर्धारण – नागरिक संगठन सरकारी नीति के निर्माण और कार्यान्वयन के बारे में पारदर्शिता बढ़ाकर तथा सूचना की उपलब्धता में वृद्धि कर बेहतर शासन में योगदान कर सकते हैं।
- सरकारी प्रयासों का अनुपूरक बनना – नागरिक समाज संगठन विविध तरीकों से सार्वजनिक सेवाओं को आकार देने, वित्तपोषण करने और उन्हें डिलीवर करने में सीधे सरकार के साथ मिलकर कार्य कर योगदान दे सकते हैं।
- सामाजिक न्याय के लिए कार्य करना – ये संगठन सामाजिक न्याय, अधिकारों और कानूनों के क्षेत्र में जागरूकता फैलाकर सुशासन में योगदान करते हैं।
- सामाजिक सक्रियता के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन – नागरिक समाज समूह बदलती विकास नीति, निर्धनों और झुग्गीवासियों को आवास और चिकित्सा सहायता प्रदान करने आदि सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु सरकारों पर दबाव डालने के लिए नागरिकों को प्रायः सफलतापूर्वक संगठित करते हैं।

भारत में नागरिक समाज का इतिहास –

- ब्रिटिश काल में नागरिक समाज का महत्व बढ़ गया तथा इन्होंने सामाजिक कल्याण, शिक्षा तथा राहत कार्यक्रमों के लिए काम किया।
- 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में राष्ट्रीय चेतना फैली तथा सामाजिक–राजनीतिक आन्दोलनों का मुख्य केन्द्र बिन्दु स्वयं सहायता समूह बन गए।
- इस समय के दौरान कई संस्थाएँ–जैसे ''फ्रेंड इन नीड सोसायटी (1858), प्रार्थना समाज (1864), सत्यशोधक समाज (1873), नेश्नल काउंसिल फोर वुमन इन इंडिया (1875), इण्डियन नेश्नल कांफ्रेस (1887) स्थापित हुई।''
- 1860 के सोसायटी रजिस्ट्रेशन अधिनियम ने उभरते गैर–सरकारी संगठनों को वैधानिक दर्जा दिलाया। यह अधिनियम आज भी गैर सरकारी संगठनों के लिए प्रासंगिक है। हालांकि कई राज्यों ने शुरूआती कानून में संशोधन किए है।
- भारत में सिविल समाज का उदय सामाजिक आन्दोलन के कारण हुआ। जब आजादी की वजह से लोगों को भी राजनीतिक सहभागिता का अवसर मिला जो कि पहले तमाम बुराइयों के कारण संभव नहीं था तब पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति, कृषक, मजदूर आदि भारतीय लोकतंत्र द्वारा दिए गए अवसर को पाने का प्रयास करने लगे।
- भारत जैसे देश में नागरिकों की संगठित पहल अन्य रूपों में भी अभिव्यक्त होती है। जैसे–जनांदोलन एवं जनसंघर्ष।
- महात्मा गांधी, विवेकानन्द और मदर टेरेसा जैसे लोगों ने समय–समय पर ऐसे आन्दोलनों को प्रेरणा प्रदान की है। बाबा आम्टे, सुन्दर लाल बहुगुणा, पाण्डुरंग शास्त्री आठवले के नेतृत्व में कुछ ऐसे ही जनान्दोलन आधुनिक भारत में नागरिक समाज की उभरती भूमिका को धार प्रदान करते हैं।

  उदाहरण–

  - जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में भ्रष्टाचार के मुद्दे पर प्रारम्भ हुए बिहार के छात्रों के एक गैर–राजनीतिक आन्दोलन ने अन्ततः केन्द्र में सत्ता परिवर्तन को जन्म दिया।
  - जनलोकपाल की मांग को लेकर अन्ना हजारे का आन्दोलन तथा काले धन की वापसी को लेकर बाबा रामदेव का आन्दोलन (2011) देश के नागरिक समाज की ही उपज है।

नागरिक समाज के कुछ निर्माणकारी घटक–

- समुदाय आधारित संगठन
- गैर सरकारी संगठन
- युवाओं के संगठन एवं समूह
- महिला संगठन एवं समूह
- धार्मिक संघ एवं समूह
- सहकारी समूह
- श्रमिकों के संघ
- किसानों के संघ एवं समुदाय

वर्तमान में गैर–सरकारी संगठन –

- सोसाइटी फॉर पार्टिसिपेटरी रिसर्च इन एशिया (PRIA) के अनुसार आज भारत में 3.1 मिलियन गैर सरकारी संगठन कार्यरत है। इनमें मन्दिर, मस्जिद, खेल संस्थाएँ, अस्पताल, शैक्षणिक संस्थान आदि शामिल है।
- नीति आयोग के "DARPAN" पोर्टल पर 147980 गैर सरकारी संगठन पंजीकृत है। (अगस्त 2022)
- PRIA के अनुसार भारत में 73.4% गैर सरकारी संगठन के पास कोई वैतनिक कर्मचारी नहीं है हालांकि 19 मिलियन लोग स्वैच्छिक सेवी या अवैतनिक कर्मचारी के रूप में कार्यरत है।
- लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (CAPART)
  - स्थापना – 1986
  - उद्देश्य – स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका ग्रामीण विकास में बढ़ाने हेतु
- 1990 के दशक में सरकार व गैर सरकारी संगठन के मध्य संवाद स्थापित करने हेतु कई मंच बने। योजना आयोग ने गैर सरकारी संगठन व सरकार के मध्य संवाद के लिए सम्मेलनों की श्रृंखला शुरू की तथा 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में कापार्ट का विकेन्द्रीकरण किया गया ताकि गैर सरकारी संगठन कार्यों का लाभ अतिनिर्धन व अल्प पहुँच वाले क्षेत्रों में भी पहुँच सके।

गैर सरकारी संगठनों का वित्तीयन –

- सरकार ने गैर सरकारी संगठन को धन उपलब्ध करवाने के लिए कई संस्थान स्थापित किए है।
  उदाहरण – खादी और ग्रामोद्योग आयोग
  केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड
  लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद
- इसने लाभार्थी की सरकार पर निर्भरता बढ़ा दी है।
- ऐसे वित्तीयन ने यह खतरा भी बढ़ाया है कि गैर सरकारी संगठन अपनी स्वायत्तता खो देंगे तथा केवल सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं के क्रियान्वयनकर्त्ता बनकर रह जाएंगे।

स्वयंसेवक क्षेत्रों के लिए राष्ट्रीय नीति –

- स्थापना– 2007
- उद्देश्य – ऐसा वातावरण बनाना जो इन संस्थाओं के उद्यम को उद्दीपन दे, प्रभावी बनाएँ तथा उनकी स्वायत्तता सुनिश्चित करें।
- स्वैच्छिक सेवी संगठनों को वैध तरीकों से स्थानीय विदेशी संसाधन जुटाने के काबिल बनाना।
- ऐसे तंत्र की पहचान करना जिसके साथ सरकार व गैर–सरकार संगठन विश्वास सम्मान तथा साझा जिम्मेदारियों के सिद्धान्तों के साथ कार्य कर सके।
- स्वैछिक सेवी संगठनों को पारदर्शी व जवाबदेहीता वाले शासन व प्रबंधन तंत्र को अपनाने हेतु प्रोत्साहित करना।
- सरकार के अन्य प्रयासों में शेयर एवं स्टॉक के स्थानांतरण में स्वैछिक सेवी संगठनों को कर में छूट दी जाती हैं।
- विदेशी अंशदान विनियमन अधिनियम के प्रावधानों में सरलीकरण किया गया।

नागरिक समाज के सकारात्मक पक्ष –

- वे लोकतंत्र को सही मायने में लोकतंत्र बनाते हैं।
- सरकार के पूरक के रूप में सरकार की सहायता करते हैं।
- जनता को उनके अधिकारों का एहसास दिलाते हैं।
- देश के बहुआयामी विकास (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि) में अपनी भूमिका निभाते हैं।
- समाज सेवकों को उचित मंच उपलब्ध कराते हैं ।
- शासन–प्रशासन पर जनहितैषी कार्य करने रहने हेतु नैतिक दबाव बनाते हैं।
- सूचना का अधिकार जैसे अधिकार जनता को दिलाने में नागरिक समाज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

नकारात्मक पक्ष –

- कुछ गैर सरकारी संगठन पर ये आरोप है कि वे विदेशी चन्दे से संबंधित सरकारी कानूनों का निष्ठा से पालन नहीं करते हैं।
- बाह्य सहायता प्राप्त समाजसेवी संगठनों पर देश के विकास में अनावश्यक बाधा डालने का आरोप लगाया जाता है।
- कई बार किसी मुद्दे पर व्यापक जनसमर्थन मिलने पर ये अराजकता की स्थिति उत्पन्न करते हैं। उदाहरण – नागरिकता संशोधन अधिनियम का विरोध।
- न्यायपालिका से सरकार के कार्यों में हस्तक्षेप का आग्रह करते हैं, इस प्रकार कार्यपालिका–न्यायपालिका टकराव का कारण बनते हैं। उदाहरण– पर्यावरणीय मुद्दों पर

एन.जी.ओ. विवाद –

- भारत में विदेशों से फंडिंग प्राप्त करने वाली संस्थाओं को विदेशी अंशदान (विनियम) अधिनियम (FCRA) 2010 के प्रावधानों का पालन करना पड़ता है।
- 2014 में इंटेलिजेन्स ब्यूरो ने एक रिपोर्ट जारी की जिसके तहत कहा गया कि कई सारे गैर सरकारी संगठन विदेशी फंडिंग प्राप्त करने के बाद भारत में विकास परियोजनाओं को बाधित करने का प्रयास करते हैं।
- आशंका जताई गई कि कुड़नकुलम परमाणु संयंत्र, पोस्को परियोजना आदि के विरोध में गैर सरकारी संगठन द्वारा माहौल सृजित किया गया था।

विदेशी फंडिंग प्राप्त करने हेतु शर्तें (FCRA)–

1. गृह मंत्रालय के पास पंजीकरण
2. विदेशी फंडिग हेतु अलग खाता बनाना
3. 5 साल में लाइसेंस का नवीनीकरण करवाना आवश्यक है।

- गृह मंत्रालय के पास गैर सरकारी संगठनों के लाइसेंस के निलंबन व रद्द करने का हक है। (यदि FCRA प्रावधानों का उचित पालन नहीं तो)
- वर्ष 2016 में 20,000 गैर सरकारी संगठनों के F.C.R.A लाइसेंस रद्द किए गए।

निष्कर्ष – सिविल सोसायटी निःसंदेह सरकार हेतु उपयोगी है परन्तु ये सरकार का विकल्प नहीं है। यदि कोई गैर सरकारी संगठन सरकारी दिशा–निर्देशों के अन्तर्गत रहते हुए कार्य नहीं करता है तथा दुर्भाग्यवश प्रशासनिक कार्यों में अड़ंगा डालता है तो यह उचित नहीं है। अतः आवश्यकता है कि नागरिक समाज सरकार के पूरक के रूप में मुख्यधारा से पिछडे क्षेत्रों व लोगों को विकास की अग्रिम पंक्ति में लाने का प्रयास करें।

राजनीतिक आन्दोलन

- जब विविध सामाजिक समूह यह महसूस करते है कि लोकतांत्रिक राजनीति उनकी आवश्यकताओं व मांगों की पूर्ति नहीं कर पा रही है तो वे एकत्र होकर विभिन्न संस्थाओं के बैनर तले अपनी आवाज उठाते है।

समाजिक आन्दोलन	राजनीतिक आन्दोलन
• इनका मूल उद्देश्य राज्य और सरकार की नीतियों को प्रभावित करना होता है।	• ये आन्दोलन राजनीतिक निर्णयों को परिवर्तित करने पर केन्द्रित होते हैं।
• सत्ता प्राप्ति का प्रयास नहीं समर्थक – रूडॉल्फ हैबरलिन	• मूल उद्देश्य सत्ता प्राप्ति होता है। • समर्थन – आंद्रे गुंडर फ्रैंक मार्ता फुंटेस

राजनीतिक आन्दोलनों की विशेषताएँ –

- इन आन्दोलनों के नेतृत्व हेतु ढीला–ढाला सा सर्वसमावेशी संगठन होता है।
  उदाहरण –नेशनल अलायंस फॉर पीपल्स मूवमेंट (NAPM)
- ये आन्दोलन अल्पकालिक होते है, या तो लक्ष्य प्राप्ति पर ये समाप्त हो जाते है अथवा समय के साथ इनकी समाप्ति स्वतः हो जाती है।
- ये आन्दोलन दबाव समूहों के साथ निकटता से संबंधित होते हैं।
- दबाव समूह एवं आन्दोलन अपने लक्ष्य तथा गतिविधियों के लिए जनता का समर्थन और सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।
- ऐसे समूह अक्सर हड़ताल अथवा सरकारी कामकाज में बाधा पहुँचाने जैसे उपायों का सहारा लेते है। प्रयोग –मजदूर संगठन, कर्मचारी संघों द्वारा।
- अधिकतर आन्दोलन किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं होते है लेकिन उनका राजनीतिक पक्ष होता है।
- कभी कभी ये आन्दोलन राजनीतिक दल का रूप अख्तियार कर लेते है। उदा.–विदेशी लोगों के विरूद्ध चलाया गया छात्रों का 'असम आन्दोलन' कालान्तर 'असम गण परिषद' में बदल गया।
  - 1930 और 1940 के दशक में तमिलनाडु में समाज सुधार आन्दोलन चले थे। डीएमके और एआईएडीएमके जैसी जैसी पार्टियों की जड़े इन समाज सुधार आन्दोलनों में ढूँढी जा सकती है।
- दबाव समूह अथवा आन्दोलनकारी समूह के कुछ व्यक्ति सरकार को सलाह देने वाली समितियों और आधिकारिक निकायों में शिकायत कर सकते हैं।

नकारात्मक प्रभाव –

- एक ही तबके के हितों की नुमाइंदगी करने वाले दबाव समूह लोकतंत्र के लिए हितकर नहीं है। परन्तु जिम्मेदारी से बचना चाहते हैं।
- ये समूह जनता के प्रति जवाबदेह नहीं होते हैं।
- कई बार ये जनांदोलन निराधार होते है तथा समाज में अराजकता उत्पन्न करते है।
- कई दफा इन आन्दोलनों से राजनीतिक हितों की पूर्ति करने वाले लोग भी जुड़ जाते हैं जो इनकी प्रासंगिकता को कम करते हैं।

सकारात्मक प्रभाव –

- ये आन्दोलन शासकों के ऊपर दबाव डालते हैं जो लोकतंत्र में कोई अहितकर गतिविधि नहीं है बशर्ते इसका अवसर सबको प्राप्त हो।
- इन आन्दोलनों के माध्यम से उन मुद्दों को प्रकाश में लाया जाता है जिन पर सामान्यतः सरकारें ध्यान नहीं देती है।
- जब विभिन्न समूह सक्रिय हो तो कोई एक समूह समाज के ऊपर प्रभुत्व कायम नहीं कर सकता।

दल आधारित आन्दोलन –

- जन आन्दोलन एक सामाजिक या राजनीतिक आन्दोलन का रूप ले सकता है एवं अक्सर इनमें अधिव्यापन (Overlap) पाया जाता है। राष्ट्रीय आन्दोलन मुख्य रूप से एक राजनीतिक आंदोलन था किन्तु हम यह भी जानते है कि सामाजिक व आर्थिक मुद्दों पर किए गए प्रयासों ने ब्रिटिश काल में स्वतंत्र सामाजिक आन्दोलनों जैसे जाति विरोधी आंदोलन, ट्रेड यूनियन आंदोलन इत्यादि को बल दिया। इन आन्दोलनों ने सामाजिक संघर्ष सम्बन्धित मुद्दे उठाए।
- इनमें से कुछ मुद्दे स्वतंत्रता पश्चात भी बने रहे। ट्रेड यूनियन आंदोलन मुम्बई, कोलकाता व कानपुर जैसे बड़े शहरों में मजबूती से उपस्थित थे। सभी राजनीतिक दलों ने श्रमिकों की लामबंदी के लिए अपनी–अपनी ट्रेडयूनियन स्थापित की। तेलंगाना में किसानों ने खेतिहरों को भूमि का पुनः आवंटन/वितरण करने के लिए साम्यवादी दलों के नेतृत्व में बड़ा आन्दोलन किया। किसानों व खेतिहर श्रमिकों ने प. बंगाल, बिहार, आंध्रप्रदेश व आसपास के क्षेत्रों में मार्क्सवादी तथा लेनिनवादी श्रमिकों (जिन्हें नक्सली कहा गया) के साथ आन्दोलन किया। किसानों व श्रमिकों के आन्दोलनों ने मुख्यतया आर्थिक अन्याय व असमानता पर ध्यान केन्द्रित किया।
- इन आन्दोलनों ने प्रत्यक्ष तौर पर चुनावों में भाग नहीं लिया पर राजनीतिक दलों से जुडे रहे। इन संपर्कों ने विविध सामाजिक वर्गों की माँगों का बेहतर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया।

दल विहीन आन्दोलन –

- 1970 व 1980 के दशकों में समाज के कई वर्ग राजनीति दलों के कार्यों से असंतुष्ट हो गए। जनता पार्टी प्रयोग की असफलता तथा परिणामस्वरूप उपजी राजनीतिक अस्थिरता इन आन्दोलनों का तात्कालिक कारण बनी।
- योजनागत विकास का प्रतिमान असफल हो गया क्योंकि अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्रों में दो दशकों तक वृद्धि होने के बाद भी गरीबी एवं असमानता बराबर रही।
- पहले से उपस्थित सामाजिक असमानताओं (जैसे–जाति एवं लैंगिक) ने गरीबी के मुद्दे को और तीक्ष्ण एवं जटिल बना दिया। इससे विभिन्न समूहों में अन्याय व वंचित रह जाने की भावना विकसित हुई।
- इससे कई राजनीतिक सक्रिय समूहों का लोकतांत्रिक संस्थाओं से विश्वास उठ गया और उन्होंने दलीय राजनीति से खुद को अलग कर के जनलामबंदी पर ध्यान केन्द्रित किया। छात्रों एवं युवा राजनीतिज्ञों ने दलितों व आदिवासियों जैसे सीमान्त समूहों को संगठित किया। मध्यम वर्गीय युवा कार्यकर्त्ताओं ने ग्रामीण गरीबों में सेवा संगठन एवं सृजनात्मक कार्यक्रम शुरू किए। इनमें सामाजिक कार्यों की स्वैछिक सेवा प्रवृति के कारण इन संगठनों का नाम स्वैच्छिक सेवा (वॉलन्टियर) संगठन पड़ा। ये दलगत राजनीति से दूर रहे। इन्होंने सोचा कि स्थानीय नागरिक समूहों की प्रत्यक्ष एवं सक्रिय भागीदारी स्थानीय समस्याएं सुलझाने में राजनीतिक दलों की तुलना में अधिक प्रभावी रहेगी।
- ऐसे वॉलन्टियर क्षेत्र संगठन ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में कार्य करते रहे हालांकि उनकी प्रकृति बदल गई एवं बाद में इन्हें बाह्य सहायता (राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय) से धन मिलने लगा। इस बाह्य धन के आने से स्थानीय पहल का आदर्श इन संस्थाओं में कमजोर पड़ गया।

दलित आन्दोलन –

- 1970 के दशक के प्रारम्भ में दलित स्नातकों की प्रथम पीढ़ी (विशेषतः शहरी झुग्गियों में रहने वाली) अनेक मंचों पर आयी। इन अभिकथनों के अंतर्गत दलित पेन्थर्स नामक सशस्त्र संस्था बनाई गई। दलित समूह शाश्वत जाति आधारित असमानताओं व मौलिक अन्याय (जो इनके खिलाफ संविधान की समानता व न्याय की गारंटी के बावजूद भी हो रहा था) के विरूद्ध लड़ रहे थे। आरक्षण व संवैधानिक नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन इनकी प्रमुख मांग थी।
- भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता को असंवैधानिक घोषित कर दिया था एवं इसके लिए 1960 व 1970 के दशक में कानून बनाए गए फिर भी अछूत समूहों के विरूद्ध भेदभाव व हिंसा बनी रहीं। वैधानिक मशीनरी भी दलितों का आर्थिक व सामाजिक शोषण रोकने में अपर्याप्त सिद्ध हुई और दलित समर्थित राजनीतिक दल भी खास सफल नहीं रहे। (जैसे–रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया)

दलित गतिविधियाँ –

- दलित पेन्थर्स ने दलितों के विरूद्ध बढ़ती क्रूरता के खिलाफ प्रयास किए तथा सरकार ने अनुसूचित जाति तथा जनजाति (प्रिवेंशन ऑफ एट्रासिटी) अधिनियम–1989 पारित किया। दलित पेंथर्स का एजेंडा जाति व्यवस्था को नष्ट करना तथा सभी शोषित समूहों का संगठन बनाना था तथा इनमें दलितों का साथ भूमिहीन गरीब व शहरी औद्योगिक श्रमिकों ने भी दिया।
- दलित शिक्षित युवाओं ने अपनी रचनात्मकता का प्रयोग किया तथा कई जीवनियाँ लिखी तथा जाति व्यवस्था की क्रूरता के खिलाफ कई साहित्यिक कार्य किये।
- आपात काल के पश्चात पिछडे एवं अल्पसंख्यक समुदाय कर्मचारी परिसंघ (BAMCEF) जैसे संगठनों का गठन मुद्दे के समाधान हेतु किया गया।

किसान आन्दोलन –

- 1970 के दशक से सामाजिक असंतुष्टता बहुत प्रकार की थी। 1980 के दशक के कृषि संघर्ष ऐसे ही उदाहरण है जहाँ किसान राज्य की नीतियों के खिलाफ प्रदर्शन करते है।
- हरित क्रांति के बाद किसानों ने कुछ मांगे रखी–गेहूँ व गन्ने के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य अधिक हो, खेल–उत्पाद के अन्तर्राज्यीय आवागमन पर रोक हटाना, क्षेत्रीय दरों पर बिजली का गारंटी वितरण, किसानों की कर्जमाफी एवं किसानों को सरकारी पेंशन का प्रावधान।
- भारती किसान यूनियन जैसी कुछ संस्थाएँ इनके लिए आगे आई। महाराष्ट्र के शेतकारी संगठन ने किसान आंदोलनों को भारत (किसानों) तथा इंडिया की ताकतों (औद्योगिक क्षेत्र) के बीच युद्ध बताया। भारत के विकास प्रतिमान में कृषि व उद्योगों की भूमिका भी एक ज्वलंत मुद्दा रही।
- भारतीय किसान युनियन की गतिविधियाँ जैसे–रैली, प्रदर्शन, जेल–भरो आन्दोलन आदि ने सरकार पर दबाव बनाया। इन प्रदर्शनों में हजारों लाखों की संख्या में किसान शामिल हुए। इन्होंने जाति पंचायतों का भी सहयोग किया तथा एक हद तक किसान आन्दोलन सफल भी रहे।

महिला आन्दोलन –

- महिलाओं ने भी कई ऐसे मुद्दों के खिलाफ आन्दोलन किए जो उन्हें व समाज को प्रभावित कर रहे थे।
- ''अर्रांक (अर्क) विरोधी आन्दोलन'' आंध्र प्रदेश में हुआ जो शराब विरोधी था। अर्रांक (स्थानीय बनी शराब) आन्ध्रप्रदेश में प्रचलित थी तथा सामान्य जीवन में महिलाओं को काफी प्रभावित कर रही थी। इस पर आन्दोलन करते हुए महिलाओं ने खुले तौर पर घरेलू हिंसा पर भी चर्चा की। शुरूआत में महिला समूह घरेलू हिंसा, दहेज, लैंगिक अपराध (कार्यस्थल व सार्वजनिक स्थल पर) पर मुख्यतया शहरी मध्यम वर्ग में ही कार्य कर रहे थे व उनके कार्यों ने यह उजागर किया की महिलाओं के साथ अन्याय के मुद्दे तथा सामान्य असमानताओं के मुद्दे जटिल प्रकृति के है। महिलायें इनके समाधानों के लिए अभियान चलाने लगी तथा परिणाम स्वरूप 73वें व 74 वें संविधान संशोधन ने महिलाओं को स्थानीय स्तर की राजनीति में आरक्षण दिलवाया। विशाखा निर्देश, महिलाओं के विरूद्ध घरेलू हिंसा (प्रतिषेध) अधिनियम–2005, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से रोकथाम अधिनियम 2013 जैसे कानूनों की श्रृंखला का श्रेय महिला आन्दोलनों को दिया जा सकता है।

नर्मदा बचाओ आन्दोलन –

- सरदार सरोवर बांध के रूप में एक महत्वाकांक्षी परियोजना 1980 के दशक की शुरूआत में घोषित की गई। नर्मदा बचाओं आन्दोलन समिति ने इसका विरोध किया तथा उन्होंने बांधों के निर्माण व चल रही विकास परियोजनाओं की प्रकृति पर सवाल उठाए।
- आन्दोलन ने मांग उठाई कि देश में अब तक सम्पन्न हुई विकास परियोजनाओं के लागत लाभ का विश्लेषण किया जाना चाहिए और ऐसे विश्लेषणों में वृहत सामाजिक लागत को भी शामिल किया जाना चाहिए। सामाजिक लागत में परियोजना प्रभावित लोगों की बिना मर्जी पुनर्स्थापन आजीविका के साधन का गंभीर नुकसान एवं सांस्कृतिक व पारिस्थितक संसाधनों का अवनमन भी शामिल है।
- नर्मदा बचाओं आन्दोलन समिति ने बल दिया कि स्थानीय समुदाय की ऐसे निर्णयों में जरूर भूमिका होनी चाहिए। एवं उनका प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, जमीन व जंगल पर प्रभावी नियंत्रण होना चाहिए। आंदोलन ने यह सवाल भी उठाया कि लोकतंत्र में दूसरों के फायदे के लिए कुछ लोगों को त्याग क्यों करना पड़ता है?
- आन्दोलन व बहसों का उन राज्यों में तीखा विरोध हुआ जिन्हें इससे फायदा हो रहा था जैसे–गुजरात, वहीं पुनर्स्थापन के अधिकार को इस आन्दोलन ने सरकार व न्यायापालिका से मान्यता दिलाई। सरकार द्वारा 2003 में व्यापक राष्ट्रीय पुनर्स्थापन नीति बनाना, इस आन्दोलन की उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है।

सूचना का अधिकार (RTI) आन्दोलन –

- यह आन्दोलन पिछले कुछ समय का एक ऐसा आंदोलन रहा जो राज्य से अपनी माँगे मनवाने में सफल रहा।
- आन्दोलन 1990 में शुरू हुआ जब एक जन आधारित संगठन मजदूर किसान शक्ति संगठन (राजस्थान) ने अकाल राहत कार्यों के अभिलेखों तथा श्रमिकों के खातों की सूचना मांगी।
- आन्दोलन को तात्कालिक रूप से छोटी सफलता मिली जब वे राजस्थान पंचायती राज अधिनियम में संशोधन प्रतियां प्राप्त कर सके।
- 1996 में मजदूर किसान शक्ति संगठन ने नेशनल काउंसिल फोर पीपल्स राइट टू इन्फोर्मेशन की दिल्ली में स्थापना कर सूचना के अधिकार को राष्ट्रीय अभियान का दर्जा दिलाया। अन्त में 2005 में सूचना का अधिकार अधिनियम पारित हुआ व आन्दोलन सफल रहा।

राजनीतिक आन्दोलनों के प्रभाव –

- इन आन्दोलनों ने दलगत राजनीति की कुछ समस्याओं का समाधान किया तथा ये हमारी लोकतांत्रिक राजनीति के अभिन्न अंग है।

सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र में संघर्ष के संभावित क्षेत्र

- किसी भी मुद्दे में सामाजिक व राजनीतिक दोनो कारक उपस्थित होते हैं, तो ऐसा मुद्दा सामाजिक–राजनीतिक मुद्दा हो जाता है तथा सामाजिक–राजनीतिक संघर्ष बन जाता है।
  उदाहरण – पर्यावरण संरक्षण का मुद्दा ऐसा एक उदाहरण हो सकता है जिसमें प्रदूषण मुक्ति की तरफ झुकती हुई सामाजिक प्रवृत्ति होती है तथा ये राजनैतिक नीति निर्माण से भी प्रभावित होता है।
- भारत के दृष्टिकोण से हम देख सकते है कि भारत किसी चमत्कार से कम नहीं है इतनी विविधताओं व समस्याओं के होते हुए भी देश न केवल निर्वाह कर रहा है अपितु उन्नति भी कर रहा है तथा एक हद तक समृद्धि भी हासिल कर चुका है। लेकिन फिर भी ये समस्याएँ इस बात से समाप्त नहीं हो जाती हैं ये समस्याएँ बहुत बड़ी है एवं विशाल होती जा रही है। ऐसे कई कारण विद्यमान है कि दो दशकों की तेज वृद्धि एवं विकास के बावजूद भी देश में उप सहारा अफ्रीका से ज्यादा गरीब लोग है तथा किसी भी अन्य देश की तुलना में अधिक भूखे व गरीब लोग है। ये सभी समस्याएँ किसी न किसी सामाजिक–राजनीतिक कारणों की वजह से हुई है तथा इनमें सामाजिक व्यवस्था एवं राजनीतिक नीतियों के तत्व सम्मिलित है।
- भारत में कई विद्वानों के अनुसार अधिक अतिवादी सामाजिक राजनीतिक संघर्ष क्षेत्र निम्नलिखित है –
  1. धार्मिक अतिवाद
  2. केन्द्र सरकार में भ्रष्टाचार
  3. लोक संस्थानों का पतन
  4. मीडिया की संवेदनहीनता
  5. पर्यावरण अवनमन
  6. भारतीय चुनाव व्यवस्था में विखण्डन
  7. असंतुष्ट पड़ौसी देश
  8. अस्थायी पड़ौसी देश
  9. गरीब व अमीरों के बीच बढ़ता हुआ अंतर
- खुले तौर पर भारत में प्रत्येक मुद्दा सामाजिक–राजनीतिक मुद्दा है। हमारे यहाँ कोई भी सामाजिक घटना होती है तो उसे राजनीति के साथ जोड़े जाने की प्रवृति आम है।

Springboard ACADEMY

राजस्थान की राज्य राजनीति

1. दलीय प्रणाली
2. राजनीतिक जनांकिकी
3. राजस्थान में राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के विभिन्न चरण
4. पंचायतीराज एवं नगरीय स्वशासन संस्थाएँ

दलीय प्रणाली –

प्रथम चरण – कांग्रेस का प्रभुत्व/एकदलीय प्रभुत्व (1952–77)

- इस काल में 1967 के चुनावों को छोड कांग्रेस स्पष्ट बहुमत से सरकार बनाती है।
- इस दौरान क्रमशः रामराज्य परिषद, स्वतंत्र पार्टी व भारतीय जनसंघ उभरे पर कांग्रेस का कोई एक प्रभावी विकल्प तैयार नहीं हुआ।
- बिखरा हुआ विपक्ष व कांग्रेस का प्रभत्व इस काल की विशेषता थी।
- इस दौरान सामंतवाद बनाम लोकतंत्र का मुद्दा मुख्य मुद्दा था।
- रामराज्य परिषद, स्वतंत्र पार्टी व जनसंघ को मूलतः ऊँची जातियों व सामंती विचारधारा के लोगों ने वोट दिए।

द्वितीय चरण – कांग्रेस का एकाधिकार का अंत (1977–80)

- इन्दिरा गांधी द्वारा लागू इमरजेन्सी की वजह से उपजे असंतोष ने 1977 में कांग्रेस को केन्द्र व राज्य दोनों जगह से साफ कर दिया।
- राजस्थान में 150 सीटों के साथ प्रथम बार गैर कांग्रेसी सरकार जनता पार्टी की बनी तथा भैरोसिंह मुख्यमंत्री बने।
- परन्तु यह सरकार तीन साल ही चल पाई तथा राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया।
- राजस्थान में पहली बार द्विदलीय प्रणाली उभरते–उभरते रह गई।

तृतीय चरण – कांग्रेस की पुनः स्थापना (1980–1990)

- 1980 में जनता पार्टी बिखर गई
- अगले दोनों विधानसभा चुनावों में कांग्रेस ने स्पष्ट बहुमत की सरकार बनाई।
- इन 10 सालों में कांग्रेस के 6 मंत्रीमंडल बने।
- राममन्दिर व हिन्दुत्व के मुद्दों पर सवार हो भाजपा उभरने लगी।

चतुर्थ चरण – संक्रमण काल, गठबंधन सरकारों का दौर (1990–98)

- इस दौरान दो चुनाव हुए 1990 व 1993 में।
- 1990 में भाजपा ने 85 सीटे जीती तथा जनता दल के सहयोग से राजस्थान में पहली बार गठबंधन सरकार बनी। भैरोसिंह मुख्यमंत्री बने।
- कांग्रेस इन चुनावों में 50 सीटें जीतकर तीसरे स्थान पर रही।
- 1993 में फिर चुनाव हुए भाजपा को 95 व कांग्रेस को 76 सीटें मिली। भाजपा ने भैरोसिंह के नेतृत्व में पूरे 5 साल निर्दलीयों के सहयोग से सरकार चलाई।

पंचम चरण – स्पष्ट द्विदलीय प्रणाली की स्थापना (1993–वर्तमान में)

- 1993 में राजस्थान में शुरू हुई द्विदलीय प्रणाली अभी तक जारी है।
- अब कांग्रेस व भाजपा दो ही मुख्य प्रतिद्वन्द्वी पार्टियाँ है।
- हालांकि बसपा ने 2008 व 2018 में 6–6 सीटें जीती पर वह तीसरी बड़ी पार्टी के रूप में कोई जनाधार नहीं बना पाई।

राजस्थान में क्षेत्रीय दल नहीं होने के कारण–

- भारतीय जनता पार्टी व कांग्रेस के अलावा ऐसे करिश्माई नेतृत्व का अभाव जो अपने निजी करिश्में के साथ राज्य में मजबूत निर्वाचन क्षेत्र का निर्माण कर सके।
- राज्य के जटिल जातिय समीकरण और जातियों के बीच मजबूत वैचारिक व दूरदर्शी एजेंडे के अभाव ने क्षेत्रीय पार्टी की संभावना को परवान नहीं चढ़ने दिया।
- दमदार मौजूदगी के नुस्खे के लिए क्षेत्रीय पार्टी के पास मजबूत उपस्थिति, वैचारिक स्पष्टता एवं जातिगत आधार होना आवश्यक है। जैसे–बिहार व उत्तरप्रदेश में यादव और महाराष्ट्र में मराठों के विपरित राजस्थान में कोई भी जाति विशेष ऐसी नहीं जो पूरे राज्य में फैली हुई हो।
- राजस्थान की राजनीति में शुरूआत से ही राष्ट्रीय मुद्दों की प्रभावशीलता क्षेत्रीय मुद्दों से अधिक रही।
- राजस्थान में प्रारम्भ से ही सामन्तवादी व्यवस्था रही है और यह व्यवस्था कमजोर जातियों के नेतृत्व को स्वीकार नहीं करती है।
- प्राकृतिक विषमताएँ (मरूस्थल उपस्थिति, अकाल) तथा आर्थिक जीविकोपार्जन ही राजस्थानियों के लिए सदैव से चिंता का विषय बना रहा अतः उन्होंने कभी नवीन राजनीतिक विकल्प की खोज करने में अपना समय निवेश नहीं किया।

Springboard ACADEMY

राजस्थान में विधानसभा चुनाव –

प्रथम विधानसभा – (1952–57)

- कुल सीटें – 160 (120 एक सदस्यीय, 20 द्विसदस्यीय)

परिणाम –

कांग्रेस	– 82	रामराज्य परिषद	– 24
जनसंघ	– 3	निर्दलीय	– 35
कृषिकार लोक पार्टी	– 7	हिन्दू महासभा	– 2
कृषक मजदूर प्रजा पार्टी	– 2		

- जोधपुर राजा हनुवंत सिंह के समर्थन के कारण मारवाड़ में कांग्रेस की बजाय रामराज्य परिषद को सफलता प्राप्त हुई।
- हीरालाल शास्त्री ने चुनाव में भाग नहीं लिया तथा जयनारायण व्यास चुनाव हार गए। अतः प्रथम निर्वाचित मुख्यमंत्री टीकाराम पालीवाल को बनाया गया। (3 मार्च 1952)
- लेकिन जयनारायण व्यास उपचुनावों (किशनगढ़) में जीतकर मुख्यमंत्री बने तथा टीकाराम पालीवाल उपमुख्यमंत्री बनाए गए।
- 1954 में कांग्रेस विधायक दल ने व्यास को हटाकर मोहनलाल सुखाडिया को मुख्यमंत्री बनाया। (सबसे युवा मुख्यमंत्री, सर्वाधिक समय तक मुख्यमंत्री –17 वर्ष)
- 17 उपचुनाव हुए थे। 1956 में अजमेर विलय के बाद सीटें 190 हो गई।
- सुखाड़िया सरकार में कमला बेनीवाल उपमंत्री बनी थी। (राज्य की प्रथम महिला मंत्री।)

दूसरी विधानसभा (1957–62) –

कुल सीटें – 176 (पुनर्सीमांकन)
मुख्यमंत्री – मोहन लाल सुखाड़िया

परिणाम –

कांग्रेस –119	भारतीय जनसंघ–6	भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी – 1
रामराज्य परिषद–17	निर्दलीय–32	प्रजा समाजवादी दल –1

तीसरी विधानसभा (1962–67) – इस बार दो सदस्य क्षेत्र समाप्त कर दिये गये। स्वतंत्र पार्टी के रूप में राज्य में नया दल उभर कर आया जिसे राज्य के राजाओं तथा सामंतों ने अपना समर्थन दिया, स्वतंत्र पार्टी का नेतृत्व जयपुर की महारानी गायत्री देवी के हाथों में था, भारतीय जनसंघ का प्रभाव भी बढ़ा, जिसका नेतृत्व भैरोसिंह शेखावत के हाथों में था।

परिणाम –

कांग्रेस–88 स्वतंत्र पार्टी–36 भारतीय संघ–15 निर्दलीय–22

मोहनलाल सुखाड़िया तीसरी बार मुख्यमंत्री बने।

चौथी विधानसभा (1967–72) –इस बार सीटों की संख्या बढ़ाकर 184 कर दी गई स्वतंत्र पार्टी व जनसंघ को इन चुनावों में अधिक सफलता मिली। कांग्रेस पहली बार बहुमत नहीं जुटा पाई तथा उसे 89 सीटे मिली। स्वतंत्र पार्टी तथा जनसंघ ने जिन्हें क्रमशः 49, 22 सीटें मिली थी, डूंगरपुर महारावल लक्ष्मण सिंह के नेतृत्व में सरकार बनाने का दावा पेश किया लेकिन केन्द्र सरकार ने राज्य में पहली बार राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया। राष्ट्रपति शासन के कारण सुखाड़िया बहुमत प्राप्त करने में सफल रहे तथा चौथी बार राज्य के मुख्यमंत्री बने। इस विधानसभा में पहली बार राज्यमंत्री तथा संसदीय सचिव बनाये गये थे। 1971 में सुखाड़िया से इस्तीफा लेकर बरकतुल्ला खाँ को मुख्यमंत्री बनाया गया (अजगर फार्मुला)

पाँचवी विधानसभा (1972–77) –

- 1971 को बांग्लादेश विजय के कारण देश में कांग्रेस की लहर थी अतः कांग्रेस को 145 सीटें प्राप्त हुई। बरकतुल्ला खाँ दूसरी बार मुख्यमंत्री बने लेकिन थोडे दिनों बाद ही इनका निधन हो गया और हरिदेव जोशी को मुख्यमंत्री बनाया गया, इन चुनावों में स्वतंत्र पार्टी को 11 तथा जनसंघ को 8 सीटें मिली थी।
- 1977 में केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार आई तथा उसने राज्य की कांग्रेस सरकार को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लगा दिया।
- मोहन लाल सुखाड़िया (17 वर्ष मुख्यमंत्री)
  - 1954-57
  - 1957-62
  - 1962-67 (इसके बाद 44 दिन का राष्ट्रपति शासन लगा था)
  - 1967-71

छठी विधानसभा (1977–80) –

- आपातकाल के बाद हुए चुनावों में जनता पार्टी की लहर थी तथा केन्द्र व राज्य दोनों में जनता पार्टी की सरकार आई। इस प्रकार राज्य की राजनीति देश की मुख्य धारा से मिल गई थी। इस बार विधानसभा सीटों की संख्या 200 थी जनता पार्टी को 151 सीटें मिली भैरोसिंह शेखावत राजस्थान के पहले गैर कांग्रेसी मुख्यमंत्री बने। जनता पार्टी के विधायकों में भैरोसिंह शेखावत तथा मास्टर आदित्येन्द्र को लेकर चुनाव हुआ। जिसमें शेखावत को विधायक दल का नेता चुना गया। (जनता पार्टी–151, कांग्रेस–41, निर्दलीय–6)
- 1980 में केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार गिर गई व केन्द्र में नई बनी कांग्रेस सरकार ने राज्य सरकार को बर्खास्त कर राजस्थान में राष्ट्रपति शासन लगा दिया।

सातवीं विधानसभा (1980–85) –

- राज्य में पहली बार मध्यावधि–चुनाव हुए थे। कांग्रेस को 133 व नई बनी भारतीय जनता पार्टी को 32 सीटें मिली। जगन्नाथ पहाड़ियाँ को मुख्यमंत्री बनाया गया जो राजस्थान के पहले अनुसूचित जाति के मुख्यमंत्री थे।
- थोडे दिनों बाद पहाड़िया को हटाकर शिवचरण माथुर को मुख्यमंत्री बना दिया गया। इसके बाद हीरालाला देवपुरा को मुख्यमंत्री बनाया गया।
- डीग में कानून व्यवस्था बिगड जाने के कारण राजा मानसिंह की पुलिस फायरिंग में मृत्यु हो गई इसके बाद माथुर को हटाकर हीरालाल देवपुरा को मुख्यमंत्री बनाया गया जो केवल 16 दिन मुख्यमंत्री रहे थे।

आठवीं विधानसभा (1985–90) – कांग्रेस 113 व भारतीय जनता पार्टी – 37 सीटें, हरिदेव जोशी को मुख्यमंत्री बनाया गया। थोडे दिनों बाद हरदेव जोशी को हटाकर शिवचरण माथुर को मुख्यमंत्री बनाया गया तथा हरिदेव जोशी को असम–मेघालय का राज्यपाल बना दिया गया। थोडे दिनों बाद माथुर को हटाकर पुनः हरदेव जोशी मुख्यमंत्री को बना दिया गया।

नौवीं विधानसभा (1990–92) –

- इस बार भारतीय जनता पार्टी को 85 सीटें मिली। लेकिन जनता दल यूनाइटेड के 54 सदस्यों के सहयोग से भैरोसिंह शेखावत दूसरी बार मुख्यमंत्री बने। राम मंदिर आंदोलन के कारण जनता दल ने अपना समर्थन वापस ले लिया लेकिन बाद में जनता दल में ही फूट पड़ गई तथा शेखावत सरकार बनी रही।

- 1992 में बाबरी काण्ड के बाद राजस्थान की भाजपा सरकार को बर्खास्त कर दिया गया व राज्य में चौथी बार राष्ट्रपति शासन लगाया गया।
- इस सरकार के मंत्री ललित किशोर–चतुर्वेदी ने अयोध्या में ''कारसेवा'' में भाग लेने के कारण अपना इस्तीफा दिया था।

दसवीं विधानसभा (1993–98) – भाजपा को 95 सीटें मिली लेकिन निर्दलीय विधायकों के सहयोग से शेखावत तीसरी बार मुख्यमंत्री बनें।

ग्यारहवीं विधानसभा (1998–2003) – इन चुनावों में कांग्रेस को अपार सफलता मिली तथा 153 सीटों के साथ अशोक गहलोत मुख्यमंत्री बने।

बारहवीं विधानसभा – भैरोसिंह शेखावत के उपराष्ट्रपति बन जाने के कारण वंसुधरा राजे भाजपा की नई नेता थी। 120 सीटों के साथ वसुंधरा राजे ने पहली बार भाजपा को पूर्ण बहुमत दिलाया।

तेरहवीं विधानसभा – कांग्रेस को 96 सीटें प्राप्त हुई लेकिन निर्दलीय व बसपा विधायकों के सहायोग से अशोक गहलोत राजस्थान के दूसरी बार मुख्यमंत्री बने। इस विधानसभा में सर्वाधिक महिला सदस्य जीतकर आई थी।

चौदहवीं विधानसभा –

पन्द्रहवीं विधानसभा –

- प्रदेश में आज तक 4 बार 163 सीटों के साथ भाजपा जीती।
- इस समय कुल 28 महिला विधायक थी।
- अध्यक्ष – सी.पी. जोशी
- मुख्यमंत्री – अशोक गहलोत, सीटें – 100+6 (बसपा)
- विपक्ष नेता – गुलाब चन्द कटारिया

महत्वपूर्ण तथ्य –

- राष्ट्रपति शासन लगा है।
- 1967 (सबसे छोटा), 1977,1980,1992–93 (सर्वाधिक लंबा)
- कुल विधानसभा सीटों की संख्या 200, पहली बार छठी विधानसभा के चुनावों में हुई थी।
- प्रथम विधानसभा चुनाव में पहले 3 मुख्यमंत्री बने थे। हीरालाल शास्त्री, सी.एस. वेंकटचारी, जयनारायण व्यास।

राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के विभिन्न चरण –

1. राजनीतिक अस्थिरता का चरण (1949–1954)

- इसे कांग्रेस में गृहयुद्ध या अंतर्कलह का युग भी कह सकते हैं। इस 5 साल की अवधि में 6 मंत्रिमण्डल बने। क्रमशः हीरालाल शास्त्री, सी.एस.वेंकटाचारी, जयनारायण व्यास, टीकाराम पालीवाल, पुनः जयनारायण व्यास व मोहनलाल सुखाड़िया मुख्यमंत्री बने।
- 30 मार्च,1949 को हीरालाल शास्त्री, सरदार पटेल व गोकुल भाई भट्ट (प्रदेशाध्यक्ष) के समर्थन से मुख्यमंत्री (तात्कालिक पदनाम प्रधानमंत्री) बने।
- हीरालाल शास्त्री के मनोनीत होने के साथ ही जयनारायण व्यास व माणिक्यलाल वर्मा ने शास्त्री व भट्ट के खिलाफ मुहिम छेड दी व अविश्वास प्रस्ताव लाकर गोकुल भाई भट्ट को प्रदेशाध्यक्ष पद से हटा दिया।
- पटेल की मृत्यु होते ही व्यास वर्मा गुट सक्रिय हो गया। व्यास नेहरू के करीबी थे इसलिए शास्त्री को हटाकर जनवरी 1951 में पहले वेंकटाचारी व अप्रैल 1951 में व्यास को मनोनित किया गया।

- 1952 में चुनाव के बाद व्यास की बजाए टीकाराम पालीवाल मुख्यमंत्री बने क्योंकि व्यास विधानसभा का चुनाव हार गए, बाद में व्यास किशनगढ़ से विधायक बने तथा पालीवाल की जगह मुख्यमंत्री बने।
- व्यास के अक्खड़पन, पार्टी में सामंतवादी सोच वाले विरोधी दल के विधायकों को सम्मिलित करने के कारण माणिक्य लाल वर्मा, मोहनलाल सुखाड़िया, कुम्भाराम आर्य आदि व्यास के विरोधी हो गए। 1954 के विधायक दल के चुनाव में व्यास हार गए तथा सुखड़िया मुख्यमंत्री बने।

2. एकल प्रभुत्व का चरण (1954–1977)

- 1957, 1962 व 1967 के चुनाव सुखाड़िया के नेतृत्व में लड़े गए। प्रथम दो बार में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिला परन्तु 1967 में नहीं मिला। 45 दिन के राष्ट्रपति शासन के बाद सुखाड़िया पुनः मुख्यमंत्री बने।
- 1969 में इन्दिरा समर्थक राष्ट्रपति उम्मीदवार वी.वी.गिरी की बजाए सुखाड़िया ने कांग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी का समर्थन किया।
- नाराज इन्दिरा गांधी ने 1971 में सुखाड़िया से इस्तीफा लेकर बरकतुल्ला खां को मुख्यमंत्री बनाया।
- 1972 के चुनावों में कांग्रेस को अपार बहुमत मिला तथा बरकतुल्लाह खाँ मुख्यमंत्री बनाए गए परन्तु एक वर्ष बाद ही उनकी मुत्यु हो गई तथा हरिदेव जोशी मुख्यमंत्री बने।
- इस प्रकार 1954 से 1977 तक कांग्रेस का एकछत्र राज रहा। 1967 के चुनावों को छोड़ विपक्षी कोई मजबूत दावेदारी नहीं कर सके तथा बिखरे रहे।

3. विपक्ष का युग (1977–80)

- आपातकाल के बाद हुए इन चुनावों में जनता पार्टी ने कांग्रेस का सफाया कर दिया। राजस्थान में बहुदलीय व्यवस्था की बजाय द्विदलीय व्यवस्था उभरी।
- जनता पार्टी ने 150 सीटे जीती। 3/4 बहुमत के साथ भैरोंसिंह शेखावत प्रथम गैर कांग्रेसी मुख्यमंत्री बने।
- महारावल लक्ष्मण सिंह, दौलत राम सहारण आदि अपनी ही सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाए पर सफल नहीं हुए।

4. गुटबंदी से ग्रसित पुनः कांग्रेसवाद का काल (1980–1990)

- 1980 से 1990 के बीच विभिन्न गुटों में कांग्रेस आलाकमान की नजरों में चढ़ने के लिए प्रतियोगिता होती थी।
- इन दस वर्षो में क्रमशः 6 मुख्यमंत्री बने– जगन्नाथ पहाड़िया, शिवचरण माथुर, हीरालाल देवपुरा, हरिदेव जोशी, शिवचरण माथुर व पुनः हरिदेव जोशी।

5. त्रिशंकु बहुमत का भाजपावाद (1990–1998)

- 1990 व 1993 में दो चुनाव हुए। 1990 व 1992 की बाबरी विध्वंस तक भाजपा ने क्रमशः जनता दल व जनता दल (दिग्विजय) के समर्थन से सरकार चलाई। यह पहली गठबन्धन सरकार थी।
- 1993 में फिर भाजपा ने भैरोसिंह के नेतृत्व में निर्दलीयों के सहयोग से सरकार बनाई क्योंकि इस बार भी भाजपा के पास स्पष्ट बहुमत नहीं था।
- यह दौर अल्पमत की सरकारों का रहा, इसमें मुख्यमंत्री के पद की गरिमा का ह्रास हुआ, सरकार बचाने के लिए मंत्रीमण्डल को अनावश्यक विस्तार देना पड़ा तथा दल–बदल की अनेक घटनाएँ हुई।
- महंगाई के कारण 1998 के चुनावों में भाजपा बुरी तरह से हार गई।

6. द्विदलीय व्यवस्था का युग (1993–वर्तमान तक)

- 1993 से राजस्थान में भाजपा व कांग्रेस ही मुख्य प्रतिद्वन्द्वी पार्टियां रही है।
- यह द्विदलीय प्रतियोगिता ही नहीं 2003 से तो दो व्यक्तियों के मध्य भी प्रतियोगिता का दौर है। एक तरफ वसुंधरा राजे दूसरी तरफ अशोक गहलोत।

पंचायती राज व नगरीय स्वशासन संस्थाएँ

पंचायती राज

- पंचायती राज की संकल्पना सहभागितामूलक लोकतंत्र (Participatory Democarcy) को साकार करने का प्रयास है, जिसका आशय आम आदमी के पास अपने हित से जुड़े मामलों के प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका है।

❖ पंचायती राज का इतिहास –

- 1882 में लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वशासन संबंधी प्रस्ताव दिया जो भारतीय स्वशासन संस्थाओं के इतिहास में 'मैग्नाकार्टा' कहा जाता है।
- 1919 में अधिनियम (मांटेग्यू चेम्सफोर्ड) में स्थानीय स्वशासन को हस्तांतरित विषयों में रखा गया, अर्थात इस पर कानून बनाने की शक्ति प्रांतीय विधायिकताओं को दी गई।
- आजादी के बाद संविधान में अनुच्छेद 40 के तहत राज्य को ये निर्देश दिये गये कि वह ग्राम पंचायतों का गठन करने हेतु कदम उठाए।
- संविधान सभा में स्थानीय स्वशासन को राज्य सूची में डाला।

❖ पंचायती राज हेतु गठित विभिन्न समितियाँ –

1. बलवंत राय मेहता समिति (1957) – इस समिति ने जन सहभागिता की कमी को सामुदायिक विकास कार्यक्रम (C.D.P) की सीमित सफलता का प्रमुख कारण माना और पंचायती राज्य का एक त्रिस्तरीय ढाँचा विकसित करने की सिफारिश दी। इसके बाद 2 अक्टूबर 1959 को नागौर के बगदरी गाँव में जवाहर लाल नेहरू ने पंचायती राज. की शुरूआत की। 11 अक्टूबर को आंध्रप्रदेश संपूर्ण राज्य में पंचायती राज लागू करने वाला पहला राज्य बना।
2. सादिक अली समिति–1964
3. अशोक मेहता समिति – इसने द्विस्तरीय पंचायत व्यवस्था करने, पंचायतों का कार्यकाल 4 वर्ष करने, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति को आरक्षण देने, पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने आदि की सिफारिश की।
4. जी.वी.के राव समिति (1985) – चार स्तरीय पंचायती राज के ढाँचे की सिफारिश दी।
5. लक्ष्मीमल सिंघवी समिति (1986) – पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा देने, पंचायतों के लिए राज्य वित्त आयोग का गठन करने, पंचायत चुनाव दलगत आधार पर नहीं करवाने, विवादों के निपटारे के लिए एक पंचायती राज अधिकरण की स्थापना करने आदि की सिफारिश की। भारत में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल, 1993 को व राजस्थान में 23 अप्रैल, 1994 को लागू हुआ। 11वीं अनुसूची के 29 विषय में से 23 विषय राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं को दिए जा चुके है।
   73वां संविधान संशोधन के कुछ उपबंध राज्यों के लिए बाध्य है व कुछ में राज्यों को अनेक विवेकानुसार प्रावधान करने की छूट दी गई है।

❖ बाध्य/अनिवार्य उपबंध

- ग्राम सभा का गठन
- चुनाव लड़ने की न्यूनतम आयु
- अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति हेतु उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण।
- 5 वर्ष कार्यकाल, विघटन की स्थिति में 6 माह के भीतर पुनः चुनाव।
- त्रिस्तरीय व्यवस्था परन्तु अगर राज्य की जनसंख्या 20 लाख से कम है तो मध्यवर्ती स्तर जरूर नहीं।
- महिलाओं को कम से कम 1/3 आरक्षण
- राज्य निर्वाचन आयोग व हर पाँचवें वर्ष राज्य वित्त आयोग का गठन।
- सदस्यों का प्रत्यक्ष चुनाव, तथा अध्यक्षों (मध्वर्ती व जिला स्तर पर) का अप्रत्यक्ष चुनाव

❖ विवेकाधीन उपबंध (राज्यों पर निर्भर)

- अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने/नहीं देने के संदर्भ में।
- महिलाओं को 1/3 से ज्यादा आरक्षण देने के संदर्भ में।
- ग्राम पंचायतों के चुनाव दलीय आधार पर करवाने है या नहीं।
- विधायकों तथा सांसदों को मध्यवर्ती व जिला स्तर पर सदस्य देने के संदर्भ में।
- ग्राम पंचायत प्रमुख का चुनाव/प्रत्यक्ष प्ररोक्ष कराने के संबंध में।
- पंचायतों को कुछ कर लगाने की अनुमति देने के संदर्भ में।
- कितनी जनसंख्या पर पंचायत के स्तरों का गठन करना है।

73वां संविधान संशोधन 1992 (1993 में लागू)

243 – ग्राम सभा, पंचायत, मध्यवर्ती स्तर आदि शब्दों की परिभाषाएँ है।

243(क) – ग्राम सभा की शक्तियों का कार्यों का वर्णन। यह राज्य विधानमण्डलों के विवेक पर छोड़ा गया है। राजस्थान में इसकी साल में 4 बैठकें अनिवार्य है, कोरम (गणपूर्ति) 1/10 है।

243(ख) – इसमें लिखित है कि 20 लाख तक जनसंख्या वाले राज्यों में 2 स्तर व अधिक जनसंख्या वालों में तीन स्तरीय व्यवस्था होगी।

243(ग) – पंचायतों की संरचना के संबंध में प्रावधान।

243(घ) – पंचायतों में आरक्षण

- अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जाति हेतु स्थानों का आरक्षण इस पंचायत क्षेत्र विशेष की जनसंख्या उनके अनुपात के आधार होगा, वही पदों हेतु आरक्षण पूरे राज्य की जनसंख्या में उनके अनुपात के आधार पर होगा और समय सीमा वहीं होगी जो अनुच्छेद 334 में है। महिला आरक्षण न्यूनतम 1/3 होगा व इसमें किसी प्रकार की समय सीमा नहीं है।

243 (ड़) – पंचायतों की अवधि

- सामान्यत 5 वर्ष, किसी कारण पहले विघटित हो गई है व 6 महिने से अधिक का कार्यकाल शेष है, तो 6 माह के भीतर नए चुनाव कराए जाएँगे व ऐसी पंचायत 5 साल हेतु नहीं चुनी जाएगी, केवल शेष अवधि हेतु चुनी जाएगी।

243(च) – निरर्हताएँ –

- जो राज्य में विधायक बनने हेतु उस समय प्रभावी कानून के अन्तर्गत लागू प्रावधान।
- राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाए गए किसी भी कानून के अन्तर्गत प्रावधान।
  (अपवाद 25 वर्ष की बजाय 21 वर्ष)

243(छ) – पंचायतों की शक्तियाँ व उत्तरदायित्व

243(ज) – पंचायतों द्वारा कर अधिरोपित करने की शक्तियाँ

243(झ) – वित्त आयोग का गठन

243(ञ) – पंचायतों के लेखाओं का अंकेक्षण

243(ट) – राज्य निर्वाचन आयोग व चुनाव कराने संबंधी प्रावधान

243(ठ) – ये प्रावधान संघ राज्य क्षेत्रों केन्द्र शासित प्रदेश पर भी लागू होंगे।

- अपवाद – दिल्ली व जम्मू–कश्मीर

243(ड) – किन क्षेत्रों में लागू नहीं होंगे।

243(ढ) – 73वां संविधान संशोधन लागू होने से पहले चल रही व्यवस्था के संदर्भ में प्रावधान।

243(ण) – निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन।

राजस्थान के संदर्भ में प्रावधान

ग्राम पंचायत –

- 3 हजार जनसंख्या पर गठन (9 वार्ड)
- प्रत्येक एक हजार अतिरिक्त संख्या पर 2 अतिरिक्त वार्ड
- सदस्य –सरपंच, उपसरपंच, ग्रामसेवक
- बैठक 15 दिन में 1 बार, कौरम/गणपूर्ति 1/3
- अविश्वास प्रस्ताव –
  - कार्यकाल के शुरूआत के 2 साल व अन्त के 1 साल तक प्रस्ताव नहीं ला सकते हैं।
  - 1/3 सदस्यों द्वारा प्रस्ताव लाया जाता है।
  - 3/4 बहुमत से पारित होना जरूरी।
  - एक बार असफल होने पर अगले 1 वर्ष तक नहीं ला सकते।

ग्रामसभा –

- संवैधानिक प्रावधान – अनुच्छेद 243 (क)
- ग्राम सभा पंचायतीराज व्यवस्था का प्राथमिक, सबसे बड़ा तथा स्थायी निकाय है।
- सदस्य – ग्राम पंचायत के समस्त वयस्क निवासी जो मतदाता सूची में पंजीकृत हो।
- बैठके – राज्य पंचायतीराज अधिनियम के अनुसार न्यूनतम 2 बैठके प्रतिवर्ष अवश्य होनी चाहिए।
  - राजस्थान में 4 बैठके – 26 जनवरी, 1 मई (मजदूर दिवस), 15 अगस्त, 2 अक्टूबर
  - ग्राम पंचायत को अपनी सुविधानुसार अन्य तारीखों पर भी ग्राम सभा की बैठकों को आयोजित करने का अधिकार है।
- स्थान – सभी के बैठने हेतु सुविधाजनक स्थान हो, पंचायत में यदि एकाधिक गाँव हो तो रोटेशन आधार पर सभी गाँवों में आयोजित की जाएगी।
- समय – सूर्योदय के बाद से सूर्यास्त होने तक दिन के किसी भी समय किया जा सकता है।
- ग्रामसभा का आयोजन –
  - सरपंच के अनुमोदन के बाद पंचायत सचिव ग्राम सभा की तिथि सुनिश्चित करता है।
  - ग्राम सभा के 10% सदस्यों द्वारा अथवा ग्राम सभा के 50 व्यक्तियों (जो भी अधिक हो) द्वारा ग्राम सभा के आयोजन हेतु अनुरोध किए जाने पर ग्राम पंचायत का सरपंच ग्रामसभा की बैठक बुलाता है। हालांकि उन सदस्यों को बैठक उद्देश्य की जानकारी देनी होती है।
  - बैठक की तारीख से 5 दिन पहले सरपंच के पास एक लिखित अनुरोध सौंपना पड़ता है।
  - जिस तारीख के लिए अनुरोध किया गया है यदि उस तारीख को सरपंच बैठक आयोजित कराने में विफल रहता है तो बैठक के लिए अनुरोध करने वाले सदस्य स्वयं ही ग्राम सभा की बैठक आयोजित कर सकते हैं।

ग्राम सभा के कार्य –

- ग्रामीण विकास कार्यों में सहायता करना।
- विकास संबंधित कार्यों की रूपरेखा बनाना तथा उन्हें लागू करना।
- कल्याण और विकास योजनाओं व कार्यक्रमों के लिए लाभार्थियों की पहचान कर उनके चयन के लिए ग्राम पंचायत को प्रेषित करना।

- ग्राम पंचायत के सदस्यों से पंचायत के कार्यों, कल्याणकारी योजनाओं, आमदनी और खर्चों के बारे में जानकारी लेना।
- निगरानी समिति बनाना, उसकी रिपोर्ट पर विचार विमर्श करना और उसके लिए सिफारिश करना।
- जनशिक्षा, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण कार्यक्रमों में सभी तरह के योगदान देना।
- ग्राम पंचायत के वार्षिक लेखा विवरण, पिछले वित्तीय वर्ष की प्रशासन रिपोर्ट, वित्तीय वर्ष के बजट पर चर्चा करना।
- सामाजिक अंकेक्षण।

सशक्त करने हेतु उपाय –

- पंचायतीराज का आधार स्तंभ होने के नाते ग्रामसभा को सशक्त सक्रिय एवं सामूहिक उत्तरदायित्व की कारगर संस्था के रूप में बदलना बेहद जरूरी एवं वांछनीय है।
- ग्रामसभा को सलाहकारी निकाय के स्थान पर बाध्यकारी बनाया जाना चाहिए।
- ग्रामसभा सशक्तीकरण हेतु इसके लिए पृथक वैधानिक आधार तैयार किया जाना आवश्यक है।
- गाँव से संबंधित विभिन्न योजनाओं व आगामी वित्त वर्ष की बजट स्वीकृति का अधिकार वास्तविक रूप से ग्राम सभा के हाथों में होनी चाहिए। (वास्तविक राजकोषीय संघवाद)
- विभिन्न ग्रामीण कुप्रथाओं और सामाजिक रूढ़ियों के उन्मूलन हेतु इसे पुलिस प्रशासन से सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए।
- द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार ग्रामसभा की बैठक का कोरम तभी माना जाए, जब उपस्थित सदस्यों में कम से कम 33% महिलाएँ हो ताकि ग्राम सभा की बैठकों में महिलाएँ हाशिए पर न धकेली जाए।
- ग्रामसभा की बैठकों की संख्या बढ़ायी जानी चाहिए तथा पूर्व निर्धारित बैठकों को नियमित किया जाना चाहिए।
- ग्रामसभा में कोरम हेतु किसी एक मनरेगा कार्यदिवस को ही बैठक का दिन किया जा सकता है। (वर्तमान कोरम – कुल ग्राम सभा सदस्यों का 1/10 वाँ भाग)
- ग्रामसभा की बैठकों में राज्य सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा अधिकाधिक सरकारी कार्यक्रमों से ग्रामसभा को लाभान्वित किया जाना चाहिए जिससे सदस्य इसके आयोजन को लेकर उत्साहित रहे।

इन उपायों के माध्यम से ग्रामसभा को सशक्त कर गाँधीजी के ''ग्रामस्वराज'' के स्वप्न को साकार किया जा सकता है।

पंचायत समिति –

- 1 लाख जनसंख्या पर गठन (15 वार्ड)
- प्रत्येक 15 हजार अतिरिक्त जनसंख्या पर 2 वार्ड अतिरिक्त
- संघटन –सदस्य, बीडीओ, उपप्रधान, प्रधान।
- इस पंचायत समिति की सभी ग्राम पंचायतों के सरपंच व इस क्षेत्र के विधायक
- बैठक माह में 1 बार, कोरम 1/3
- अविश्वास प्रस्ताव की प्रक्रिया वही जो ग्राम पंचायत के संदर्भ में है।

जिला परिषद –

- 4 लाख जनसंख्या पर गठन (17 वार्ड)
- प्रत्येक 1 लाख पर 2 वार्ड अतिरिक्त
- संघटन – सदस्य, मुख्य कार्यकारी अधिकारी, उपजिला प्रमुख, जिला प्रमुख

सदस्य –

- उस जिला परिषद के सदस्यों की संख्या।
- जिले की सभी पंचायत समितियों के प्रधान
- सभी विधायक
- लोकसभा सांसद और राज्यसभा सांसद

- बैठक – 3 माह में 1 बार, गणपूर्ति 1/3
- अविश्वास प्रस्ताव – वही प्रक्रिया जो ग्राम पंचायत में अपनायी जाती है।

नोट –

❖ राजस्थान सहित 10 राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों (जिनका उल्लेख 5वीं अनुसूची में है) के लिए 1996 के पेसा एक्ट (पंचायत एक्सटेंशन टू शेड्यूल्ड एरिया) के तहत स्थानीय स्वशासन होता है।

❖ राजस्थान में बाँसवाड़ा व डूँगरपुर (पूर्णतः) तथा उदयपुर, चित्तौडगढ़ एवं सिरोही के कुछ भाग पेसा के तहत संचालित होते हैं।

राजस्थान में पंचायती राज से संबंधित चुनौतियां –

1. आधिकांश राज्यों ने 29 में से बहुत कम विषय आगे सौंपे है।
2. पंचायतों के उत्तरदायित्वों का बहुत स्पष्ट निर्धारण नहीं है।
3. वित्तिय संसाधनों की कमी।
4. सरपंच पति की अवधारणा।
5. जातिवादी और गुटीय राजनीति का शिकार।
6. जातिय आरक्षण के कारण कुछ गाँवों में अराजक स्थितियाँ पैदा हुई है।
7. दबाव राजनीति।
8. तीनों संस्थाओं के अंर्तसंबंधों की समस्या।
9. भ्रष्टाचार, शक्तियों का दुरूपयोग।
10. शिक्षा और जागरूकता का अभाव।
11. पर्याप्त प्रशिक्षण का अभाव।
12. पंचायत के निर्वाचित सदस्य एवं राज्य द्वारा नियुक्त पदाधिकारियों के बीच सामंजस्य का अभाव।

समाधान –

1. अधिकाधिक विषय पंचायतों को सौंपे गए।
2. तीनों स्तरों के बीच कार्यक्षेत्रों का स्पष्ट विभाजन
3. संस्थाओं को अपने स्तर पर कुछ कर लगाने का अधिकार।
4. महिला प्रतिनिधियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना।
5. अच्छा कार्य करने वाली पंचायती राज संस्थाओं को प्रोत्साहन।
6. निर्वाचित प्रतिनिधियों को पंचायती राज के नियम कानूनों के बारे में जानकारी देने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएँ।
7. इन संस्थाओं को और कार्यपालिकीय अधिकार दिए जाएँ और बजट आवंटन के साथ–साथ समय–समय पर विश्वसनीय लेखा परीक्षण भी कराया जाए। (सरकारी प्रयास – ई–ग्राम स्वराज पोर्टल)
8. पंचायतों का निर्वाचन नियत समय पर राज्य निर्वाचन आयोग के मानदंडों पर क्षेत्रीय संगठनों के हस्तक्षेप के बिना होना चाहिए।

❖ राजस्थान में पंचायतों के सशक्तिकरण हेतु पंचायत सशक्तिकरण पुरस्कार, नगरवार निधि योजना, राष्ट्रीय ग्राम पंचायत योजना(2006–2007), राजीव गाँधी पंचायत सशक्तिकरण अभियान योजना आदि कदम उठाए गये।

नगरपालिकाएँ –

- 74वें संविधान संशोधन में भाग 9 (क) जोड़ा गया। इसमें अनुच्छेद 243(त) में 243(य छ) तक शामिल है।
- 73वें व 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में वित्त आयोग, संस्थाओं के कार्यकाल, निर्वाचन आयोग व आरक्षण से संबंधित प्रावधान एक जैसे है।

प्रमुख प्रावधान –

- अनुच्छेद 243(थ) में नगरपालिकाओं के तीन स्तरों (नगर पंचायत, नगर परिषद, नगर निगम) का उल्लेख है।
- सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष होगा व अध्यक्ष का चुनाव कैसे होगा इसकी शक्ति राज्य विधानसभाओं को दी गई है।
- स्थानों के आरक्षण के संदर्भ में वही प्रावधान है जो पंचायतों के लिए है परन्तु पदों के आरक्षण के संदर्भ में राज्य विधानमण्डलों को शक्ति दी गई है।

जिला योजना समिति (D.P.C) –

- संविधान (अनुच्छेद 243 य घ) में इसका उल्लेख है इसके तहत जिला स्तर पर सभी राज्यों में जिला योजना समिति होगी, जो जिले की पंचायतों व नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समेकन करेगी व जिले के विकास के लिए योजना का प्रारूप बनाएगी।
- इसके कुल सदस्यों में कम से कम 4/5 सदस्य जिला पंचायत और नगरपालिका के निर्वाचित सदस्यों द्वारा स्वयं में से चुने जाऐंगे। समिति के इन सदस्यों की संख्या जिले की ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या के अनुपात में होनी चाहिए।
- राजस्थान में इस समिति के 25 सदस्य होंगे।
  - 25 में से 20 (4/5) निर्वाचित प्रतिनिधियों में से
  - अन्य 5 सदस्य – कलेक्टर, अतिरिक्त जिला कलेक्टर, जिला परिषद का मुख्य कार्यकारी अधिकारी तथा 2 सदस्य सरकार द्वारा उस जिले के सांसद/विधायक में से मनोनीति किए जाते हैं।

महानगर योजना समिति –

- संविधान (अनुच्छेद 243 य ड़) में इसका उल्लेख है यह महानगर क्षेत्रों में विकास के लिए बनाई जाती है। इसके 2/3 सदस्य महानगर क्षेत्र की नगरपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों तथा पंचायतों के अध्यक्षों (सदस्य नहीं) द्वारा अपने में से चुने जाऐंगे।

पंचायतों के संबंध में गाँधीजी का दर्शन –

''सच्चा लोकतंत्र केन्द्र में बैठकर राज्य चलाने वाला नहीं होता,
अपितु यह तो गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग से चलता है।''

- गाँधीजी का दृढ़ विश्वास था कि गाँवों की स्थिति में सुधार करके ही देश को सभी दृष्टि से अपराजेय बनाया जा सकता है। ब्रिटिश सरकार द्वारा गाँवों को पराश्रित बनाने का जो षडयंत्र किया गया था उसे समझकर ही वे ग्रामोत्थान को सब रोगों की दवा मानते थे।
- इसलिए संविधान में अनुच्छेद–40 के अन्तर्गत गाँधी जी की कल्पना के अनुसार ही ग्राम पंचायतों के गठन की व्यवस्था की गई।
- गाँधीजी का मानना था कि ग्राम पंचायतों को प्रभावशील होने में तथा प्राचीन गौरव के अनुकूल होने में कुछ समय लगेगा। यदि प्रारम्भ में ही उनके हाथों में दण्डकारी शक्ति सौंप दी गई तो उसका अनुकूल प्रभाव पड़ने के स्थान पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा। इसलिए ग्राम पंचायतों को प्रारम्भ में ही ऐसे अधिकार देने में सतर्कता आवश्यक है, जिसके कारण उनके अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह न लगे।
- प्रारम्भ में यह आवश्यक है कि पंचायत को जुर्माना लगाने या किसी का सामाजिक बहिष्कार करने की सत्ता न दी जाए। गाँवों में सामाजिक बहिष्कार अज्ञानी या अविवेकी लोगों के हाथ में एक खतरनाक हथियार सिद्ध हुआ है। जुर्माना करने का अधिकार भी हानिकारक साबित हो सकता है और अपने उद्देश्य को नष्ट कर सकता है।
- गाँधीजी के इस विचार का तात्पर्य पंचायत को अधिकार विहिन बनाने से नहीं था बल्कि अधिकार का दंड देने के रूप में संयमित प्रयोग किए जाने से था।

निष्कर्ष – गाँधीजी पंचायत को अधिकार भोगने वाली संस्था न बनाकर सदभाव जागृत करने वाली रचनात्मक संस्था के रूप में विकसित करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि यह संस्था गाँव में सुधार का वातावरण पैदा कर सकती है।

Springboard ACADEMY